भोजदेवकृत

सरस्वतीकण्ठाभरण

(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

डॉ० विश्वनाथ गो० शास्त्री
प्राचार्य, आर्ट्स-कॉमर्स कालिज
राधनपुर (गुजरात)

परिमल पब्लिकेशन्स
दिल्ली

प्रकाशक :
परिमल पब्लिकेशन्स
27/28, शक्ति नगर
दिल्ली 110007
दूरभाष : 7127209

प्राप्तिस्थान :
पार्श्व प्रकाशन
निशापोल, ज़वेरीवाड
रिलिफ रोड, अहमदाबाद
पिन : 380001

प्रथम संस्करण 1996

मूल्य : 250 रुपये

मुद्रक :
हिमांशु लेज़र सिस्टम
46, संस्कृत नगर
रोहिणी सेक्टर 14
दिल्ली 110085
दूरभाष : 7862183

परम वंदनीय प्रातः स्मरणीय
पूज्य मातापिता के चरणकमलों में
सादर समर्पित

दो शब्द

आचार्य भोजदेव विरचित "सरस्वतीकण्ठाभरण" व्याकरण विषयक एक महान ग्रन्थ है । इस कृति में व्याकरणशास्त्र के महान आचार्य आर्षद्रष्टा ऋषि पाणिनि की अष्टाध्यायी के आधार पर सूत्ररचना की गई है ।

पी. एच. डी.उपाधि हेतु विषय चयन के लिये जब मैं महर्षि वेद विज्ञान अकादमी के नियामक गुरुवर्य डॉ. नारायणभाई कंसारा से मिला, तब उन्होंने भोज रचित "सरस्वतीकण्ठाभरण" व्याकरण विषय पर संशोधन की प्रेरणा दी। उन्हीं के आदेशानुसार वर्षों के परिश्रम के बाद मैंने सरस्वतीकण्ठाभरण के अष्टमाध्याय पर जो वैदिक व्याकरण विषय से सम्बद्ध है संशोधन कार्य शुरू किया, एवं सन् १९८९में गुजरात विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की ।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने सूत्रों के विवरणों को समाविष्ट करना उचित नहीं समझा । यदि सूत्रों का भी समावेश करता तो ग्रन्थ काफी बड़ा होने की संभावना थी ।

इस कृति में महाराज भोज का जीवन, कृतियाँ, व्याकरण शास्त्र में उनका प्रदान, पूर्ववर्ती आचार्यो से उनकी तुलना, भोज के वैदिक व्याकरण की विशेषता, पाणिनि से उनका साम्य आदि विषयों को ही समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

मुझे इस कार्य में प्रोत्साहित करने के लिये गुरुवर्य डॉ. नारायणभाई कंसारा, डॉ. गौतम पटेल, डॉ. शान्तिकुमार पंड्या, प्रो. हरिभाई देसाई, प्रो. भास्कर मेहता एवं मेरी अर्धांगिनी श्रीमती हंसा शास्त्री का आभारी हूँ । इस पुस्तक को प्रकाशित करना मेरे लिये असंभव ही नहीं अशक्य भी था । किन्तु पार्श्व प्रकाशन अहमदाबाद के संचालक श्री बाबूभाई शाह ने इस कृति को प्रकाशित करने की अनुमति देकर बहुत बड़ा उपकार किया अतः उनका जितना ऋण स्वीकार करुं कम है । सुज्ञेषु किं बहुना

विदुषां वशंवदः

डॉ. विश्वनाथ शास्त्री

अ नु क्र म

/

भोजदेव कृत

सरस्वतीकण्ठाभरण

(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

●

डॉ. विश्वनाथ शास्त्री

प्रकरण-१

ग्रन्थप्रणेता

भोजदेवः जीवन समय एवं कृतियाँ

परमारवंश - (भोज के पूर्वज) प्रसिद्ध राजा भोज मालवा के परमारवंशी थे । मध्यकालीन भारतीय इतिहासमें त्रिपुरी के कालचुरी[१], जेजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चंदेल[२], मालवा के परमार[३] तथा अनहिलवाड के चालुक्य प्रमुख हैं । इनमें एकमात्र परमारवंश ही ऐसा राजवंश था जिसने साहित्य की अभिवृद्धि के क्षेत्र में अपना योग दिया है ।

अहमदाबाद के 'हरसोल' नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख से विदित हुआ है कि परमार राष्ट्रकूट वंश से सम्बन्धित थे[४] और उनका मूल निवास दक्कन[५] था । वे प्रतिहारों की भाँति ही अग्निकुलीय थे[६] । किन्तु कुछ अन्य लेखों से पता चलता है कि वे राष्ट्रकूट वंश में उत्पन्न हुए थे । मालवा देश की धारानगरी में उपेन्द्र अपर नाम गजराज या कृष्णराज ने परमारवंश की नींव डाली । संभवतः प्रारम्भ में वह मालवा का सूबेदार था और राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार करता था । आगे चलकर गूर्जर प्रतिहारोंने मालवा पर अपना अधिकार जमा लिया । कुछ समय के पश्चात् उपेन्द्र के वंशज 'वैरिसिंह' ने फिर अपने पुरखों के खोये हुए राज्य को जीत लिया । वैरिसिंह के उत्तराधिकारी सीयक अपर नाम हर्ष का राज्यारोहण काल (ई.स. ९४९-९७२) तक माना जाता है[७] सीयक हर्ष बहुत ही पराक्रमी नरेश था । उसने अपने पडौसी सामन्तों को परास्त किया था । राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण द्वितीयकी मृत्यु के पश्चात् उसने अपने विद्रोही सीयक को दबाने का प्रयत्न किया किन्तु उसमें वह असमर्थ रहा । ई.स. ९७२ के आसपास नर्मदा के किनारे दोनों में युद्ध हुआ जिसमें सीयक की विजय हुई उसने मानखेट (मानीखेत) तक राष्ट्रकूट राजा का पीछा

---

1. Hiralal - "The Kalcharis of Tripuri" A.B.R.I. P.P. 280-295 (1927)
2. Smith - Con. Hist Bund. J.A.S.B. Part-1 PP. 1-52 (1881)
3. Leuard C.I. & Lele K.K.-Par Dhara & Malva (Bomb. 1908)
4. E.I. XIX, PP. 236-244
5. Ganguli - Hist Par Dyn ppg (Dhaka 1933)

६. द्रष्टव्य - धनपालकृत तिलकमंजरी प्रास्ताविक श्लोक क्रमांक ३९ ।

७. डॉ. उपाध्याय - प्रा भा. इति. पृ. ३८६

किया और उसकी राजधानी को लूटा । इसप्रकार सीयक द्वितीय ने मालवा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की [८] ।

परमारवंशी मुंज – सीयक ने अपने उत्तरकालमें किसी जैन मुनि से दीक्षा ली और (ई.स. 974) के करीब अपने उत्तराधिकारी मुंज अपरनाम वाक्यपतिराज को राज्य सौंप दिया । मुंज उत्पलराज, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ तथा वल्लभ आदि नामों से भी प्रख्यात था । भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों से वह विभूषित था । वह बड़ा प्रतापी और विद्वान राजा था' । वह अपने वंश का सबसे प्रतापी राजा था ।[९] उसकी गणना उस युग के महानतम राजाओ में होती थी । उसका सारा शासनकाल युद्धों और विजयो में ही बीता । वह स्वयं कवि ही नही अपितु विद्याप्रेमी था । उसने कालचुरि राजा युवराज द्वितीय को परास्त किया और उसकी राजधानी को लूटा । मालवा के उत्तरपश्चिम में एक छोटा सा हूण राजा शासन करता था, उसे भी उसने धूल चटायी । मुंजने चाहमानों पर भी आक्रमण किया और चाहमानों को परास्त करके आबूपर्वत एवं दक्षिण का कुछ प्रदेश हडप कर लिया था । चालुक्य राज्य के संस्थापक मूलराज को भी मुंज का प्रहार झेलना पडा था और उसने भागकर मारवाड के रेगिस्तान में शरण ली थी । [१०]

मुंज का सब से कट्टर शत्रु चालुक्य नरेश तैलप द्वितीय था । तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूटों से दक्षिण का प्रदेश जीत लिया था । वह मालवा पर भी अपना आधिपत्य कायम करना चाहता था । तैलप द्वितीय ने मालवा पर कम से कम छह बार चढाई की । परन्तु प्रत्येक बार उसे मुंज के हाथों हार खानी पडी। अन्त में सातवीं बार मुंज ने स्वयं उसके राज्य पर आक्रमण किया और गोदावरी के तट पर युद्ध में उसे हराया । परन्तु राज्य विस्तार की लालसा में उसका उसने पीछा किया और तैलप द्वितीय के हाथों उसे हार खानी पडी, इतना ही नहीं वह पकडा गया और तैलप ने उसका वध वि. स. १०५० से १०५४ के बीच कर दिया । [११] और नर्मदा तक का समस्त भाग अपने राज्य में मिला

---

8. धनपाल – पाइ ल. ना. श्लोक १९८
   विक्कमकालस्स गइ अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि ।
   मालवनरिद घाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥
९. E.I.I.P. 325
१०. नागरी प्र. प. भा. ३ पृ. ५
११. भा. प्रा. रा. भा. १ पृ. ९३-१०३.

दिया । इसमें सन्देह नहीं कि मुंज ने गोदावरी पार करके महान भूल की । और उसका दु:खद परिणाम उसे भुगतना पडा । मुंज महान योद्धा ही नहीं, वरन कला और साहित्य का बडा प्रेमी भी था ।

मुंज के बारे में ऐसी अनुश्रुति प्रचलित है कि जब वह तैलप का बन्दी था तब उसे तैलप की विधवा बहन मृणालवती से प्रेम हो गया और इस प्रकार वह एक प्रसिद्ध भारतीय प्रेमगाथा का नायक हुआ ।[१२] मुंज की हत्या ई.स. ९९५ में हुई होगी ऐसा जाना पडता है । मुंज के सम्बन्ध में प्रबन्ध चिन्तामणि आदि जैन ग्रंथों में अनेक कथाएँ मिलती हैं । नवसाहसाङ्कचरित के लेखक पद्मगुप्त, दशरुपक के लेखक धनंजय तथा उसका भाई धनिक, जैन कवि धनपाल, हलायुध आदि अनेक कवि उसके दरबार में आश्रय पाते थे । वह स्वयं प्रतिभासम्पन्न कवि था । जैनाचार्य महासेन और अमितगति का वह अतिशय सन्मान करता था ।[१३] उसने अपने राज्य के प्रमुख नगरों में भव्य मन्दिरों का निर्माण किया था । धार के समीप मुंजसागर नामक झील उसीने बनवायी थी । जो आज भी विद्यमान है ।

सिन्धुराज : – मुंज की हत्या के बाद उसका उत्तराधिकारी और उसका छोटाभाई सिन्धुल या सिन्धुराज ई. स. (९९६ से १००९) के बीच परमार वंश की गद्दी पर बैठा । उसकी पत्नी का नाम शशिप्रभा था । वह जैन धर्म का पोषक था । पद्मचरित के कर्ता मुनि महासेन का वह गुरुवत् आदर करता था। अभिनव कालिदास परिमल का "नवसाहसाङ्कचरित" इसी राजा की प्रशंसा में लिखा गया है । हूणों एवं लाटनरेशों के साथ इसके कई युद्ध हुए । महाराज सिन्धुल ने चालुक्य राजा को हराकर अपने भाई की पराजय का बदला लिया और खोये हुअे प्रदेशों को फिर से जीत लिया । इसके अतिरिक्त उसने कोशल एवं कोंकण के राजाओं को भी परास्त किया, किन्तु सोलंकी चामुण्डराज ने धारा पर आक्रमण कर उसे घेर लिया और सिन्धुराज को पराजित किया ।

मुंज एवं सिन्धुराज सहोदर भाई नहीं थे ।"प्रबन्धचिन्तामणि" में मेरुत्तुङ्ग लिखते हैं कि महाराज सिंहल को कोई पुत्र न था । वे राज्य का दौरा करते हुअे नगर के बाहर एक वनमें पहुँचे । वह वन मुंज घास से आच्छादित था। उसी वन में उन्हें एक नवजात शिशु प्राप्त हुआ । महाराज सिंहल उसे उठा लाये और पुत्र के रूप में उसको अपना लिया, उसका नाम मुंज रखा एवं

---

१२. मेरुतुंगाचार्य – प्र. चि.

१३. भा. प्रा. रा. भा १ पृ. १९ – १०३.

समय आने पर अपने राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया । उस समय सिन्धुल छोटे थे । अतःमुंज अपने पिता के औरस पुत्र न होते हुअे भी पितृभक्ति से राज्यपद प्राप्त करने में समर्थ हुअे । महाराज मुंज विद्वान् एवं साहसिक थे। वाक्पतिराज उनका उपर नाम था । परन्तु यह मुंज गौडवहो प्राकृत काव्य के कर्ता वाक्पतिराज से भिन्न थे । [१४]

परमारवंशी राजा भोजदेव : (जीवन तथा समय)

सिन्धुराज का उत्तराधिकारी भोजदेव हुआ । धारानरेश भोजदेव कवियों का सच्चा मित्र था । वह विद्वानों का आदर करता था । साहित्य में उसे अत्यधिक रुचि थी । वह कलामर्मज्ञ था । वह सिन्धुराज का पुत्र एवं मुंज का भतीजा था । भोज परमारवंश का सबसे महान एवं लोकप्रिय प्रशासक के रूप में प्रसिद्ध था । उसके राज्यारोहण के बारे में निम्न श्लोक प्राप्त होता है –

(१) विक्रमाद् वासरादष्ट मुनिर्व्योमेन्दुसंमिते ।

वर्ष मुञ्जपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः ॥ [१५]

अर्थात् विक्रमसंवत १०७८ (ई.स. १०२१) में मुंज के पीछे भोज गद्दी पर बैठा । परन्तु यह समय ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि भोजदेव अपने चाचा मुंज का उत्तराधिकारी न होकर अपने पिता सिन्धुराज का उत्तराधिकारी था ।

(२) भोजदेव का अपना स्वयं ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है, जिस में ई. स. १०२० (वि. सं. १०७६) का कालनिर्देश किया है । [१६]

(३) डॉ. बूलर भोजदेव के राज्याभिषेक का समय ई. स. १०१० (वि. सं. १०६६-६७) का अनुमान करते हैं । [१७]

भोज के बारे में किंवदन्ती है कि वे जब छोटे थे, तब उनके लालनपालन की जिम्मेदारी उनके चाचा मुंज पर ही अधिकतर निर्भर थी । मुंजने भोजदेव को गोद ले लिया था । जब तक भोजदेव पढलिखकर शस्त्र शास्त्र विद्या में पारंगत न हो तब तक राज्यधुरा वहन करने का काम मुंज पर आ पड़ा । राज्य के हाथ में आते ही मुंजने बुद्धिसागर नामक प्रधानमंत्री को किसी कारणवश

१४. रेउ विश्वेश्वरनाथ - रा. भो. पृ. २१

१५. शुभशील - भोजप्रबन्ध (श्लोक ८)

१६. E.I.I.P. 181-183

१७. E.I.I.P. 232

हटा दिया एवं रिक्तस्थान किसी अन्यमंत्री को सोंप दिया ।

एक दिन महाराज मुंज राजसभा में बैठे हुए थे, इतने में किसी ज्योतिषी ने आकर त्रिकालज्ञानी होने का दावा किया । उसकी परीक्षा के लिये बुद्धिसागर ने भोजदेव के भविष्य के बारे में राजा से पूछने को कहा । महाराज मुंज के पूछने पर ज्योतिषी ने कहा कि साक्षात् ब्रह्मा भी भोजदेव का भविष्य कहने में असमर्थ हैं, मेरी तो क्या बिसात ? फिर भी

पंचाशत् पञ्चवर्षाणि सप्तमासदिनत्रयम् ।

भोजराजेन भोक्तव्यः स गौडो दक्षिणापथः ॥ [१८]

अर्थात् (५५ वर्ष ७ मास और ३ दिन) भोजदेव पृथ्वीपर शासन करेगा।

भोजदेव के उत्तराधिकारी जयसिंह का वि.सं. १११२ (ई.स. १०५५) का एक दानपत्र मिला है । यदि भोज का राज्याभिषेक वि. सं. १०४६ अर्थात् ई. स. १००० के करीब मान लिया जाय तो उक्त भविष्यवाणी ठीक सिद्ध होती है ।

श्री सी.बी. वैद्य भोजदेव की राज्यप्राप्ति का समय (ई.स. १०१० वि. सं. १०६६) मानकर (ई.स. १०४० वि. स. ११०६) तक ४० वर्ष पर्यन्त भोजदेव ने राज्य किया ऐसा अनुमान करते हैं ।

आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यशास्त्र के अपने ग्रन्थ काव्यानुशासन में भोज का उल्लेख किया है । हेमचन्द्र का समय ऐतिहासिक दृष्टि से निश्चित है । गुजरात के अहमदाबाद से ६० मील दक्षिण पश्चिम कोण में स्थित धंधुका नगर में वि. सं. ११४५ (ई.स. १०८९) की कार्तिकी पूर्णिमा की रात में आचार्य हेमचन्द्र का जन्म हुआ था । [१९] अतः भोजदेव वि. सं. ११ वीं शती से पूर्व हुऐ थे यह निश्चित है ।

''सिद्धहेमशब्दानुशासन'' की रचना के सम्बन्ध में यह भी बताया जाता है कि - मालव विजय में अनेक प्रकार की वस्तुओं के साथ सिद्धराज जयसिंह को अवन्ती का पुस्तकालय भी उपलब्ध हुआ था । दरबारी लोग राजा को पुस्तकालय में प्राप्त विभिन्न पुस्तकें भी दिखला रहे थे, उस समय राजा की दृष्टि अनेक बहुमूल्य रचनाओं पर पडी । राजा ने उन पुस्तकों के परिचय की जिज्ञासा प्रकट की । इस पर हेमचन्द्र ने बताया कि ये उत्तम रचनाएँ महाराज भोज की विद्वत्ता एवं विद्वद्प्रियता का परिणाम है । इसी कारण इस पुस्तकालय

१८ बल्लाल - भोजप्रबन्ध.

१९ शास्त्री नेमिचन्द्र - आ. हेम. शब्दा. अ. पृ. ९.

के दुर्लभ ग्रन्थों में अलंकार, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों की बहुलता है । इस पर सिद्धराज जयसिंह के मनमें साहित्यक ईर्ष्या जागृत हुई और उन्होंने कहा कि क्या हमारे यहाँ श्रेष्ठ व्याकरण की रचना नहीं हो सकती ? उपस्थित लोगों ने आचार्य हेमचन्द्र की ओर सङ्केत किया और हेमचन्द्र ने राजाज्ञा प्राप्त कर काश्मीर से व्याकरण की आठ पुस्तकें मँगवाई तथा ''सिद्धहेमशब्दानुशासन''की रचना की । [२०] इससे सिद्ध है कि आचार्य हेमचन्द्र के समय में भोजदेव का व्याकरण अतिप्रसिद्ध था और आचार्य भोज हेमचन्द्र से पूर्ववर्ती थे ।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो राजा भोजदेव जितना विद्या व्यसनी एवं विद्वानों का आदर करनेवाला था उतना ही वह बहादुर योद्धा था । उसने अपने चाचा मुंज की हार का बदला लेने के लिये कालचुरि नरेश गांगेयदेव से मित्रता की एवं बाद में मनमुटाव होने के कारण उसे भी परास्त किया। कालचुरि गांगेयदेव का समय (१०१९-१०४१ ई.स.) तक का है । [२१] उसने गुजरात के चालुक्यवंशी भीमदेव प्रथम को भी हराया था । [२२] भीमदेव प्रथम का समय (ई.स. १०२१ से १०६३) तक का है । अतः सिद्ध है कि महाराज भोजदेव का समय ई.स. १०१० से १०५५) के बीच मानना तर्क संगत एवं युक्तिसंगत रहेगा।

भोज के समय को निश्चित करने के लिये उसके चाचा मुंज का काल भी उपयुक्त हो सकता है । कवि धनंजय मुंज द्वारा संरक्षित विद्वन्मंडल के सदस्य थे । धनंजय की अन्तिम तिथि १० वीं शती का अन्तिम चरण मानी जा सकती है । उनके अपने शिलालेखों [२३] से विदित होता है कि वे ९७४ ई. स. में अपने पिता हर्षदेव सीयक के पश्चात् राजसिंहासन पर बैठे अतः भोज का काल (ई.स. १०१० से १०५५) तक का मानना उचित ही है ।

भोजदेव ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक काव्याशास्त्रीय कृति में महाकवि धनिक का उल्लेख किया है । डॉ. एस. के. डेने धनिक का काल लगभग ९९५ निश्चित

---

२० पुरातत्व (पुस्तक चतुर्थ) गुजरात नुं प्रधान व्याकरण पृ. ६१.
यथा - अन्यथा सिद्ध राजोऽपि जित्वा मालवमण्डलम् ।
समाजगाम तस्मै चाशिषं दर्शनिनो ददुः ॥ (श्लोक - ७०-८५)
प्रभावकचरित पृ. ३००-३०१.

२१ दुबे डॉ. सत्यनारायण - प्रा. भा. इति. पृ. ३२२.

२२ वहीं पृ. ३२४.

२३. Arc. Sur. Wes. Ind. III P. 1002

किया है ।[२४] अत: भोज का समय ई.स. १० वीं सदी ही मानना उचित होगा ।

राजा भोजदेव रचित ज्योतिषशास्त्र के "राजमृगांककरण" नामक ग्रन्थ में उसके रचनाकाल के विषय में "शाके वेदर्तुनन्दे" लिखा है ।[२५] इससे ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ शक सं. ९६४ (वि. सं. १०९९ ई. स. १०४२) में रचा गया था ।

काव्यप्रकाश के रचयिता आचार्य मम्मट ने दसवें उल्लास के 'उदात्त' अलंकार में निम्न श्लोक द्वारा भोज के औदार्य का वर्णन किया है ।[२६]

आचार्य मम्मट का समय ११ वीं सदी का उतरार्ध है । अत: भोज का समय उससे पूर्व यानी ११ वीं सदी का पूर्वार्द्ध ही निश्चित हो सकता है ।

१२ वीं सदी में हुअे काश्मीरी कवि कल्हण ने राजतरंगिणी[२७] में भोज का उल्लेख करते हुअे उन्हें कवियों का सच्चा मित्र बताया है । अत: भोजदेव कल्हण से पूर्व हुअे थे यह निश्चित है ।

भोज के अपने तथा अन्य शिलालेखों के आधार पर उनकी तिथि ठीक ठीक मालूम होती है ।[२८]

अलबेरुनी[२९] (ALberuni) ने भोज को १०३० ई.स. में राज्यारूढ बताया है।

मेरुतुंग के अनुसार भोजदेव (सं. १०७८ ई. स. १०२२) में मुंज के उत्तराधिकारी हुअे।[३०]

वाक्पतिराज महाराज मुंज तथा भोज के सभा पण्डितों में तिलकमंजरी के कर्ता कवि धनपाल अन्यतम थे । इनकी काव्यकला से प्रसन्न होकर महाराज मुंज ने इन्हें

---

२४. De S.K. - Hist. Skt. Poe. P. 114

२५. E.I.I.P. 233 Ft. Nt. 51

२६. का. प्र. १०-५०५ : मुक्ता: केलिविसूत्रहारगलिता: .... यद् विद्वद् भवनेषु भोजनृपतेस्तत् त्यागलीलायितम् ।

२७. कल्हण - रा. तर. ७ - २५९.

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कवि-बान्धवौ ॥

२८. A. I.A. VI P.53 (Ujjain plate 1021-22 A.D.)
B. E.I.I.P. P.230-233, IX P. 182
C. Banswada Plate 1020 A.D.
D. तिलकवाडा ताम्रलेख (Proc. of the 1st orient conf. P. 319)

२९. Sachau H.I. - 191

३०. Bhandarkar 1882-83 P. P. 44.55

'सरस्वती' की उपाधि दी थी ।[३१] भोज के समकालिन होने की वजह से भोज के दरबार में भी इनकी भूयसी प्रतिष्ठा थी । धनपाल का समय १० वीं शती का है अतः भोजदेव भी १०वीं शती में ही हुअे थे यह निश्चित है ।

"नवसाहसाङ्कचरित" के रचयिता पद्मगुप्त उपनाम परिमल भी राजा मुंज एवं भोज के आश्रित कवि थे ।[३२] इनकी प्रसिद्ध कृति "नवसाहसांकचरित" में भोजराज के पिता सिन्धुराज का विवाह शशिप्रभा नामक राजकुमारी के साथ वर्णित है । पद्मगुप्त के काव्य का रचनाकाल १००५ निश्चित है, अतः भोज का काल १०वीं सदी का मध्य सुनिश्चित किया जा सकता है ।

धनपालकृत तिलकमंजरी, पद्मगुप्तकृत नवसाहसाङ्कचरित एवं उदयपुर प्रशस्ति में मालवे के परमारवंश की वंशावली का निर्देश निम्नप्रकारेण किया गया है सो दृष्टव्य है :

परमारवंशावली

तिलकमंजरी	**नवसाहसाङ्कचरित**	**उदेपुरप्रशस्ति**
१ वैरिसिंह	१ उपेन्द्र	१ उपेन्द्रराज
२ श्री सीयाक अपरनाम	२ वाक्पति	२ वैरिसिंह
(श्री हर्ष)	३ वैरिसिंह	३ श्री सीयाक
३ वाक्पतिराज	४ श्री सीयाक	४ श्री वाक्पति
(अपर नाम मुंज बडे भाई)	५. श्री सिन्धुराज तथा उनके	५ वैरिसिंह (अपर
४ सिन्धुराज	बडे भाई वाक्पति जो नव	नाम वज्रत्स्वामिन्)
(छोटे भाई)	अथवा नवसाहसांक के	६ श्री हर्षदेव
५ श्री भोज	नाम से भी प्रख्यात थे ।	७ श्रीमद् वाक्पति
	६ श्री भोज	राजदेव
		८ उनके छोटे भाई सिन्धुराज ।
		९ श्री भोज
		१० उदयादित्य

३१. धनपाल - ति. मं. उपो. श्लो. ५३ :
तज्जन्माजनकांध्रिकजरजः सेवाप्त विद्यालवो, विप्र : श्री धनपाल श्री मुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥

३२. आहारं न करोति नाम्बुपिबति स्त्रैणं न संसेवते ।
शेते यत् सिकतासु मुक्तविषय श्चण्डातपं सेवते ॥
त्वत्पादाब्दरजः प्रसादकणिका लाभोन्मुखस्तन्मरौ ।
मन्ये मालवसिंह गूर्जरपतिस्तीव्रं तपस्तप्यते ॥

उपर्युक्त तीनों कृतियों की तुलना के आधार पर कहा जा सकता है कि धनपाल एवं पद्मगुप्त ने परमारवंशीय प्रसिद्ध राजाओं का ही उल्लेख किया है। तीनों वंशावलियों की तुलना के आधार पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि मुंज एवं सिन्धुराज के बाद ही भोजदेव गद्दी पर बैठे थे ।

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. प्रतिपाल भाटिया परमारवंश की वंशावली निम्नप्रकारेण देते हैं ।[३३]

(१)	उपेन्द्रराज	(ई. स. ७९१ से ८१८ तक)
(२)	वैरिसिंह (प्रथम)	(ई.स. ८१८ से ८४३ तक)
(३)	सियाक (प्रथम)	(ई.स. ८४३ से ८६० तक)
(४)	अनामी राजा	(ई.स. ८६८ से ८९३ तक)
(५)	कृष्णराज (अपरनाम वाक्पतिराज –प्रथम)	(ई.स. ८९३ से ९१८ तक)
(६)	वैरिसिंह (द्वितीय)	(ई.स. ९१९ से ९४५ तक)
(७)	हर्ष (अपर नाम सीयाकदेव द्वितीय)	(ई.स. ९४५ से ९७४ तक)
(८)	वाक्पतिमुंज (द्वितीय)	(ई. स. ९७४ से ९९४ तक)
(९)	सिन्धुराज	(ई. स. ९९७ से १०१० तक)
(१०)	महान भोज	(ई.स. १०११ से १०५५ तक)

मेरुत्तुंगाचार्य रचित प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार महाराज भोजने ५५ वर्ष तक राज्य की बागडोर संभाली ऐसा हम उपर देख आये हैं । किन्तु कुछ साहित्यिक सामग्री एवं उपलब्ध शिलालेखों के आधार पर भोज के समय काल को निम्न समय में उपलब्ध पाया जाता है ।[३४]

		वि.सं.	ई.स.
(१)	मोडासा प्लेट्स	१०६७	१०११
(२)	महुडी प्लेट्स	१०७४	१०१७
(३)	बांसवाडा प्लेट्स	१०७६	१०२०
(४)	बेत्मा प्लेट्स	१०७६	१०२०
(५)	उज्जैन प्लेट्स	१०७९	१०२२

३३. Bhatia Dr. ratipal - Par. PP 36-75

३४. Ibid : PP 75-76

(६)	देवलपुर शिलालेख	१०७९	१०२२
(७)	सरस्वती प्रतिमा (ब्रिटिश म्युजियम शिलालेख)	१०९१	१०३४
(८)	राजमृगांककरण	शक सं. ९६४	१०४२
(९)	तिलकवाडा का ताम्रपत्रलेख	११०३	१०४६
(१०)	दशबालीय चिन्तामणि सारणिका	शक सं. ९७७	१०४६

भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह [३५] के ताम्रपत्र पर १०५५ ई.स. अंकित है । उपर्युक्त निष्कर्षो के आधार पर भोजदेव की तिथि को संभवत : १०१० से १०५५ ई.स. के मध्य में निर्धारित करना युक्तिसंगत होगा, अर्थात् ११ वीं शती के प्रथम द्वितीय चरण में वे मौजूद थे ।

भोजदेव की प्रसिद्धि : अपने पिता की मृत्यु के बाद भोज जब सिंहासन पर आरुढ हुआ तब उसकी आयु करीब 20 वर्ष की रही होगी । [३६]

उदयपुरप्रशस्ति में लिखा है कि-

आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयद्रिद्वयाद्वा ।
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ।। [३७]

भोज का राज्य उत्तर में हिमालय से दक्षिण में मलयाचल तक, पूर्व में उदयाचल से पश्चिम में अस्ताचल तक फैला हुआ था । परन्तु यह केवल कवि कल्पना ही प्रतीत होती है । भोज प्रतापी नरेश था इसमें कोई शंका नहीं है । उसका राज्य बुन्देलखण्ड एवं बधेलखण्ड को छोडकर सारा मध्यभारत एवं नर्मदा तथा गोदावरी के बीच का सारा प्रदेश इसकी सीमा में आता था।

भोजने चेटीश्वर, इन्द्ररथ, भीम, तोग्गल, कर्णाट, लाट गुर्जरनरेश एवं तुरुष्कों को भी जीता था । इस विषय में उदयपुर प्रशस्ति में निम्नश्लोक मिलता है-

चेदीश्वरेन्द्ररथ (तोग्ग) ल (भीममु) ख्यान्
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान्
यद् भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला
दोष्णां बलानि कथयन्ति न (योद्धृ) लोकान् ॥ १९ ॥

इस प्रकार से अपने समय के सभी राजाओं से भोज अधिक प्रतापी था।

---

३५. E.I. III PP. 46-50 (Mandhata Plate)

३६. रे. उ. विश्वेश्वरनाथ - रा. भो.

३७. E.I. IX P. 235

उपर जैसा कि हम बता चुके हैं कि भोज के चाचा मुंज ने जब ज्योतिषी से सुना कि भोज ५५ वर्ष ७ मास और तीन दिन राज्य करेगा, इस प्रकार से भोज का उज्जवल भविष्य सुनकर महाराज मुंज के चहेरे का नूर उड गया। उनका खाना पीना और नींद हराम हो गई । भोज का काँटा दूर करने की मुंजने योजना बनाई । अपने एक विश्वासु व्यक्ति वत्सराज को उसने आदेश दिया कि एकान्त वन में भोज का वध कर दिया जाए एवं उसकी आँखे एवं मस्तक मेरे सामने उपस्थित किये जाय । किन्तु वत्सराज बड़ा ही चतुर एवं होशियार था । वह महाराज सिन्धुल का भक्त एवं भोज की गुणाग्राहिता से प्रभावित था । मुंज की आज्ञा का उल्लंघन हानिप्रद है ऐसा सोचकर ''तथास्तु'' कहके भोज को रात्री के समय अपने घर ले गया और भोज को सारी घटना कह सुनाई । तत्पश्चात् भोज की आकृति के अनुरूप किसी दूसरे के नेत्र एवं मस्तक महाराज मुंज के सामने पेश करके भोजका अंतिम संदेश श्लोकरूपेण महाराज मुंज को दिया । वह श्लोक इस प्रकार से है –

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ॥
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते ।
नैकेनापि समं गता वसुमती मुंज त्वया यास्यति ॥ [३८]

अर्थात् हे राजा सत्‌युग का सर्वश्रेष्ठ मान्धाता भी चला गया ।

समुद्र पर पुल बाँधकर रावण को मारनेवाला त्रेतायुगी राम भी कहाँ जीवित है ? द्वापरयुगी युधिष्ठिर भी स्वर्गगामी हो गये, परन्तु पृथ्वी किसी के साथ नहीं गई । संभव है हे चाचा मुंज कलियुग में तुम्हारे साथ शायद आएगी।

राजा ने यह विद्वद्‌पूर्ण श्लोक पढा और बेभान हो गया । वह विलाप करने लगा एवं अपने किये पर पछतावा करने लगा । इसी बीच किसी कापालिक के चातुर्य से मुंज के समक्ष भोज को उपस्थित किया गया । अन्त में भोज के प्रति दुर्व्यवहार के कारण मुंज को संसार वैराग्य उत्पन्न हो जाता है । वह स्वयं दीक्षा लेता है एवं भोज को राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त करता है ।

यह घटना संस्कृत के महाकवि ''बल्लाल'' ने अपनी कृति ''भोजप्रबन्ध'' में दी है । भोज के वास्तविक जीवन से यह घटना अक्षरशः मेल न भी खाती

---

३८ मेरुत्तुंग – प्र. चि.

हो किन्तु भोज निःसंदेह राज्याधिकारी बनने से पूर्व लोकप्रिय तो था ही ।

न्यायी एवं दानप्रिय राजा - उपर जैसा कि हमने बताया परमारवंश के जितने भी सम्राट् हुअे उनमें भोजदेव अत्यधिक धार्मिक न्यायी एवं दानी थे । उदयपुर से मिली प्रशस्ति में लिखा है - कविराज भोज की कहाँ तक प्रशंसा की जाय । उसके दान, ज्ञान एवं कार्यो की कोई बराबरी नहीं कर सकता ।[३९] उदयपुर प्रशस्ति में आगे लिखा है कि उसने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुडीर, काल, अनल और रुद्र के मंदिर बनवाये थे ।[४०]

भोज के राज्य में प्रजा सुखी थी । वह दानप्रिय एवं विद्वान् भी था । कवियों का एवं विद्वानों का सन्मान करने में वह दक्ष था । उसकी राजसभा में कालिदास, भवभूति, माघ, मयूर, बाण, शुकदेव, महेश्वर, मल्लिनाथ आदि कवि राज्याश्रय पाते थे । वस्तुतः इन सभी कवियों के नाम इतिहास प्रसिद्ध हैं, और भोज की दानप्रियता एवं विद्वत्ता का सन्मान करने की दक्षता जताने हेतु ये सब नाम लिये गये हैं अन्यथा ऐतिहासिक कालगणना के आधार पर ये सभी कवि भोज के समकालीन नहीं ठहरते । फिर भी भोज दानवीर था इसमें कोई संदेह नहीं । और भोज जिस किसी कविपर रीझ जाता था उसे "प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ" इस उक्ति में अतिशयोक्ति हो सकती है किन्तु सत्य का अंश भी नहीं है ऐसी बात नहीं है ।

भोज की महिमा का गान गाते हुअे "गोविन्द" नामक विप्रने कहा है कि -

दृष्टे भोजराजेन्द्रे गलन्ति त्रीणि तत् क्षणात् ।
शत्रोः शस्त्रं कवेः कष्टं गर्वितानां च गौरवम् ॥

भोज राजा के दर्शन मात्र से शत्रुओं के शस्त्र, कवियों के कष्ट एवं अभिमानियों के गर्व का मर्दन हो जाता है ।

भोजदेव के समय में धारानगरी शिक्षा - दीक्षा का प्रमुख केन्द्र थी ।

---

३९. E.I.I.P. 235-
साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित् ।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥

४०. Ibid I.P. 236- केदार रामेस्व (श्व) रसोमनाथ -
(सुं) डीरकालानलरुद्रसत्कैः ।
सुराश्र (यै) र्व्याव्य च यः समन्ता -
द्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार ॥२०॥

अपनी राजधानी धारानगरी में संस्कृत के पठन - पाठन के लिये भोजशाला [४१] नाम की एक पाठशाला बनवाई थी । उसके राज्य में सामान्य से सामान्य प्रजा भी पढी लिखी एवं संस्कृत भाषा जानती थी । एक दिन शाम के समय भोज आखेट हेतु नगर से बाहर अश्व पर आरुढ होकर जा रहे थे उस समय सामने से उन्हें एक लकडहारा आता हुआ दिखाई दिया । समीप आने पर राजा भोजने उसे पूछा कि "भारं न बाधति ?" तुम्हें लकडी का भार नहीं लग रहा है ? भोज के अशुद्ध वाक्यप्रयोग को सुनकर लकडहारे ने प्रत्युत्तर दिया -

"भारं न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते ।" अर्थात् हे महाराज सिर पर लकडी का बोझ नहीं लग रहा है जितना आपने शुद्धप्रयोग बाधते शब्द की जगह अशुद्ध 'बाधति' शब्द का प्रयोग किया है उसका बोझ मुझे सता रहा है । [४२]

भोजदेव की घोषणा - भोजने अपने नगर में घोषणा करवायी थी कि यदि ब्राह्मण भी हो किन्तु वह मूर्ख हो तो उसे देश निकाल दे दिया जाय एवं कुम्भकार भी यदि पढा लिखा हो तो उसे नगर में रहने के लिये जगह दी जाय-

विप्रोऽपि भवेन्मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे ।

कुंभकारोऽपि यो विद्वान् स तिष्ठतु पुरे मम ॥ [४३]

इसी से पता चलता है कि भोजदेव के राज्य में प्रजा पढी लिखी एवं सुखी थी । उनके समय में धारानगरी अपने विकास की चरमसीमा पर थी। यद्यपि उक्त दन्तकथा में सत्यांश अत्यल्प है, ऐतिहासिक दृष्टि से इसका मूल्य नहीवत् होने पर भी भोज की महत्ता प्रदर्शित करने हेतु इसका अत्यन्त महत्त्व है ।

---

४१. अर्जुनवर्मा के समय में बनी पारिजातमंजरी नाटिका में इस पाठशाला का नाम शारदासदन लिखा है । उससे यह भी ज्ञात होता है कि वहाँ पर बडे बडे विद्वान अध्यापक रक्खे जाते थे ।
द्रष्टव्य E.I. VIII P. 101
जगज्जडतांधकारशातनशरच्चन्द्रिकायाः सा (शा) रदादेव्याः सद्मनि सकल दिगन्तरोपागतानेकत्रैविद्यसहृदयकलाकोविदरसिकसुकविसंकुले ।

४२. बल्लाल - भो. प्र.

४३. वहीं द्रष्टव्य ।

किसी समय लक्ष्मीधर नामके कवि ने भोज से निवास हेतु आश्रय माँगा। भोज ने मंत्री को आदेश दिया कि कविवर के निवास हेतु घर की व्यवस्था की जाय । मंत्रीवरोंने घूम घूम कर तलाश की, किन्तु रिक्त मकान अभाव के कारण किसी तन्तुवाय (जुलाहा) को निकाल दिया । वह शिकायत करता हुआ राजा भोज के दरबार में पहुँचा और उसने कहा कि मंत्री महोदय ने मुझे मूर्ख समझ कर घर से निकाल दिया है एवं कवि महाशय को मेरा घर दे दिया है । महाराज भोज ने जुलाहे से आजिविका विषयक प्रश्न पूछा । उसके जवाब में वह कहता है कि

काव्यं करोमि न हि चारुतरं करोमि ।
यत्नाद् करोमि यदि चारुतरं करोमि ।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ
हे साहसांक कवयामि वयामि यामि ॥

यह है भोजकालीन भारतवर्ष की स्थिति । सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी कितना नीडर स्वतंत्र एवं सुखी था । भोज के साथ जुडी इन कथाओं में अतिशयोक्ति होने की संभावना जरूर है किन्तु ये सभी उद्धरण भारत की अस्मिता के परिचायक हैं । निस्सन्देह परमारवंशी राजा भोज की तुलना विक्रमादित्य से की जा सकती है, और की गई भी थी ।

भोजदेव महान योद्धा - भोज के शासनकाल में धारानगरी का वैभव चरम सीमा पर पहुँच चुका था । भोज में योद्धा एवं शासक दोनों के ही गुणों का समन्वय हुआ था । वह अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी था । उसने अपने जीवन का अधिकांश समय युद्धक्षेत्रमें बिताया । तथा अपने समकालीन अनेक राजाओं से युद्ध किये । सबसे पहले उसने कल्याणी के चालुक्यों से मुंज की हार बदला लेने का प्रयत्न किया । उसने कालचुरि नरेश गांगेयदेव तथा राजेन्द्र चौल से मित्रता कर ली और फिर चालुक्यों पर आक्रमण किया । भोज ने अपने चाचा का बदला लेने के लिये तैलप के तीसरे उत्तराधिकारी जयसिंह द्वितीय पर चढाई की और उसे हराकर अपना क्रोध शान्त किया । [४४]

---

४४ वि. दे. च. - विक्रमांकदेवचरित से जयसिंह का युद्ध में मारा जाना प्रकट होता है ।
यशोवतंसं नगरं सुराणां कुर्वन्नगर्वः समरोत्सवेषु ।
न्यस्तां स्वहस्तेन पुंरदरस्य यः पारिजातस्रजमाससाद ॥१-८६॥

अप्पय दीक्षित ने "कुवलयानन्द" नामक अलंकार ग्रन्थ में अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण देते हुअे एक श्लोक उद्धृत किया है ।[४५] उसमें समुद्र और नर्मदा के बीच वार्तालाप करवाकर यह प्रकट किया गया है कि कुन्तलेश्वर के हमले में मरे हुए मालवे वालों की स्त्रीयों के रोने से जो कज्जल मिले आँसू बहे उनसे नर्मदा का पानी भी यमुना के जल के समान काला हो गया।

यद्यपि इस श्लोक में किसी नरेश का नाम उल्लिखित नहीं है तथापि कुन्तलेश्वर ने मालवे पर चढाई अवश्य की थी एवं भोजदेव को हराया होगा।

परन्तु उदयपुर प्रशिस्त से प्रकट होता है कि सोमेश्वर के साथ युद्ध में अन्तिम विजय भोजदेव के ही हाथ रही थी ।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में लिखा है कि भोज ने सांभर के चौहान वीर्यराम को भी युद्ध में मारा था ।[४७]

तुरुष्को के साथ युद्ध में लाहोर के राजा जयपाल के पुत्र आनंदपाल की उज्जैन के राजा भोजदेव ने मदद की थी ।[४८]

भोज ने हैहयवंशी युवराज द्वितीय के पौत्र गांगेयदेव को, जो विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध था, हराया था ।[४९] परन्तु भोज दक्षिण पर अपना राज्य कायम करने मे असफल रहा । कुछ ही वर्षो उपरांत चालुक्य राजा जयसिंह (द्वितीय) ने भोज के राज्य पर आक्रमण किया और उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया । इसके उपरांत भोजदेव ने त्रिपुरी के गांगेयदेव कालचुरि को परास्त किया । संभवतः कुछ समय के लिये कनोज पर भी उसका अधिकार रहा होगा । भोजने विद्याधर चन्देल तथा ग्वालियर के कीर्तिराज पर आक्रमण

---

४५. अप्पयदीक्षित - कुव. -

कालिन्द्रि ब्रूहि कुम्भोद्भवजलधिरहं, नाम गृह्णासि कस्मा -
च्छत्रोर्मे, नर्मदाहं, त्वमपि वदसि मे नाम कस्मात्सपत्न्याः ।
मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि, मिलत्कज्जलैर्मालवीनां
नेत्राम्भोभिः, किमासां समजनि कुपितः कुन्तलक्षोणिपालः

४६. E.I. IV P. 235

४७. पृ. रा. वि. स. - ५

अगम्यो नरेन्द्राणां सुधादिधिति सुन्दरः
जघ्ने यशश्चयो यश्च भोजेनावन्तिभूभुजा ॥

४८. Brigis : Faristha I P. 46

४९. E.I. VIII P. 101

किये किन्तु उसे सफलता नही मिली । शाकम्भरी के चौहानो को तथा गुजरात के कीर्तिराज एवं भीम (प्रथम) को भी उसने हराया था ।

राजा भोजदेव का द्वितीय नाम "त्रिभुवननारायण" [५०] या "त्रिलोकनारायण" था । उसने अपनी राजधानी उज्जैन से हटाकर (धारा) में प्रस्थापित की थी। इसमे वह धारेश्वर भी कहलाता था । इसकी उपाधियाँ परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर और मालवचक्रवर्ती मिलती हैं ।

इस प्रकार से भोजदेव ने महान योद्धा के रूप में अपने शासन की नींव गहरी डाली थी । उसके पूर्वजो में से किसी ने भी मालवे का जितना विस्तार नहीं किया था उतना विस्तार भोज ने किया । इस प्रकार से भोजदेव कुशल प्रशासक एवं योद्धा भी थे ।

महाराज भोज के उत्तराधिकार के विषय में विवाद -

जैसा कि उपर हम बता चुके हैं कि भोज के पिता का नाम सिन्धुल या सिन्धुराजा था, तथा चाचा का नाम मुंज अथवा तो वाक्यपतिराज था । मुंज बडे भाई थे एवं सिन्धुल छोटे भाई थे । भारतवंशीय परिपाटि के अनुसार मुंज (प्रथम) सिंहासनारूढ हुअे । (जिनका समय ९७४ से ९९४ तक का था)। तदनन्तर उनके छोटे भाई सिंन्धुराज (भोज के पिता) ई. स. ९९७ से १०१० तक राजगद्दीके वारिस बने । 'तिलकमंजरी' 'नवसाहसांकचरित' एवं 'उदेपुर प्रशस्ति' में दी हुई वंशावली भी उसी बात की साक्षी है । किन्तु बल्लालरचित भोजप्रबन्ध में वर्णित "मान्धाता स महीपति" वाला श्लोक मुंज के बाद भोज को ही गद्दी का अधिकारी घोषित करता हैं । इसी प्रकार से 'तिलकमंजरी'में धनपाल ने [५१] जो पंक्ति उद्घृत की हैं उससे भी यही प्रमाणित होता है कि मुंज ने स्वयं भोज को राजगद्दी अधिकारी नियुक्त किया था ।

डॉ. प्रतिपल भाटिया [५२] इस कथन को इस प्रकार समझाते हैं कि भोज बचपन से ही होनहार थे । चाचा वाक्पतिराज एवं महाराज सिन्धुराज को भोज के प्रति असीम प्रेम था, और इसी प्रेम की प्रतीति कराने के लिये उन्होंने अपनी उपस्थिति में ही भोजराज का युवराज के पद पर अभिषेक किया ।

---

५०. वर्धमान सूरि - ग. र. महो० अ. ३ पृ. १५० - १५१ -
"वीक्षस्व तैकायनि शासको ऽयं.......त्रिलोक नारायण भूमिपालः ।"

५१. धनपाल - ति. मं. उपो. श्लो. ४३) यः स्वे वाक्पतिराज भूमिपतिना राज्येभिषिक्तः स्वयम् ।

५२. Bhatia Dr. Pratipal Par. P 74

बल्लाल लिखित भोज प्रबन्ध में ''मान्धाता स महीपति0'' वाला श्लोक भोज की विद्वत्ता को प्रदर्शित करने हेतु ही लिखा गया था ऐसा हमारा विचार है।

महाराज भोजदेव वेदानुयायी हिन्दु थे या जैन ?

महाराज भोजदेव वैदिक धर्मावलंबी थे या जैन धर्मावलम्बी थे इस विषय में भी मतभेद है । हमारे विचार से भोज वैदिक धर्मावलम्बी ही थे परन्तु जैन धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण आदर का था ।

इस हेतु अघोलिखित प्रमाण पर्याप्त होंगे -

(१) परमारवंशी नरेश अग्निकुलीय थे तथा उनका गोत्र वसिष्ठ था । वे ब्राह्मण थे परन्तु किसी क्षत्रिय कन्या से विवाह करने के कारण से वे क्षत्रिय कहलाने लगे ।[५३]

(२) महाराज भोजदेव लिखित 'श्यामलादण्डक' के बारे में निम्न श्लोक प्राप्त होते हैं जो भोज का समय एवं धर्मानुसरण निर्धारण हेतु उपयोगी है-

''धाराधीशो धराधीशो धारायां धनदोपमः ।
बभार राज्यं भोजाख्यो दानमानैः च पण्डितान् ॥
म्लेच्छाँनम्लोचयद्वीरो द्वारकायां विराजितम् ।
शङ्कराचार्यगुरुणां स्वे मोषिणो मतदूषिणः ॥
लोकाक्षिरससंख्याकः (९२३) शाकाब्दे पूर्णिमा तिथौ ।
श्रवणे मासि विप्रेभ्यः कविभ्यो व्यतरन् मुदा ॥
ग्रामान्सोमोद्भवातीरे शतं यो गिरिशप्रियः ।
सरस्वतीकण्ठभूषां सारसालंकृतिं द्रुतिम् ॥
प्राणमत् कीर्तिकामस्य प्रायच्छत् स्वस्य नित्यताम् ।
जीयतां तद्यशो नित्यमाचन्द्रार्कं द्युभूषणम् ॥
महादेव द्विजश्चैव महाकालस्य पूजकः ।
पुरान्तकस्तस्य पुत्रः पुरारेः कृपयाऽभवत् ॥
श्यामलायाः प्रसादाद्यः श्यामलादण्डकं व्यधात् ।
वाग्देवी यस्य वश्याभूत वाचो वाचस्पतेरिव ॥
तस्मै ग्रामान् शतमदात् शिप्रावारसवेदिनः ॥[५४]

---

५३. धनपाल - ति. मं. उपो. श्लोक. ३९ : वसिष्ठैः स्म कृतस्मयो.....

५४. युगादिपुष्पिकासंचिकापुष्पांजलि पृ. २२४ (१९१७.१)
Bharati Srimukha P. 527

उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर महाराज भोज शक सं. ९२३ में हुअे थे । किं च वे कवियों एवं विद्वानो का आदर करनेवाले एवं उज्जैन स्थित महाकाली एवं महादेव के पूजक थे । उपर्युक्त श्लोक भी उनके वैदिक धर्मावलम्बी होने का परिचायक हैं ।

(३) महाकवि बल्लाल विरचित 'भोजप्रबन्ध' में भोज की प्रशस्ति सम्बन्धी कथाएँ दी हुई हैं । उनके अवलोकन से भी पता चलता है कि वहाँ एक भी ऐसी कथा नहीं है जो भोज को जैन मतानुयायी सिद्ध करे । अपितु भोज शैव ही थे एतदर्थ निम्न श्लोक दृष्टव्य है -

प्रभुमिः पूज्यते विप्रः कलैव न कुलीनता ।
कलावान्मान्यते मूर्ध्नि सत्सु देवेषु शंभुना ॥ [५५]

यहाँ 'प्रभु' शब्द भोज के लिये प्रयुक्त हुआ है और उसे इस श्लोक में शैवोपासक ही बताया गया है ।

(4) महाराज भोजदेव ने स्वरचित ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' में व्याकरण का प्रारंभ करते हुए मंगल हेतु जो स्तुति की है उसमें भी उन्होंने शिव का ही स्मरण किया है । यथा -

प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्ययाविव ।
श्रेयः पदमुमेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे ॥

यहाँ पर उमेश का स्मरण स्पष्ट करता है कि वे शिव के परम उपासक थे ।

(५) भोज शिव का भक्त था । उसने अपने राज्य में अनेक मंदिर बनवाये थे । [५६]

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर भोज शैव धर्मावलम्बी ही थे न कि जैन मतानुयायी यह स्पष्ट प्रतीत है ।

महाराज भोज को शैव धर्मावलम्बी प्रस्थापित करने बाद अब हम भोज जैन धर्म के विरोधी नहीं थे, वैदिक धर्म की भाँति ही उन्हें जैन धर्म के प्रति एवं जैन धर्म के विद्वानों के प्रति आदरभाव था यह बताने का प्रयत्न करेंगे ।

---

५५. बल्लाल - भो. प्र. पृ. १४ श्लोक. ६५
५६. दूबे डॉ. सत्यनारायण - प्रा. भा का. इति०

भारतीय लोककथाओं में महाराज भोज विक्रमादित्य की भाँति ही प्रसिद्ध थे । वे जैन धर्म के पोषक थे । भोज के पूर्वज प्रतापी राजा थे । एवं विद्वानों को सन्मान की दृष्टि से देखते थे । फिर चाहे वह विद्वान् हिन्दु हो या जैनी यह उनके लिये गौण था ।

(१) भोज के चाचा महाराज मुंज (अपरनाम वाक्पतिराज) स्वयं विद्वान एवं विद्यानुरागी थे । उन्होंने जैन कवियों एवं विद्वानों को अपने राज्य में प्रश्रय दिया था । मुंज के सम्बन्ध में 'प्रबन्धचिंतामणि' आदि जैन कवियों के ग्रंथों में अनेक कथाएँ मिलती हैं, जो उनको जैन धर्म का पोषक सिद्ध करती है।

मुंज के दरबार में जैन कवि धनपाल एवं जैनाचार्य महासेन एवं अमितगति सन्मान का स्थान पाते थे । डॉ ज्योतिप्रसाद जैन मुंज के बारे में बताते हैं कि "मुंज स्वयं जैनी था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता किन्तु वह जैन धर्म का पोषक था इसमें सन्देह नहीं । [५७]

(२) मुंज का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई सिन्धुल वह भी जैन धर्म का पोषक था । प्रद्युम्नचरित के कर्ता मुनि महासेन का वह गुरुवत् आदर करता था । जैन कवि पद्मगुप्त (अपरनाम अभिनव कालिदास) लिखित "नवसाहसांकचरित" इसी महाराज सिन्धुल की प्रशंसा में लिखा था । यह इस बात का द्योतक हैं कि महाराज सिन्धुल भी जैन धर्म के पोषक थे ।

(३) चाचा मुंज एवं पिता सिन्धुल का प्रभाव भोज पर पड़े यह स्वभाविक है । डॉ ज्योतिप्रसाद जैन भोज के बारे में लिखते हैं कि -

"भोज भी जैन धर्म का प्रबल पोषक था । उसके समय में धारानगरी दिगम्बर जैन धर्मका प्रमुख केन्द्र थी । भोज जैन विद्वानों एवं कवियों का आदर करता था । उसने जैन मन्दिरों का भी निर्माण कराया बताया जाता है। अमितगति, माणिक्यनन्दी, नयनन्दि, प्रभाचन्द्र आदि अनेक ग्रंथो के रचयिता दिग्गज जैनाचार्यों ने राजा से आश्रय एवं सन्मान प्राप्त किया था । आचार्य शान्तिसेनने उसकी राजसभा में अनेक अजैन विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था । भोज का सेनापति कुलचन्द्र भी जैनी था । राजा भोज स्वयं सुकवि एवं सुलेखक था । परिणामस्वरूप जैन एवं अजैन विद्वान् उसकी सभा में आदर का स्थान पाते थे । [५८]

---

५७ जैन डॉ. ज्योतिप्रसाद - भा. इति. ए. दष्टि. पृ. १६७.

५८ वहीं - पृ. १६८

उक्त विधानों के आधार पर हम स्पष्ट रूपसे कह सकते हैं कि तत्त्वतः भोज वैदिक धर्मावलम्बी था, परन्तु वह जैन धर्म का भी प्रबल पोषक था।

प्रभावशाली व्यक्तित्व : - उपर जैसा की हम बता चुके हैं कि भारतीय लोककथाओं में जो स्थान विक्रमादित्य का है वही स्थान धारानरेश भोजदेव का है । वह मात्र योद्धा या शासक नहीं था अपितु उच्चकोटि का विद्वान एवं कलामर्मज्ञ था । प्रजा के सुखार्थ उसने अनेक धर्मशलाएँ, देवमन्दिर एवं आश्रयस्थान बनवाये थे । आधुनिक भोपाल के दक्षिण में उसने भोजपुर नाम का नगर बसाया था । उसने अपनी राजधानी धारा को सुंदर भवनों से अलंकृत किया था और बेतवा नदी से काटकर प्रसिद्ध भोजसागर का निर्माण कराया था । वह बड़ा विचारशील, पराक्रमी एवं वीर था । वह गुणग्राही एवं विद्यानुरागी था । उसके बारें में कहावत हैं कि -

कविषु वादिषु भोगिषु देहिषु
द्रविणवत्सु सतामुपकारिषु ।
धनिषु धन्विषु धर्मधनेष्वपि
क्षितितले नहि भोजसमो नृपः ॥ [५९]

(कवियों में, वादियों में, भोगविलास भुगतने में, ऐश्वर्यवानों में, धन में, धनुर्धारियों में एवं धर्म में भोज के समान इस पृथ्वी तल पर कोंई नहीं है)।

महाराज भोजदेव महादानी थे । विद्वानों एवं कवियों के लिए कल्पवृक्ष समान थे । महाराज भोज के बिना वे अपने आपको निराधार समझते थे । कवियों की परीक्षा करने हेतु उन्हों ने अपने आपको मृत घोषित करवाया तथा योगी का वेश लिया । ''अनाश्रयाः न शोभन्ते पण्डिताः वनिता लता'' अर्थात् जो हाल राजा रहित पण्डितों का, पति रहित पत्नीका एवं वृक्ष रहित वल्लरीका होता है वही हाल भोज के दरबारी कवियों का हुआ । पंण्डितो ने भोज को शोकांजली अर्पित करते हुए निम्न श्लोक पढा -

''अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते'' ॥ [६०]

जब योगियों के वेश में भोज ने कवियों के विलाप को सुना तब उन्होंने सारी रामकहानी सुनाई और कहा कि मैं स्वयं भोज हूँ । इस प्रकार से अपने

---

५९ बल्लाल - भो. प्र. पृ. १६३
६० वहीं - पृ. २७१.

आपको प्रकट करने के पश्चात् प्रसन्नता प्रकट करते हुए कवियों ने उपरी निर्दिष्ट श्लोक को अन्यथा पढा -

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती ।

पण्डिताः मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते ॥ [६१]

भले ही इस दंतकथा में सत्य का अंश स्वल्प मात्रा में हो तथापि भोज की महानता एवं गुणग्राहिता का पता चलता है ।

भोजदेवकी मृत्यु - भोज के सिंहासनारोहण एवं मृत्यु की निश्चित तिथियाँ अज्ञात हैं, किन्तु भोज का अन्त दुःखद हुआ । ई. स. १०४२ के लगभग चालुक्य राजा सोमेश्वर (प्रथम) ने भोज के राज्य पर आक्रमण किया तथा उसकी राजधानी मालवा को लूटने में वह सफल ही हुआ । भोज को अपनी राजधानी छोडकर भागना पडा । किन्तु शीघ्र ही उसने पुनःलौटकर अपनी राजधानी फिर से प्रस्थापित की ।

उसके बाद भोज के कुलचन्द्र नामक जैन सेनापति ने गुजरात के राजा भीम पर आक्रमण किया । भीम ने अपने राज्य की रक्षा के लिये कालचुरि राजा लक्ष्मीकर्ण, जो गांगेयदेव का पुत्र था उससे संधि कर ली । शुरु शुरु में गांगेयदेव भोजका मित्र था किन्तु बाद में उसके सम्बन्ध भोज से अच्छे नहीं रहे। अतः लक्ष्मीकर्ण एवं भीम ने संयुक्त योजना बनाकर एक साथ पूर्व तथा पश्चिम से भोज के राज्य पर आक्रमण किया । भाग्यलक्ष्मी भी भोज का साथ छोड चुकी थी और दुर्दिनों ने उसे आ घेरा था । युद्ध के बाद भोज बिमार पड गया और शीघ्र ही (१०५५ के करीब) वह चल बसा । [६२]

महाराज भोजदेव की रचनाएँ :- महाराज भोजदेव की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । उन्होंने संस्कृत साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अपनी लेखनी चलाई है । भोजदेव की रचनाओं का वर्गीकरण डो. टी.आर. चिन्तामणि ने इस प्रकार से दिया है - [६३]

(क) काव्यसाहित्य :- (१) शालिकथा (२) शृंगारमंजरी
(३) विश्रान्तविद्याविनोद ।

---

६१. बल्लाल - भो. प्र. पृ. १७२.

६२. दूबे डॉ सत्यनारायण - प्रा. भा. इति. पृ. ३२०

६३. Chintamani Dr. T. R. - S.K. Intro pp. XV-XVI.

(ख) काव्यशास्त्र	(१) सरस्वतीकण्ठाभरण (अलंकार)
	(२) शृंगारप्रकाश ।
(ग) व्याकरणशास्त्र :-	(१) सरस्वतीकण्ठाभरण ।
(घ) कोश - निघण्टुः	(१) अमरव्यारव्या (२) संयमिनाममालिका
(ड) धर्मशास्त्र :-	(१) राजमार्तण्ड (२) युक्ति कल्पतरु
	(३) व्यवहार समुच्चय । (४) रत्नमाला।
(च) ज्योतिष :-	(१) राजमृगांक (२) विद्वज्जनवल्लभ
	(३) भुजबलनिबन्ध (४) प्रश्नचिन्तामणि।
(छ) योग :-	(१) योगसूत्रवृत्ति ।
(ज) आयुर्वेद —	(१) राजमृगांक (२) चारुचर्या
	(३) आयुर्वेदसर्वस्व ।
(झ) विज्ञान :-	समरांगणसूत्रधार (वास्तु) शालिहोत्रन्याय ।
(ञ) धनुर्वेद :	(१) कोदण्डमण्डन (भोज द्वारा लिखवाया गया)
(ट) संगीत :-	(१) गीतप्रकाशं (अनुमानित नाम)

श्री विश्वेश्वरनाथ रे उ ने भोजदेव की कृतियों का विषय विभाजन निम्नप्रकारेण किया है ।[६४]

(१) **ज्योतिष** - (१) राजमृगांक[६५] (करण) (२) राजमार्तण्ड (३) विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नज्ञान (४) आदित्यप्रताप सिद्धान्त (५) भुजबलनिबन्ध ।

(२) **अलंकार** - (६) सरस्वतीकण्ठाभरण (७) शृंगारप्रकाश ।

(३) **योगशास्त्र** - (८) राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति (पातंजल योग सूत्र की टीका)

(४) राजनीति और धर्मशास्त्र : - (९) पूर्तमार्तण्ड (१०) चाणक्य - राजनीतिशास्त्र (११) व्यवहारसमुच्चय (१२) चारुचर्या (१३) विविधविद्याविचारचतुरा (१४) सिद्धान्तसार पद्धति ।

(५) **शिल्प** : - (१५) समरांगण सूत्रधार (१६) युक्ति कल्पतरु

---

६४. रे. उ. विश्वेश्वरनाथ रा. भो. पृ. २३६ - २३७.

६५. ऑफरेक्ट (Aufrecht) ने अपनी सूचि में राजमृगांक के आगे विषय का निर्देश करते हुअे ज्योतिष एंव वैद्यक दोनों विषयों के नाम दिये हैं ।

(६) **नाटक और काव्य :** – (१७) चम्पूरामायण या भोजचम्पू के ५ काण्ड, (१८) महाकालीविजय (१९) विद्या विनोद (२०) शृंगारमंजरी (गद्यकाव्य) (२१) दो कूर्मशतक (प्राकृत में)

(७) व्याकरण : – (२२) प्राकृत व्याकरण (२३) सरस्वतीकण्ठाभरण

(८) वैद्यक : – (२४) विश्रान्त विद्या विनोद (२५) आयुर्वेद सर्वस्व (२६) राजमार्तण्डयोगसारसंग्रह ।

(९) शैवमत : – (२७) तत्त्वप्रकाश (२८) शिवतत्त्वरत्नकलिका (२९) सिद्धान्तसंग्रह ।

(१०) संस्कृत कोष : – (३०) नाम मालिका (३१) शब्दानुशासन

(११) अन्य : – (३२) शालिहोत्र (३३) सुभाषितप्रबन्ध (३४) राजमार्तण्ड (वेदान्त) थीओडोर ऑफडोर ऑफरेक्ट (Theodor Aufrecht) की कैटैलोगस (Catalogus Catalogrum) नामक बृहत् सूची में भोज के बनाये २३ ग्रंथों के नाम दिये हैं ६६

ऑफरेक्ट (Aufrecht) ने लिखा है कि शूलपाणि ने स्वलिखित "प्रायश्चित्त विवेक में, बौद्धलेखक दशबलने, अल्लाडनाथ ने तथा रघुनन्दनने स्वकृतियों में धर्मशास्त्र के लेखक के रूप में भोज का उल्लेख किया है । भावप्रकाश तथा माधवकृत 'रुग्विनिश्चय' में इसे आयुर्वेद ग्रंथों का लेखक कहा है । केशवार्क ने उसे ज्योतिष, संबन्धी ग्रंथों का लेखक माना है । क्षीरस्वामी सायण और महीप ने इसे व्याकरण और कोषकार कहा है । कविचित्तप, दिवेश्वर, विनायक और शंकरसरस्वती ने भोज के काव्य शक्ति की प्रशंसा की है ।

कृतियों का संक्षिप्त परिचय :-

(१) राजमृगांक (कारण) – यह राजा भोज का ज्योतिष विषयक ग्रंथ है ।इसके २८ पृष्ठ ही उपलब्ध है ।[६७] प्रथम दो पत्रों में अहर्गण लाने की, सब ग्रहों के अब्द बीजानयन की, और उदयान्तरानयन की विधियाँ उदाहरण देकर समझायी हैं । इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रपर्वाधिकार, सूर्यपर्वाधिकार, ग्रहास्तोदयाधिकार, ग्रहतारायुत्यधिकार तथा शृंगोन्नति अधिकार दिये हुअे हैं । इस

---

६६. रे उ विश्वेरनाथ – रा. भो. पृ. २३७ संभव है हमारे दिये ३४ नामों में से कुछ ग्रंथ किसी अन्य भोज नामधारी के बनाए हुए हों ।

६७. रे. उ. विश्वेश्वरनाथ – रा. भो. पृ. २३८ ये पत्र ज्योतिर्विद् पं. नृसिंहलाल शर्मा जोधपुर के संग्रह से मिले हैं ।

कृति का अंतिम श्लोक इस प्रकार से हैं -

देवः सराषसहनं ? क्षितिपालमौलि
मालामरीचिनिचयो चित्यांघ्रिपीठः ।
व्युत्पत्तिसारमिह राजमृगांकसंज्ञ
मेतद्व्यधाच्च करणं रणरंगमल्लः ॥

इस श्लोक में भोज का नाम नहीं मिलता है अपि तु रणरंगमल्लः नाम लिखा है । अतः उक्त कृति भोज की ही थी इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता ।

(२) राजमार्तण्ड : - यह पुस्तक बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से छपी है। इस में १४२१ श्लोक प्राप्त होते है । इस कृति का प्रथम श्लोक इस प्रकार से प्राप्त होता है ।

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलं स्कंधैस्त्रिभिर्ज्योतिषं
तस्योच्छित्तिभयात्पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम् ।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरो व्यारव्या तु सर्वां व्यधा -
दित्थं यत्प्रवदन्ति योगकुशलास्तस्मै नमो भास्वते ॥ १ ॥

(योगियों के कथानुसार जिस सूर्य ने अपने बनाये तीन स्कंधोवाले, बडे ज्योतिषशास्त्र के कलियुग में नष्ट हो जाने के भय से, वराह मिहिर के रूप में पृथ्वी पर आकर फिर से उसकी पूरी व्याख्या की उस सूर्य को नमस्कार है । होरा, गणित और संहिता ज्योतिष के ३ स्कंध हैं ।

पूर्वाचार्यमतेभ्यो यद्यच्छ्रेष्ठं लघु स्फुटं बीजम् ।
तद् बुद्धिदं शुभकरं रहस्यमभ्युद्यते वक्तुम् ॥

(अर्थ - प्राचीन आचार्यों के मतों से जो जो श्रेष्ठ, आसान, स्पष्ट और बीजरूप बाते हैं, उन बुद्धि बढानेवाली कल्याणकारक बातों का रहस्य प्रकट करने की कोशिश की जाती है ।)

कुंभलग्न में तथा मीन लग्न में कैसे काम करने चाहिये इस विषय में निम्न श्लोक दृष्टव्य है -

भेदां बुभागपरसंशयनीचकर्म
दंभव्रतानि च भवन्त्युदते घटस्य ।
मीनोदये च शुभमंगलपौष्टिकानि
कर्माणि चाप्यभिहितानि च चापलग्ने ॥

(अर्थ - फोड़ना, पानीका बटवारा, दूसरे पर संदेह, नीच, 'काम, दंभयुक्त व्रत आदि कुंभ लग्न के उदय होने पर करने चाहिये । मीन एवं धनुषलग्न में अच्छे मंगलदायक एवं पुष्टि करनेवाले काम करने चाहिये) ।

इस कृति के अन्त में निम्न पाठ मिलता है -

"इति श्री महाराजाधिराज श्री भोजविरिचितं राजमार्तण्डाभिधानं ज्योतिः शास्त्रं समाप्तम् ।

इससे सिद्ध है कि राजमार्तण्ड के रचयिता महाराज भोज ही थे । इस ग्रंथ में जीवन से मृत्यु तक होनेवाली सभी घटनाओं के मुहूर्त दिये गये हैं। इसके "रतिविधि फलं" नामक प्रकरण में सुराचार्य, विशालाक्ष तथा विष्णु के मत गण्डयोग में यवनाधिपति, भागुरि, गण्डगिरि तथा वराहमिहिर के मत प्रदर्शित किये हैं ।

इस कृति के यात्रा प्रकरण में एक श्लोक मिलता है -

अथ विदितजन्मसमयं नृपमुद्दिश्य प्रवक्ष्यते यात्रा ।
आज्ञाते तु प्रसवे गमने गमनं स्यात् क्वचित् क्वचित् ॥ ३८ ॥

अर्थात् राजा को उद्देश्य करके जिसका जन्म समय जाना हुआ है, यात्रा की तिथियाँ कही जाती हैं । परन्तु जिसका जन्म समय मालूम न हो उसका उन गमनयोग्य तिथियों में कहीं भी गमन हो सकता है ।

इस श्लोक की उक्ति को देखकर कुछ विद्वानों का मत है कि किसी अन्य विद्वान् ने इस ग्रंथ को लिखकर भोज के नाम चढ़ा दिया हो ऐसा प्रतीत होता है ।

"भोजदेवसंग्रह" का कर्ता दामोदर ही इसका लेखक हो तो आश्चर्य नहीं ।[६८]

(३) विद्वज्जनवल्लभम् : - यह राजा भोज का बनाया हुआ ज्योतिषशास्त्र का ग्रंथ है । इसमें १७ अध्याय हैं ।

(१) शुभाशुभाध्यायः	(९) बन्धमोक्षाध्यायः ।
(२) शत्रुसमागमाध्यायः ।	(१०) रोगाध्यायः ।
(३) गमनागमनाध्यायः ।	(११) कायावरणाध्यायः ।
(४) प्रोषिताध्यायः ।	(१२) गर्भवासाध्यायः ।

६८ रे. उ. विश्वेश्वरनाथ - रा. भो. पृ. २४२

(५) यात्राफलाध्यायः । (१३) वृष्टयध्यायः ।
(६) जयापजयाध्यायः । (१४) निक्षिप्तधनाध्यायः ।
(७) सन्धानाध्यायः । (१५) नष्टद्रव्याध्यायः ।
(८) आश्रयणीयाध्यायः (१६) धातुमूल जीव चिन्ताध्यायः
(१७) –

इस पुस्तक के अन्त में निम्न श्लोक प्राप्त होता है –

धातुर्मूलं भवति च धनं जीवमित्यो जराशौ
युग्मे राशौ त्रयमपि भवेदेतदेव प्रतीपम् ।
लग्ने योंऽशस्सकलसुधिया गण्य एव क्रमात्स्यात्
संक्षेपोयं नियतमुदितो विस्तरादत्र भेदः ॥

अर्थात् – विषम राशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ) का लग्न हो तो उनके नवांश के क्रम से धातु, मूल और जीव चिन्ता होती है। अर्थात् पहले नवांश में धातु, दूसरे में मूल तीसरे में जीव चिन्ता जाने । इसी प्रकार अगले नवाशों में भी समझना चाहिये । परन्तु युग्म (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, और मीन) में इससे उल्टा जाने । अर्थात् पहले नवांश में जीव दूसरे में मूल और तीसरे में धातु – चिन्ता समझे । इसी प्रकार अगले नवांशो में भी जाने । प्रत्येक बुद्धिमान को लग्नके नवांशो के क्रम से गिनना चाहिये। यहाँ संक्षेपसे कहा है । विस्तार से इसके कई भेद है ।

इस ग्रंथ के अन्त में लिखा है –

इति विद्वज्जनवल्लभाख्यमकरोच्छ्रीभोजदेवो नृपः ॥

इससे सिद्ध है कि इस ग्रंथ के रचयिता आचार्य भोजदेव हैं ।

(४) भुजबल निबन्ध :-

यह ज्योतिष का ग्रंथ है और इस में १८ प्रकरण दिये गये हैं ।

(१) रिष्टाध्यायः । (२) स्त्रीजातकलक्षणम्
(३) योगाध्यायः । (४) निन्दितयोगाध्यायः ।
(५) अष्टोत्तरशतवर्षदशाविधि। (६) कर्णादिवेधनम्ः।
(७) व्रत प्रकरणम् । (८) विवाहमेलकदशकम् ।
(९) विवाहः । (१०) प्रथमरजोनिरूपणम् ।
(११) गृहकर्मप्रवेशकरणम् (१२) सद्योवृष्टिलक्षणम् ।
(१३) कालशुद्धिनिर्णयः । (१४) योगयात्रा

(१५) ग्रहयोगोत्पातलक्षणसंक्षेपः। (१६) संक्रान्तिस्नानविधिः ।
(१७) चन्द्रसूर्यग्रहणविधिः । (१८) द्वादशमासकृत्यम् ।

इस ग्रंथ के आरंभ में भगवान विष्णु को प्रणाम करते हुए कहा गया है कि - ''इन्दीवरदलश्यामं पीताम्बरधरं हरिम् ।
नत्वा तु क्रियते यस्माज्ज्योतिषशास्त्रमनुत्तमम् ''॥

अर्थात् - नील कमल की पँखडी के समान श्याम रंगवाले, पीताम्बरधारी, विष्णु को प्रणाम करके श्रेष्ठ ज्योतिष के ग्रंथ की रचना की जाती है । आगे चलकर एक श्लोक में कवि कहता है कि -

न तत्सहस्रकरिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम् ।
करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥

अर्थात् - जो काम स्थान और समय को जाननेवाला ज्योतिषी कर सकता है, वह काम न तो एक हजार हाथी ही कर सकते है और न चौगुने घोडे ही।

भुजबल निबन्ध के अन्तमें कवि कहता है कि -

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च ।
शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम् ॥

अर्थात् - सोम, बुध, गुरु, शुक्र तथा रवि वारो में, (मृदु-चित्रा, अनुराधा, रेवती एवं मृग)क्षिप्र यानी (अश्विनी, पुष्प, हस्त और अभिजित), ध्रुव - (रोहिणी और तीनो उत्तरा) नक्षत्रो में तथा शुभराशि के लग्नों में शान्ति और पृष्टि करनेवाला कार्य करना चाहिये । यह कृति भोजदेव की है इस हेतु निम्न वाक्य उपलब्ध होता है -

''इति श्री भोजराजकृतौ भुजबलनिबन्धे ज्योतिषशास्त्रे द्वादशमासकृत्यं समाप्तम् ।''

(५) सरस्वतीकण्ठाभरणम् (अलंकार) -

यह अलंकार ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में ८३१६ श्लोक हैं । उक्त ग्रन्थ ५ परिच्छेदों में विभाजित है । महाराज भोज का यह मौलिक ग्रन्थ नहीं है । इस कृति में विश्वकोश की भाँति अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से विशेषतया ''दण्डी'' से उद्धरण संगृहीत किये गये हैं । जैकब (Jecob) के अनुसार इस कृतिमें दण्डि के १६४ उदाहरण उद्धृत हैं । भोजदेव ने इस कृति में वामन का २२ बार, रुद्रट् का १९ बार तथा ध्वन्यालोक का १० बार से अधिक उल्लेख किया

है । भोज ने यमक तथा उसके उपभेदों के विषय में "भट्टि व्याकरण" के अनेक उदाहरणों का उपयोग किया है ।

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने काव्यशास्त्र के सामान्य विषय विवेचन के पश्चात् क्रमशः शब्द तथा वाक्यार्थ के १६ दोषों की तथा क्रमशः शब्द तथा वाक्यार्थ के २४ गुणों की चर्चा की है ।

ग्रन्थ के आरंभ में -

ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम् ।
यस्याः सूक्ष्मादि भेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे ॥

(अर्थात् - ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य यें जिसके स्थान हैं ऐसे वाणी की देवता (सरस्वती) की हम सूक्ष्मादि भेद से उपासना करते हैं ।) ऐसा मंगलाचरण किया गया है ।

उत्तम काव्य की लाक्षणिकता दर्शाते हुअे भोजदेव कहते हैं कि -

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् प्रीतिं कीर्तिं च विन्दति ॥

(दोषों से रहित, गुणों से युक्त अलंकारों से सुशोभित और रसवाले काव्य को बनाता हुआ कवि संसार में यश और प्रेम को प्राप्त करता है ।)

दूसरे और तीसरे परिच्छेदों में क्रमशः २४ शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की परिभाषा तथा उदाहरण दिये गये हैं । चौथे परिच्छेद में रस, भाव नायक-नायिका, पंचसंधि तथा चतुर्वृत्ति इत्यादि का विवेचन है । भोज के इस ग्रन्थ की खास विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक नियम के लिये उदाहरण दिये गये हैं । इस कृति में "अग्निपुराण" की तरह एक मत परंपरा निहित है। इस कृति के लिये निम्न चार संस्करण उपलब्ध हैं : [६९]

इस ग्रन्थ पर "रत्नदर्पण" नाम की टीका भी मिलती है । [७०] इसके अलावा इस की एक टीका "सरस्वतीकण्ठाभरणविवरणम्" के नाम से जगद्धर

६९. (१) Edit by A. Borua, cal. 1884
(२) वीरेश्वर शास्त्री संपादित (अध्याय ४-५) बनारस १८८८.
(३) जीवानंद सम्पादित (अ. १-३) रत्नेश्वर की टीकासहित, कलकत्ता १८९४.
(४) केदारनाथ, दुर्गाप्रसाद तथा वासुदेव पणशीकर संपादित - (अ. १-३ पर) रत्नेश्वर की तथा (अ. ४ पर) जगद्धर की टीका सहित. निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९२५ तथा १९३४

७०. Cal. skt. Mss. edited by Rajendralal Mishra vol. IX pp. 230-231

ने भी बनायी थी ।[७१] और दूसरी व्याख्या भट्ट नृसिंह ने भी लिखी थी ।[७२]

(६) श्रृंगारप्रकाश : - यह भी भोजदेव विरचित काव्यशास्त्र का ही बृहद् ग्रन्थ है । इसकी पाण्डुलिपि गवर्नमेन्ट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास में विद्यमान है । यह ग्रन्थ ३६ प्रकाशों में रचा गया है । विषय विभाजन इस प्रकार से है -

(१) प्रकृत्यादिप्रकाश:	(२) प्रातिपदिकप्रकाश:
(३) प्रकृत्यादिशब्दप्रकाश:	(४) क्रियाद्यर्थचतुष्टयप्रकाश:
(५) उपाध्यर्थचतुष्टयप्रकाशः	(६) विभक्त्यर्थादिचतुष्टयप्रकाश:
(७) केवलशब्दसम्बन्धशक्तिप्रकाश:	(८) संक्षेपशब्दशक्तिप्रकाश:
(९) दोषहानिगुणोपादनप्रकाश:	(१०) उभयालंकारप्रकाश:
(११) रसवियोगप्रकाश:	(१२) प्रबन्धांगचतुष्षष्टिचतुष्टयप्रकाश:
(१३) रतिप्रकाश:	(१४) हर्षादिभावपंचकप्रकाश:
(१५) रत्यालंबनविभावप्रकाश:	(१६) रत्युद्दीपनविभावप्रकाश:
(१७) अनुभवप्रकाश:	(१८) धर्मश्रृंगारप्रकाश:
(१९) अर्थश्रृंगारप्रकाश:	(२०) कामश्रृंगारप्रकाश
(२१) मोक्षश्रृंगारप्रकाश:	(२२) अनुरागस्थापनप्रकाश:
(२३) विप्रलंभसंभोगप्रकाश:	(२४) विप्रलंभान्वर्थप्रकाश:
(२५) विप्रलंभसाधर्म्यवैधर्म्यप्रकाश:	(२६) -
(२७) अभियोगविधिप्रकाश:	(२८) दूतसम्प्रेषणादिलक्षणविचार:
(२९) मानप्राश:	(३०) प्रवासोपवर्णनम्
(३१) करुणरसविनिर्णय:	(३३) संभोगशब्दार्थप्रकाश:
(३४) प्रथमानुरागप्रकाश:	(३५) मानान्तरादिप्रकाशनम्
(३६) संभोगावस्थाप्रकाश: ।	

श्रृंगारप्रकाश संस्कृत काव्यशास्त्र में दीर्घकाय ग्रंथ माना जाता है । इसमें काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र दोनों ही विषयों पर विवेचन है । प्रथम आठ अध्यायों में शब्द तथा अर्थ से सम्बंधित व्याकरण की समस्या पर तथा वृत्ति के सिद्धांत पर चर्चा की गई है । ९-१० अध्यायों में गुणदोष का विवेचन तथा ११वें अध्याय में महाकाव्य तथा नाटक की चर्चा की गई है ।

---

७१. Cal. Skt. Mss of Govt. Lib. Kashmir pp. 275-276

७२. Cal. Skt. Mss of Govt. ori. Lib. Madras. Edit by M.M.Kuppuswami Shasbhtri vo III pr. I B 3518-3519

अगले चोबीस अध्यायों में रस सिद्धांत की चर्चा है । उसमें भी भोज द्वारा प्रस्थापित श्रृंगाररस, उसके भेद तथा चार पुरुषार्थो का निरूपण किया गया है । अर्धनारीनटेश्वर महादेव की स्तुत्यर्थ इस काव्य का प्रथम श्लोक इस प्रकार से है ।

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढमप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति ।
कान्ता विमिश्रवपुषः कृत विप्रलम्भसंभोगसख्यमिष पातु वपुःपुरारेः ॥

बिना टुटी हुई मेखलावाला, दृढ आलिंगन करने, चुंबन करने और एक दूसरे का मुख देखने में असमर्थ ऐसा अर्धनारीश्वर महादेव का वियोग और संभोग की हालतों का एक ही स्थान पर मिलता हुआ शरीर सबकी रक्षा करे ॥)

भोजदेव दस रसों का उल्लेख करते हुए श्रृंगार को ही एकमात्र रस उद्घोषित करते हैं यथा -

श्रृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः ।
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु
श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥

यहाँ तक की आठ स्थायीभाव, तैतीस व्यभिचारीभाव तथा आठ सात्त्विक भाव से उक्त उनचास (४९) भावोंवाले वीर रस को अनुपयुक्त बताते हुअे चतुवर्ग की प्राप्तिका एक मात्र कारणरूप श्रृंगार रस ही है यथा -

''एकोनपञ्चाशद्भावाः वीरादयो मिथ्यारप्रवादाः श्रृंगार एव एकश्चतुर्वर्गैककारणं रस इति ।''

श्रृंगार रस का महत्त्व दर्शाते हुअे भोजदेव कहते हैं -

तदेतत्कामसर्वस्वं तदेतत्काव्यजीवितम् ।
य एष द्विप्रकारोऽपि रसः श्रृंगारसंज्ञकः ॥

यह रस कामकला का सर्वस्व और काव्य का जीवनभूत अंग है । दोनों प्रकारका रस श्रृंगाररस ही कहाता है ।

यथेन्दुना निशा भाति निशाभिश्च यथोडुराट् ।
तथांगनाभिः श्रृंगारः श्रृंगारेण तथांगनाः ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा से रात्री शोभती है और रात्री से चन्द्रमा शोभता है उसी प्रकार स्त्रियों से श्रृंगार और श्रृंगार से स्त्रियाँ शोभती हैं ।

आचार्य भोजदेवनेही श्रृंगारप्रकाश की रचना की है इस हेतु निम्नवाक्य दृष्टव्य है – "इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोजदेवविरचिते श्रृंगारप्रकाशे संभोगवस्था प्रकाशो नाम षट्त्रिंशः प्रकाशस्समाप्तिमगमत्"

(७) **चाणक्यराजनीतिशास्त्रम् :** – यह राजा भोज का बनाया नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है । इसमें ग्रन्थ का आरंभ करने से पूर्व वे गणेश की स्तुति द्वारा नान्दीस्तवन करते हैं । नान्दीश्लोक इस प्रकार से है यथा –

एक दन्तं त्रिनयनं ज्वालानलसमप्रभम् ।
गणाध्यक्षं गजमुखं प्रणमामि विनायकम् ॥ १ ॥

(एक दाँत तीन नेत्रवाले, तथा अग्निकी ज्वाला के समान तेजस्वी, गणों के स्वामी, गज के से मुखवाले गणेश को नमस्कार करता हूँ ।)

विष्णु की स्तुति करते हुअे वे कहते हैं कि –

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम् ॥ २ ॥

सरदी से डरनेवाला ब्राह्मण, युद्ध से डरनेवाला क्षत्रिय और दान से डरनेवाला धनी ये तीनों स्वर्ग में नहीं जाते । इस हेतु वे कहते हैं –

शीतभीतश्च विप्रश्च रणभीतश्च क्षत्रियः ।
धनाढ्यो दानभीतश्च त्रयीं स्वर्गं न गच्छति ॥ १६३

चाणक्य राजनीतिशास्त्र को जो अपने जीवन में उतार लेता है उसे इस पृथ्वी पर कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इस हेतु वे कहते हैं –

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः ।
प्रहितं भोजराजेन भुवि किं प्राप्यते न तै : ॥ १६४ ॥

(८) चारुचर्या [७३]

बताया जाता है कि यह राजा भोज का नित्यकर्म सम्बन्धी ग्रन्थ है । ग्रन्थ के आरंभ में निम्नश्लोक प्राप्त होता है, यथा –

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्य धर्मशास्त्रानुसारतः ।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥

(बुद्धिमान राजा भोज नीतिशास्त्रों, श्रेष्ठ वैद्यों, और धर्मशास्त्र के मतानुसार (इस) चारुचर्या नामक ग्रन्थ की रचना करता है ।

७३. Cat. Skt. Mes of Govt. ori Lib. Madras Edit by M.M.Kuppuswami Shashtri vo. XXIII pp. 8937-38.

नित्य विधि विषयक चर्चा करते हुओ वे कहते हैं –

अथ शौचविधि: दन्तधावनं च.....ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्.....

.... कृतशौचावधिस्तत: ॥

प्रातरुत्थाय विधिना......

.......अत ऊर्ध्वं क्रमेण तु ॥

(अब शौच विधि और दतौन करने का तरीका बतलाते हैं । प्रात: काल जल्दी उठकर...शौच से निवृत्त होकर.....)

इस ग्रन्थ की समाप्ति में राजा भोज कहते हैं –

शुश्रूषणं गुरुस्त्रीणां तपस्तीर्थेषु मज्जनम् ।
विद्याया: सेवनं चैव सततं साधुसंगम: ॥
दीनान्धकृपणानां च भ्रातृणां चैव पोषणम् ।
कारयेत् सततं भक्त्या कीर्तिलक्ष्मीविवृद्धये ॥
हिताय राजपुत्राणां रचिता भोजभुभृता ।

(अपने यश और सम्पत्ति की वृद्धि के लिये हंमेशा गुरुओं और स्त्रियों की सेवा, तपश्चर्या, तीर्थो का स्नान, विद्या का अध्ययन, सत्पुरुषों का संग, गरीबों, अंधो, असहायों की और रिश्तेदारों की सहायता करनी चाहिये ।)

राजा भोजने ही इस कृति का सर्जन किया है एतदर्थ प्रमाण हेतु निम्न वाक्य पर्याप्त है – इति श्री महाराजाधिराज भोजदेव विरचिता चारुचर्या समाप्ता

(९) विविध विद्या विचारचतुरा [७४] :

इसके लेखक आचार्य भोजदेव हैं । इसमें विविध कामनाओं के प्राप्त्यर्थ एवं शान्ति के लिये होम आदि कर्मो का विधान सूचित किया है । इस पुस्तक में आरम्भ इस प्रकार से होता है :

"सर्वकामावाप्तये शान्तिकपौष्टिकान्युच्यन्ते । तत्र नवग्रहमखस्त्रिविध: । अयुतहोमो लक्षहोम कोटिहोमश्च

सब कामनाओं की प्राप्ति के लिए शांति और पुष्टि करनेवाले कर्म कहे जाते हैं । उनमें नवग्रहों का होम तीन प्रकार का होता है । दसहजार आहुतियों का, एक लाख आहुतियों और एक करोड आहुतियों का ।

इस कृति की समाप्ति में श्लोक इसप्रकार से प्राप्त होता है –

७४. Edit by M.M.Harprasad Shashtri cat. Nepal Darbar Lib. p. 65

वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्तशिशिरे स्थितम् ।
अश्वमेध समं प्राहुर्वसन्ते चैव यत् स्थितम् ।
ग्रीष्मे च संस्थितं तोयं राजसूयाद् विशिष्यते ॥

(अर्थात् हेमन्त (मार्गशीर्ष और पौष) में रहा हुआ जल बाजपेय यज्ञ से, शिबिर (माघ और फाल्गुन) में रहा हुआ त्रिरात्र यज्ञ से, वसन्त (चैत्र और वैशाख) में रहा हुआ अश्वमेघ से, और ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ) में रहा हुआ राजसूय से भी अधिक (फल देनेवाला) होता है ।

इस कृति के अन्त में महाराज भोजदेव का नाम उल्लिखित है यथा -

"इति श्रीमद् भोजदेवविरचितायां विविध विद्याविचारचतुराभिधानायां नवग्रहमखतुलापुरुषादि महादानादिकर्मपद्धतौ तडागवापीकूपप्रतिष्ठाविधिः ।

(अर्थात् - यहाँ पर श्रीमद् भोजदेव की बनाई हुई" विविध विद्या-विचार चतुरा नाम की, नवग्रह, तुला पुरुष, आदि बड़े दानों की विधि को बतलाने वाली, पुस्तक में तालाव, बावली, और कूँआ तैयार करने की विधि समाप्त हुई ।

इस प्रकार से इस कृति में नवग्रह की विधि, यज्ञों के फल एवं उसकी विधि तथा तालाव, कूँआ आदि के प्रतिष्ठा की विधि का एवं विविध विद्याओं का वर्णन किया है ।

१०. सिद्धान्तसारपद्धति [७५] : यह कृति गद्य पद्यमय है । इसमें १३८४ श्लोक हैं । इसके आरंभ का अंश इस प्रकार से है -

"यमासाद्य निवर्तन्ते विकल्पाः सुखदुः खयो :.....

जिसको पाकर सुख दुःख के विचार दूर हो जाते हैं......।

इस पुस्तक में अनेक विधियाँ दी गई हैं । जैसे -

सूर्यपूजा-विधि, नित्यकर्मविधि, मुद्रालक्षण-विधि, प्रायश्चित्तविधि, दीक्षाविधि, साधकाभिषेक-विधि, आचार्याभिषेक-विधि, पादप्रतिष्ठाविधि, लिंगप्रतिष्ठाविधि, द्वार प्रतिष्ठा-विधि, हृत्प्रतिष्ठाविधि, ध्वजप्रतिष्ठाविधि, जीर्णोद्धारविधि ।"

इस पुस्तक के अन्त में लिखा है कि -

"इति महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितायां सिध्दान्तसारपद्धतौ जीर्णोद्धारविधिः समाप्त ।"

---

७५ . Cat. Nepal Darbar Lib. Edit by M.M.Harprasad Shashtri p. 130-131

इससे सिद्ध है कि उक्त कृति के रचयिता महाराज भोजदेव ही हैं ।

११ - समरांगण सूत्रधार [७६] : इस कृतिका विषय शिल्पकला है । इसमें ८३ अध्याय हैं एवं ७०००के करीब श्लोकों की संख्या है । इस कृति के आरंभ में जगत् के उत्पत्तिकर्ता, अद्वितीय कारीगर की स्तुति करते हुअे कहा है कि -

देवः स पातु भुवनत्रयसूत्रधार
स्त्वां बालचन्द्रकलिकाङ्कितजूटकोटिः ।
एतत्समग्रमपि कारणमन्तरेण
कात्स्न्र्यादसूत्रितमसूत्र्यत येन विश्वम् ॥

(अर्थात् - तीनों लोकों को बनानेवाला अद्वितीय कारीगर जिसकी जटा चन्द्रमा की कला से शोभित है और जिसने यह सारा जगत् बगैर कारण और नक्शे के बिना ही बना डाला है, वह तुम्हारी रक्षा करे ।)

इस जगत् में वास्तुशास्त्र का काफी महत्त्व है इसे प्रतिपादित करते हुअे भोज कहते हैं -

वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः ।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते ॥ ५ ॥

(अर्थात् वास्तु (गृहनिर्माण अथवा शिल्प) शास्त्र के बिना उनके लक्षणों का निर्णय नहीं हो सकता । इसीलिये लोगों पर कृपा करके यह शास्त्र कहा जाता है) ।

इस ग्रन्थ के ''महदादि सर्गाध्याय'' नामक चौथे अध्याय में सृष्टि का उत्पत्तिविषयक वर्णन, ''भुवनकोशाध्याय'' नामक पंचम अध्याय में भूगोल का वर्णन मिलता है । पृथ्वी की परिधि ३२ करोड ६० लाख योजनकी बतायी है । ''सहदेवाधिकार'' नामक छठ्ठे अध्याय में देवता और मनुष्य, स्त्रियाँ एवं पुरुष एक साथ बिना घरों के ही रहा करते थे ।

शुरु शुरु में इस पृथ्वीपर ब्राह्मणवर्ण, एक वेद तथा काम को उत्तेजित करनेवाली वसन्त ऋतु ही थी । यथा-

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च ।
ऋतुर्बसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः ॥ १२ ॥

वर्णाश्रम नामक सप्तमाध्याय में ब्रह्माने राजा पृथु को उत्पन्न किया । पृथुने चार वर्णों और चार आश्रमों की स्थापना की । यथा -

७६. Pub. Gaikwad ori seri. Baroda. (Two Parts.)

ततः सचतुरो वर्णानाश्रमांश्च व्यभाजयत् ।
तेषु ये देवनिरताः स्वाचाराः संयतेन्द्रियाः ॥
सूरयश्चावदाताश्च ब्राह्मणास्ते ऽ भवंस्तदा ।
यजनाध्ययनदानं याजनाध्यापनार्थिताः ॥
धर्मस्तेषां विमुच्यान्त्यां स्त्री तुल्याः क्षत्रवैश्ययोः ॥

इसके बाद पृथुने चार वर्ण और चार आश्रम बनाये । उस समय जो देवताओं में भक्ति रखनेवाले, अच्छे आचरणवाले, इन्द्रियों का दमन करनेवाले, विद्वान और गुणी थे वे ब्राह्मण हो गये । इनका काम यज्ञ करना, पढना, दान देना, यज्ञ करवाना, पढाना और दान लेना था । शूद्र वर्ण को छोडकर क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में विवाह करने का भी इन्हें अधिकार था । इसी प्रकार से क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लक्षण एवं उनके कार्योका भी निर्देश किया है ।

''यन्त्रविधानाध्याय'' नामक इकतीसवें अध्याय में यन्त्र की परिभाषा इस प्रकार से दी है । यथा -

यदृच्छया वृत्तानि भूतानि स्वेन प्रकर्त्मना ।
नियम्यास्मिन् नयति यत् तद् यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥

(अर्थात् - अपनी इच्छा से अपने रास्ते पर चलते हुअे भूतों (पृथ्वी, जल आदि तत्त्वों) को जिसके द्वारा नियम में बाँधकर अपनी इच्छानुसार चलाया जाय उसे यन्त्र (मशीन) कहते हैं ।

इसके आगे यन्त्रों के चार भेद गिनाये हैं -
स्वयं वाहकमेकं स्यात्सकृत्प्रेर्यं तथा परम् ।
अन्यदन्तरितं बाह्यं वाह्यमन्यत्त्वदूरतः ॥ १० ॥
स्वयं वाह्यमिहोत्कृष्टं हीनं स्यादितरत्रयम् ॥

पहला प्रकार अपने आप चलनेवाला, दूसरा अपने आप चला देने से चलनेवाला, तीसरा दूर से गुप्त शक्ति द्वारा चलाया जानेवाला और चौथा पास खड़े होकर चलाया जानेवाला । इसमें अपने आप चलनेवाला यन्त्र अन्य तीनों यन्त्रों से श्रेष्ठ है ।

इसी प्रकरण में विमान बनाने के दो तरीके लिखे हैं -

लघुदारूमयं महाविहङ्गं
दृढसुश्लिष्ट तनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत
ज्वलनाधारमधोस्य चाग्निपूर्वम् ॥ ९५ ॥

तत्रारूढः पुरुषस्तस्य पक्षः
द्वन्द्वोच्चलप्रोज्झितेनानलेन
सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या
चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ॥ ९६ ॥

इत्थमेवसुरमन्दिरतुल्यं
संचलत्यलघुदारुविमानम् ।
आदधीत विधिना चतुरोन्त
स्तस्य पारदभृतान् दृढकुंभान् ॥ ९७ ॥

अर्थात् - हलकी लकडीका बड़ासा पक्षी बनाकर उसके पेटमें पारे का यन्त्र लगावे और उसके नीचे अग्निका पात्र रखे । परन्तु पक्षीके शरीर के जोड पूरी तरह से बन्द और मजबूत बनाने चाहिये । उस पर बैठा हुआ पुरुष, पक्षीके परों में हिलने से तेज हुई आँच की गरमी द्वारा उडनेवाले पारे की शक्ति के कारण आकाश में दूर तक जा सकता है । इसी तरह लकडी का देव मंदिर की तरह का बनाया हुआ बड़ा विमान भी आकाश में उड सकता है। चतुर पुरुष उस विमान के भीतर पारे से भरे मजबूत घडे नियमानुसार रखकर उसके नीचे लगाये हुऐ लोहे के कुँडे की आग से उनको धीरे धीरे गरम करे । ऐसा करने से वह विमान घोर गर्जना करता हुआ आसमान में उड़ सकता है ।

आगे चलकर यंत्रो को बनानेवाले कारीगर के लिए निम्नबाते आवश्यक बतायी गयी हैं -

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं
शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमोधीः ।
सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मिन्
श्चित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ ८७ ॥

अर्थात् - खानदानी पेशा, उपदेश से आयी हुई चतुरता, यंत्र निर्माण पर लिखी गई किताबो का पढ़ना, कारीगरी के काम का शौक, और अकल जिसमें ये सभी गुण हो वही अनेक तरह के यन्त्र बना सकता है ।

इसी प्रकरण में विविध प्रकार की पुतलियाँ, तलवारे आदि का भी वर्णन मिलता है । गजशाला, अश्वशाला महल, मकान आदि बनाने की विधियाँ भी बतायी गई है ।

इस पुस्तक के प्रथम भागमें तथा दूसरे भाग में २९ अध्याय मिलते है। प्रत्येक अध्यायकी समाप्ति पर इति महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचिते समरांगण सूत्रधार नाम्नि वास्तुशास्त्रे....वाक्य मिलता है किन्तु अन्त भाग में इस प्रकार का वाक्य न मिलने से कुछ न कुछ अंश नष्ट हुआ है ऐसा प्रतीत होता है।

१२ - **युक्तिकल्पतरुः** इस कृति में २०१६ श्लोक हैं । इस ग्रन्थ में अमात्यादि बल, यान, यात्रा, विग्रह, दूतलक्षण, द्वैध, दण्ड, मन्त्रि-नीतियुक्ति, द्वन्द्व युक्ति, नगरी युक्ति, वास्तुयुक्ति, राजगृह युक्ति, गृह युक्ति, आसनयुक्ति छत्रयुक्ति, ध्वजयुक्ति, उपकरण युक्ति, अलंकार युक्ति, हीरक परीक्षा, विद्रुम परीक्षा, प्रवाल परीक्षा, मुक्ता परीक्षा, वैदूर्य परीक्षा, इन्द्रनील परीक्षा, मरकत परीक्षा, कृत्रिमाकृत्रिम परीक्षा, कर्केतन परीक्षा, भीष्ममणि परीक्षा, रुधिराख्य परीक्षा, स्फटिक परीक्षा, खड्ग परीक्षा, गजादि परीक्षा आदि अनेक विषयों की चर्चा इस कृति में उपलब्ध होती है ।

इस कृति का आरंभ भोजने ईशस्तुति से किया है। -

विश्वसर्गविधौ वेधास्तत्पालयति यो विभु :।
तदत्यय विधावीशस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥

जो दुनिया को पैदा करते समय ब्रह्मा का, पालन करते समय विष्णु का, और नाश करते समय शिव का रूप धारण करता है उस परब्रह्म रूप परमेश्वर को नमस्कार है ।

आगे चलकर चमत्कारयुक्त प्रश्न द्वारा एवं विरोधालंकार द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है । यथा -

कं सानन्दमकुर्वाणः कं सानन्दं करोति यः ।
तं देववृन्दैराध्यमनाराध्यमहं भजे ॥

इस श्लोक के पूर्वार्ध्द में जवाब सवाल का चमत्कार रखा गया है । प्रश्न वह किसको दुःखी करके किसको सुखी करता है । कंस को दुखी करके ब्रह्मा को सुखी करता है ।

इसके उत्तरार्ध में विरोधालंकार रखा गया है - वह आराध्य होकर भी अनाराध्य है - वह देवताओ से पूर्णतया आराधना करने लायक है परन्तु मनुष्य पूरी तरहसे आराधना नहीं कर सकता । राजा भोजने अनेक मुनियों के रचे ग्रन्थो के सार को लेकर बड़े यत्न से इस 'युक्ति कल्पतरु' को अपनी और विद्वानों की प्रसन्नता के लिए बनाया है । यथा -

नाना मुनि निबन्धानां सारमाकृष्य यत्नतः ।
तनुते भोजनृपतिर्युक्ति कल्पतरुं मुदे ॥

इस कृति का अन्तिम श्लोक इस प्रकार से है -

यानं यत् लघुभिर्वृक्षैर्वृक्षयानं तदुच्यते ।
जन्तुभिः सलिले यानं जन्तुयानं प्रचक्षते ॥

अर्थात् - हलके वृक्षो सें जो सवारी बनाई जाती है उसे वृक्षयान कहते हैं । जीवों पर बैठकर पानी में चलने को जन्तुयान कहते है ।

१३. **चम्पूरामायणम्** - यह ग्रन्थ रामचन्द्र बुधेन्द्र की टीका सहित छप चुका है ।इस ग्रन्थ के प्रथम पाँच काण्ड राजा भोजने बनाये थे और छठ्ठा काण्ड लक्ष्मणसूरि ने बनाया था । गणपति की स्तुति करते हुअे कवि कहते हैं-

लक्ष्मीं तनोतु नितरामितरानपेक्ष
मङ्घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम् ।
हैरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं
विघ्नाद्रिंभेदशतधारधुरं धरं नः ॥ १ ॥

अर्थात् - वेदरूपी वृक्ष की शिखा (उपनिषद्) के नये पत्ते के समान (वेदान्तवेद्य) कमल की कान्ति का अपहरण करनेवाले, विघ्नरूपी पर्वतों को नष्ट करने में व्रज समान और किसी की अपेक्षा न रखनेवाले गणपति के दोनों चरण हमारी लक्ष्मी की वृद्धि करे ।

सुन्दरकाण्ड तक की रचना महाराज भोज ने की है - "इति श्री विदर्भराजविरचितें चम्पूरामायणे सुन्दरकाण्डः समाप्त"। यहाँ पर विदर्भराज विशेषण सन्देहास्पद प्रतीत होता है ।

लक्ष्मणसूरि कृत युद्ध काण्ड का आरंभ इस प्रकार से होता है -

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम् ।
न व्रीडितो ऽ हमधुना नवरत्नहार-
संगेन किन्तु हृदि धार्यत एव तन्तुः ॥ २ ॥

भोज की उस श्रेष्ठ रचनाको पूर्ण करने में मुझे लज्जा नहीं है । क्योंकि नवीन रत्नों के हार के साथ ही धागा भी हृदय पर धारण कर लिया जाता है । इसी प्रकार का मेरा यह साहस है ।

लंकाकाण्ड की समाप्ति करते हुअे लक्ष्मणसूरि कहता है-

साहित्यादिकलावता शनगर ग्रामावतंसायिता
श्री गंगाधर धीर सिन्धु विधुना गंगाम्बिका सूनुना ।

प्राग्भोजोदितपंचकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डोलक्ष्मणसूरिणा विरचितः षण्ठोपि जीयाच्चिरम् ॥

साहित्य आदि कला को जाननेवाले, 'शनगर' नामक शहर के निवासी गंगाधर तथा गंगाम्बिका के पुत्र लक्ष्मणसूरि ने भोज के बनाये और विद्वानों को आनन्द देनेवाले और पाँच काण्डोंवाले ग्रन्थ में छठा काण्ड बनाया ।

परन्तु - रजचूड़ामणि काव्यदर्पण [७७] में लिखता है -

"यश्चैकाह्नाभोजचम्पोयुद्धकाण्डमपूरयत्"

जिसने एक ही दिन में भोज चम्पू के युद्ध काण्ड को पूरा कर दिया। इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता कि लक्ष्मणसूरि ने युद्ध काण्ड की ही पूर्ति की थी या नया ही युद्धकाण्ड बनाया था । कामेश्वरसूरिकृत "चम्पूरामायण" की टीका में इस पुस्तकका दूसरा नाम "भोजचम्पू था" ।

इस ग्रन्थ पर तीन टीकाएँ उपलब्ध होती है जो निम्नप्रकारेण है -

(१) रामचन्द्र बुधेन्द्र की साहित्य मंजूषा नाम की टीका ।

(२) करुणाकर की लिखी टीका । यह टीका उसने कालीकट नरेश विक्रम के कहने से लिखी थी । [७८]

(३) कामेश्वरसूरिकृत "विद्वत्कौतूहल" नाम की टीका [७९] । यह टीका संभवतः लंकाकाण्ड पर ही लिखी गई थी ।

इसी "चम्पूरामायण"का अपर नाम भोज चम्पू भी था ।

तस्य श्रीसूनुकामेश्वर कवि रचिते योजने भोजचम्प्वाः ।
विद्वत्कौतुहलाख्ये समभवदमलो युद्धकाण्डः समाप्तः ॥

उसके पुत्र कामेश्वर कवि की बनाई भोजचम्पू को ठीक प्रकार से समझनेवाली "विद्वत्कौतूहल" नाम की टीका मे युद्धकाण्ड समाप्त हुआ ।

(४) नारायण की लिखी व्याख्या [८०] ।

---

७७. Cat. skt. Mes of Gov ori Lib. Madras Edt by M.M. Kuppuswami Vol. XXII pp. 8616.

७८. Cat. skt. Mes of Gov ori Lib. Madras Edt by M.M. Kuppuswami Vol. IV-IC p. 5458.

७९. Cat. skt. Mes of Gov ori Lib. Madras Edt by M.M. Kuppuswami Vol. IC p. 2372-74.

८०. Cat. skt. Mes of Gov ori Lib. Madras Edt by M.M. Kuppuswami Vol. II-1 A p. 1539-1540.

(५) मानवदेव कृत टीका [८१] । यह मानवदेव कालीकट का राजा था रामायण के उत्तरकाण्ड की तरह ही इस "चम्पूरामायण" पर भी रामानुज ने "उत्तर रामायण चम्पू" लिखा था [८२] ।

१४ - शृंगारमंजरीकथा - इस कृति का अन्तिम अंश इस प्रकार का है - "इति श्रीमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीभोजदेवविरचितायां शृंगारमंजरीकथायां पद्मराककथानिका द्वादशी समाप्ता । [८३]

यहाँ पर महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव की बनाई शृंगारमंजरी कथा में १२ वीं पद्मराक की कथा समाप्त हुई ।

यह पुस्तक डॉ. बूलर (Buhler) को जैसलमेर भण्डार से मिली थी। [८४]

१५ - कूर्मशतकम् [८५] (दो) एक शिला पर खुदे हुए इस नाम के दो प्राकृत काव्य ई. स. १९०३ में धार से मिले थे । [८६] प्रत्येक काव्य में १०९ आर्या छन्द मिलते हैं ।

दोनों के प्रारंभ में "ओं नमः शिवाय" तथा पहले काव्य की समाप्ति तथा दूसरे काव्य के आरंभ में-

"इति श्री महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव विरचितं अवनि·कूर्मशतम्। मंगलं महाश्रीः । लिखा है ।"

ये दोनों काव्य शिलापर ८३ पंक्तियों में खुदे हैं । इनमें से २६ से ३८ तक की पंक्तियों के आगे कुछ अक्षरों को छोडकर बाकी की सब पंक्तियाँ अब तक सुरक्षित हैं ।

पहले शतक में अनेक स्थानों पर शब्दों और भावों की समानता मिलती है । यथा पहले शतक के २३ और २८, ३२ और ३३, ९८ और १०९ श्लोकोंमें शब्दों की तथा भावों की समानता है । इसीप्रकार १० और ५५, १४ और १०१, ९३ और ९४ में बहुत कम भेद है ।

इन काव्यों के आरंभ में शिव की स्तुति की गई है तथा प्रथम शतक

---

८१. Ibid- vol. III-I C p. 4021

८२. Ibid- vol. IV-I B p. 5130

८३. E.I.I. p. 232

८४. रे उ विश्वेश्वरनाथ - रा भो पृ. २८७.

८५. E.I. VIII pp. 241, 260.

८६. रे उ विश्वेश्वरनाथ - रा. भो. पृ. २८७.

में कूर्मावतार की प्रशंसा है ।

> "कुम्मेण कोणु सरिसो विणा विकज्जेण जेण एक्केण ।"
> जह निअसुहस्स पट्टी तहदिण्णा भुअण भारस्स ॥ ५ ॥

अर्थात् - उस कछुए की बराबरी कौन कर सकता है जिसने अपने सुख को पीठ देकर अकेले ही पृथ्वी के भार को पीठ दी ।

दूसरे काव्य में कवि ने राजा भोज को कूर्मावतार से अधिक मानकर प्रशंसा की है -

> "धरणि तुमं अइ गरुई तुज्झ सयासाओ कच्छओ गरुओ ।
> भोएण सोवि जित्तो गरुआहिम्बि अत्थि गरू अयरो ॥ १८ ॥

हे पृथ्वी । तु बहुत भारी है, और तुझे सहारा देने वाला कच्छप और भी बड़ा है । परन्तु भोजने बडाई में उसको भी जीत लिया है । इसीलिये राजा भोज सबसे बड़ा है ।

इस द्वितीय काव्य में अनेक स्थानों पर भोज को लक्ष्य करके उसकी प्रशंसा की गई है । इससे स्पष्ट है कि किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की है -

> धवलो सो च्चिअ कुच्चइ भर धारण वावडेहिं समयं पि ।
> उच्चल्लइ जो हु भरं सो एक्को भोअ तं चेअ ॥ ५ ॥

यद्यपि इन काव्यों की कविता साधारण है, उसमें विशेष चमत्कार नजर नहीं आता, तथापि संभव है कि इस द्वितीय शतक में भोज ने अपनी प्रशंसा देखकर निज कृति के रूप में इसे स्वीकार लिया हो तथा अपनी बनाई पाठशालामें इसे खुदवाने की आज्ञा दी हो ।

१६. सरस्वतीकण्ठाभरणम् (व्याकरण) : - यह भोजदेव का बनाया हुआ व्याकरण का ग्रन्थ है । हमारे शोध का विषय प्रस्तुत ग्रन्थ होने से इस विषय में पिष्टपेषण करना हम उचित नहीं समझते । अतः स्वतंत्र प्रकरण में इसकी चर्चा करेंगे ।

१७. राजमार्तण्ड नाम योगसारसंग्रह [८७] इनमें अनेक तरह के तैल औषधि आदि का निरूपण किया गया है । ५६० के करीब इसमें श्लोक हैं ।

इसके प्रथम श्लोक में पार्वतीपति महादेव की स्तुति की गई है । यथा-

---

८७. Cat. skt. Books pub. Bengal Govt. Edt by Rajendralal Mitra Vo. II p. 115

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बद्धस्पृहः ।
चन्द्रांशु द्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पदुग्रध्वनिः ॥
लीलोद्रेककरप्रवाह दलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्यादवोग्निशिखापिशंगनयनश्चण्डीशपंचानन ॥

अर्थात् - नीली और चीकनी हिमालय की लताओं के जालमें रहनेवाला, चन्द्रमाकी किरणो के सामने उज्जवल डाढों से शोभित मुखवाला, घोर गर्जन करनेवाला, खेलमें ही पंजे के प्रहार से बड़े बड़े हाथियों की मस्ती को भगानेवाला और आग की लपट की सी लाल आँखों वाला पार्वतीपति पंचमुखों वाला महादेव तुम्हें धनवान करे ।

सैंकडो राजाओं द्वारा आदरणीय आज्ञावाले, शत्रुओं का नाश करने में चतुर, राजा भोजने संसारी जीवों को रागों से पीड़ीत देखकर उनपर दया करके सुंदर छंदो वाला राजमार्तण्ड नामक योग संग्रह लिखा ।

इस कृति के अन्तमें -'' महाराज श्री भोजराज विरचितो राजमार्तण्ड--नामयोगसार संग्रहः''समाप्तः। इससे स्पष्ट है कि भोजने ही इस कृति की रचना की थी

१८. तत्वप्रकाशः - इस कृति का विषय शैव दर्शन तथा पशुपतिपाशनिरूपण है। इसमें ९५ श्लोक उपलब्ध होते हैं। प्रारंभ में शिवस्तवन किया गया है-

चिद् घन एको व्यापी नित्यः सततोदितः प्रभुः शान्तः
जयति जगदेकबीजं सर्वानुग्राहकः शंभुः ॥

(अर्थात् -श्रेष्ठ ज्ञानवाला, अकेला, सब जगह व्याप्त, नित्य, हर समय प्रकाशमान, सब का स्वामी , शान्तरूप, जगत् की उत्पत्ति का कारण और सब पर कृपा करनेवाला ऐसा महादेव सब से श्रेष्ठ है।)

श्री भोजदेव नृपतः स शैवागमार्यं तत्वप्रकाशसमानमिमं व्यधत्तः ''शैव सम्प्रदाय से संबंध रखनेवाले ''तत्त्वप्रकाश '' नामक ग्रन्थ की भोजने रचना की । इस ग्रन्थ पर अघोरं शिवाचार्य की बनाई टीका भी मिलती है। [८८]

१९. सिध्दान्तसंग्रहविववृतिः- यह भोज के बनाए '' सिदधान्तसंग्रह '' की टीका है। इसके कर्ता का नाम सोमेश्वर है। शैवधर्म से संबंधित इससे ९२२ श्लोक हैं।

---

८८. Cat. skt. Mes. Govt. ori Lib. Madras Edt. Kuppuswami vol. IV-I c p. 5807-8.

सोमं सोमेश्वरं नत्वा सोम सोमार्ध्द धारिणम्।
सोमेश्वरेण विवृतो भोजसिद्धान्तसंग्रहः॥

पार्वती सहित सोमेश्वर महादेव को सोम (रस या यज्ञ) और अर्ध शशाङ्क को धारण करनेवाले शिवको नमस्कार करके सोमेश्वर द्वारा भोज के बनाये सिद्धान्त संग्रह की टीका लिखी गई है।

इस ग्रन्थ की समाप्ति में-

"एवं च सर्वदा सर्वत्र सर्वेषां रूपः शिव एव सर्वात्मना उपास्यः । तस्यैव ईश्वर वा....देवादिव्यौपाधिकनिरुपितानि तान्यपि सर्वैस्तथैव उपास्यानि....इति सिद्धम् ।"

(इस प्रकार हंमेशा सब जगह सबको सब तरह से (ब्रह्म) रूप शिव की उपासना करनी चाहिये । उसीको ईश्वरता (प्राप्त होने के कारण) उपाधि भेद से प्राप्त हुओ उसके रूपों (अन्य देवादिक़ों) की भी उसीतरह उपासना करनी चाहिये, यह बात सिद्ध होती है ।

२०. द्रव्यानुयोगतर्कणाटीका : - यह भोज की बनाई श्वेतांबर - जैन सम्प्रदाय के "द्रव्यानुयोगतर्कणा" नामक ग्रन्थ की टीका है ।

२१८१ श्लोकमें इस ग्रन्थ का व्याप बताया जाता है । भगवान् जिनेश्वरको प्रणाम करते हुओ कहा है कि -

"श्रियां निवासं निखिलार्थ वेदकं"
सुरेन्द्र संसेवितमन्तरा.....
प्रमाणयन्त्या....नयप्रदर्शकं
नमामि जैनं जगदीश्वरं महः ॥

सब तरह के कल्याणों के स्थान, सर्वज्ञ, इन्द्र से पूजित और श्रेष्ठ मार्ग को बतलानेवाले जिनेश्वरभगवान् के तेजको नमन करता हूँ ।

तेषां विनयलेशेन भोजेन रचितोक्तिभिः ।
परस्वात्मप्रबोधार्थं द्रव्यानुयोगतर्कणा ॥

अर्थात् - उनकी शिक्षा के प्रभाव से भोजने अपने और दूसरों के ज्ञान के लिये "द्रव्यानुयोगतर्कणा" (की टीका) तैयार की ।

हम यह नहीं कह सकते कौनसा भोज था ? साथ ही अन्तिम श्लोक से भोज के टीकाकार होने के स्थान में ग्रन्थ कार होने का भ्रम उत्पन्न होता

है । परन्तु असली मूलग्रन्थ ओर टीका को देखे बिना इस विषय में हम कुछ नहीं कह सकते ।

२१. भोजदेवसंग्रह : - यह कृति गद्यपद्यमय है । इसमें ६०० उपरांत श्लोक हैं । इस के आरंभ में -

सर्वज्ञमद्वयमनादिमनन्तमीशं
मूर्धाभिवन्द्य वचनैर्विविधैर्मुनीनाम् ।
आब्दप्रबोधमुदयज्ञमुदानिधानं
दामोदरोव्यरचयद् गुणिनः क्षमध्वम् ॥

सबके ज्ञाता सबसे श्रेष्ठ आदि अन्त से रहित ईश्वर को प्रणाम करके दामोदर ने अनेक मुनियों के बचनों के आधार पर ज्योतिषियों को प्रसन्न करनेवाला यह "आब्द प्रबोध" नामक ग्रन्थ बनाया है । हे विद्वान् लोगों । आप क्षमा करे ।

श्रीभोजदेव नृपसंग्रहसवसारं
सारंच संग्रहगणस्य वराहसाम्यात् ।
योगीश्वरादिबुधसाधुमतं गृहीत्वा
ग्रन्थोयथागमकृतो न विकल्पनीयः ॥

राजा श्री भोजदेवकृत संग्रह के सार को और दूसरे संग्रहों के सारों को तथा योगीश्वर आदि विद्वानों के मतों को लेकर वराहमिहिर के मतानुसार शास्त्र की रीति से यह ग्रन्थ बनाया है इस में शंका नहीं करनी चाहिये ।

इस कृति के अन्त में निम्न मत उपलब्ध होता है -

"शके संवत् १२९७ फाल्गुन शुक्ल, द्वितीयायां, रेवती नक्षत्रे शुक्ल दिने शुभ लग्ने लिखितमिदं पुस्तकं श्रीजयार्जुनदेवस्य यथा दृष्टं तथा लिखितम् ॥"

शक सं. १२९७ की फागुन सुदि २, रेवती नक्षत्र के श्रेष्ठ दिन और शुभ लग्न में श्री श्रीजयार्जुनदेव की यह पुस्तक लिखी । जैसी देखी वैसी लिखी हैं ।

बैद्यनाथ-रचित तिथिनिर्णय के प्रारंभ में यह श्लोक दिया है -

विज्ञानेश्वरयोगिना भगवतानन्तेन भट्टे न च ।
श्रीमद् भोजमही भुजातिथिगणेयो निर्णयोअंगीऽकृत ॥
सोऽयं सम्प्रति वैद्यनाथ विदुषा संक्षेपतः कथ्यते ।
ज्योतिर्वेद विदामनिनिन्दत धियामानन्दसंभूतये ॥

इस से जात होता है कि राजा भोजदेव ने "तिथिनिर्णय" पर भी अपना मत लिपिबद्ध किया था ।

(२२) हनुमन्नाटकम् : - ऐसी दन्तकथा है पवनपुत्र हनुमान ने इस नाटक को बनाकर पहाड़ की शिलाओं पर खोद दिया था । परन्तु वाल्मिकी ने जब इसे पढ़ा तो उन्होंने सोचाकि यह अतिविस्तृत लिखा गया है । इससे स्वरचित "वाल्मिकीरामायण" की महत्ता घट जायगी । अतः हनुमान से कहकर शिलाओं को समुद्र में डलवा दिया । अन्तमें भोजने समुद्र से इन शिलाओं को निकलवाकर दामोदर द्वारा इसका जीणोद्धार करवाया । शुरु शुरु में नाटक का असली नाम न उपलब्ध होने के कारण कर्ता के नामपर "हनुमन्नाटक" नाम रख दिया । इस कृति में चमत्कार का अंश अधिक होने के कारण यह "महानाटक" के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

इस नाटक में श्रीरामचन्द्र का चरित्र वर्णन किया गया है । उसकी श्लोक सं. १७७५ के करीब है ।[८९]

नाटक के आरंभ में निम्न लिखित श्लोक मिलता है -

"कल्याणानां निधनं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं जीवनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये राम नाम ॥"

(अर्थात् - कल्याण का खजाना, कलिकाल के पापको नष्ट करनेवाला, पवित्र को भी पवित्र करनेवाला, परम पद पाने के लिये चले और मोक्ष चाहनेवाले के मार्गका सहारा श्रेष्ठ कवियों के वचनों के विश्राम की जगह, जीवन देनेवाली वस्तुओं को भी जीवन देनेवाला, धर्मरूपी वृक्ष का बीडा, ऐसा राम का नाम आप लोगों के कल्याण के लिये हो ।

नाटक की समाप्ति का अंश इस प्रकार से है -

चतुर्दशभिरेवाङ्कैः भुंवनानिचतुर्दश ।
श्रीमहानाटकं धत्ते केवलं वर्त्म निर्मलम् ॥ ७१

यह नाटक १४ अंको से १४ भुवनों के निर्मल मार्ग को धारण करता है ।

---

८९. Cat. skt. Mes. pub Bengal Govt. Edt by Rajendra lal Mitra vo V p. 27-29

"रचितमनिलपुत्रेणार्थं वाल्मिकिनाब्धौ
निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकं यत् ।
सुमति नृपति भोजेनोद्धृतं तत् क्रमेण
ग्रथित भवतु विश्वं मिश्र दामोदरेण ॥"

शुरु शुरु में इस महानाटक को वायुपुत्र ने बनाया था । वाल्मिकि ने इसे अत्युत्तम समझकर समुद्र में डाल दिया । परन्तु बुद्धिमान भोज ने इसे समुद्र से बाहर निकलवाया । वही नाटक फिर से दामोदर मिश्र द्वारा निर्मित होकर जगत् की रक्षा करे ।

२३. भोजराजाङ्क : - वीरराघवविरचित यह सुन्दर एकांकी रूपक है। इसमें भोज के विरुद्ध कल्पित षड्यन्त्र का उल्लेख है । साथ ही इसमें सिन्धुल, शशिप्रभा, भोज और लीलावती के नाम दिये हैं । यह रूपक पेन्नार नदीतट स्थित "तिरुकोयिलूर" गाँव के "देहलीश" के मन्दिर में खेलने के लिये बनाया गया था । इसीप्रकार से वेतालपंचविंशति तथा सिंहासन द्वात्रिंशत्कथा "में भी भोज से संबंध रखनेवाली कल्पित कथाएँ हैं ।"

२४ शब्दसाम्राज्य : - इस व्याकरण में भोजीय व्याकरण के सूत्रों के अनुसार शब्दसिद्धि दी गई है । साथ ही इसमें अन्य व्याकरणाचार्यों के मतों का भी उल्लेख है ।

२५ गिरिराजीय टीका : - यह काटयवेम की लिखी अभिज्ञानशाकुन्तल की टीका है । इसमें लिखा है -

मुनीनां भरतादीनां (भोजादीनां) च भूभृताम् ।
शास्त्राणि सम्यगालोच्य नाटयवेदार्थ वेदिनाम् ॥

इससे स्पष्ट है कि भरत मुनि के समान ही राजा भोज भी नाट्यशास्त्र का आचार्य माना जाता था ।

२६ - **स्मृतिरत्नम्** [१०] : - इस ग्रन्थ का कर्ता लिखता है -

भोजराजेन यत्प्रोक्तं स्मार्त्तमन्यत्र चोदितम् ।
न्यायसिद्धं च संगृह्य वचनानि पुरातनैः ।
अनुष्ठान प्रकारार्थं स्मृतिरत्नं मयोच्यते ॥

इससे ज्ञात होता है कि राजा भोज धर्मशास्त्र का भी आचार्य माना जाता था ।

---

१०. Cat. skt. Mes. Govt. ori Lib. Madras Edt by M.M.Kuppuswami vo I-I A. p. 405

२७. अभिनवरामाभ्युदयम् : इसके लेखक अभिरामकामाक्षी ने भोज की प्रशंसा में इसप्रकार लिखा है –

...........स एव तेजस्सविताहि भोजः

अर्थात् वह भोज तेज में सूर्य के समान है ।

२८. पंचकल्याण चम्पू : – इसका लेखक चिदम्बर कवि भोज के विषय में लिखता है –

भूयात्भूरिविजयो भुवि भोजराजो
भूयानुदारकवितारसवास भूमिः ॥

अर्थात् – उदार (श्रेष्ठ) कविता के रस के रहने का स्थान वह भोजराज पृथ्वीपर बडी (या बहुत) विजय प्राप्त करे ।

२९. कन्दर्पचूड़ामणिः – इसके रचयिता वीरभद्र राजा ने अपने ग्रन्थ में लिखा है –

भोज इवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे ।
समयोच्छिन्न प्राये सोद्योगः कामशास्त्रेऽपि ॥

अर्थात् – वह भोज के समान ही, अनेक विषयों के ग्रन्थ लिखने और समय के प्रभाव से नष्ट प्राय कामशास्त्र की उन्नति (या ज्ञान प्राप्त) करने में लगा हुआ है ।

३०. साहित्यचिन्तामणिः इसमें काव्य के प्रयोजन बतलाते हुओ ग्रन्थकार ने उदाहरण रूप से लिखा है –

भोजादेश्चित्तपप्रभृतीनामिव वांछितार्थसिद्धिर्लाभः

उसमे स्पष्ट है कि भोज ने चित्तप आदि कवियों को बहुत कुछ उपहार दिया था ।

३१. संगीतरत्नाकर : [९१] इसके रचयिता शार्ङ्गदेव ने लिखा है –

उद्भ (रुद्र) टो नग्निभूपालो भोजभूवल्लभस्तथा ।
परमर्दीच सोमेशो जगदेक महीपतिः ॥

इससे स्पष्ट है कि राजा भोज संगीतशास्त्र का भी आचार्य था ।

३२. संगीतसमयसार:

इसका कर्त्ता पार्श्वदेव लिखता है –

९१. Cal. skt. Mes. Govt. ori Lib. Madras Edt by M.M.Kuppuswami vol. XXI A. p. 8748

"शास्त्रं भोजमतंगकश्यपमुखाः व्यातेनिरेते पुरा ।"

इससे सिद्ध होता है कि भोज ने संगीतशास्त्र पर भी कोई ग्रन्थ लिखा था ।

३३. भेषजकल्पसारसंग्रह : – इसके आरंभ में लिखा है –

बाहटे चरके भोजे बृहद् भोजे च हारिते
..........तत्सारं समुद्धृतम् ॥

इससे स्पष्ट है कि भोजदेव ने आयुर्वेद विषय में भी कोई ग्रन्थ लिखा था ।

३४ जाम्बवतीपरिणयम् : इस काव्य के कर्ता एकामरनाथ ने राणा इम्मडि अंकुश की प्रशंसा करते हुअे राजा भोज की प्रशंसा में लिखा है –

श्रुत्वा सत्कविवर्ण्य भोजमहिभृत्सर्वज्ञशिङ्गः क्षमा ।
भृत्पाण्डित्यमवेक्ष्य भूतलपतीनज्ञानिदानीन्तनान् ॥

इससे स्पष्ट हैं कि श्रेष्ठ कवियों ने राजा भोज की विद्वत्ता की बहुत ही प्रशंसा की है ।

३५. नटेशविजय : इस काव्य के कर्ता वेंकट कृष्ण ने अपने आश्रयदाता नरेश गोपाल के लिये लिखा है –

"बोधे कलानां नव भोजराज :"

वह विद्या संबंधी कलाओं के ज्ञान में नवीन भोज ही था ।

३६. रंभामंजरी : इस सट्टक के लेखक नयनचन्द्रसूरि ने जैत्रचन्द्र (जयचन्द्र) की प्रशंसा करते हुअे उसकी दानशीलता की तुलना राजा भोज से की है –

दाणेणं वलिभोयविक्कमकहानिव्वाहगो नायगो ।
सो एसो जयचन्दणामण पहू कस्सासये पीइदो ॥

अर्थात् – अपने दान से बलि, भोज और विक्रम की कथा का निर्वाह करनेवाला यह जैत्रचन्द्र किसके चित्तमें प्रीति उत्पन्न नहीं करता ?

यद्यपि कुछ कृतियाँ भोज लिखित नहीं हैं तथापि भोज के नाम से संबंध रखती है अतः हमने उनका निर्देश किया है ।

प्रकरण-२

वैदिक व्याकरण परंपरा का संक्षिप्त परिचय ।

(प्राक्पाणिनि वैदिक व्याकरण की प्राचीन भारतीय परंपरा)

भारतीय परंपरा में किसी भी वस्तु का मूल ढूंढने की परंपरा एक हकिकत सी बन गई है । चाहे कोई भी विषय या क्षेत्र हो उसका मूल या उसके उद्गम स्थान पर जब तक विचार नहीं होता तब तक उसकी चर्चा अधूरी मानी जाएगी ।

वैदिक व्याकरण की परंपरा के विषय में भी यही बात अक्षरशः लागू पडती है । व्याकरण का पठन पाठन भारतीय परंपरा में महत्त्वपूर्ण माना जाता था । इसके उद्भव और विकास की यात्रा अनादिकाल से चली आ रही है। वर्तमान समय में भले ही आचार्य पाणिनि व्याकरण शास्त्रका महान प्रवक्ता माना जाता हो किन्तु पाणिनि से पूर्व भी वैदिक व्याकरण का अस्तित्व था, इतना ही नहीं उसका गौरवपूर्ण इतिहास भी है ।

व्याकरण का प्रयोजन "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च "भगवान् पतंजलि ने इस कथन द्वारा षडंग वेदाध्ययन की बात कही है ।" "षडंगेषु च मुखं व्याकरणम्" षडंगों में व्याकरण का स्थान मुखतुल्य है । महर्षि पतंजलि व्याकरण का महत्त्व एवं प्रयोजन बताते हुए कहते हैं -

किमर्थं अध्येयं व्याकरणम् ? इसके उत्तर में वे कहते हैं "रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्" रक्षार्थ, विचारणार्थ (तर्क), आगमशास्त्रों के ज्ञानार्थ, लघ्वर्थ एवं असंदेहार्थ व्याकरणाध्ययन की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं ।

संस्कृत वैदिक व्याकरण की परंपरा : (वेदांग) संस्कृत वैदिक व्याकरण का मूल वेदों में ही देखने की एक प्राचीन परंपरा रही है । ऋग्वेद में अनेक देवों की विविध रुपेण स्तुति एवं तद्विषयक उल्लेख प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार से ऋग्वेद में अक्षरवाक् का गौरव एवं महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । यथा

"चत्वारि श्रृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश"[2] ॥

---

१ व्या. महा० - १-१-१
२ ऋग्वेद ४-५०-३.

उस वाणीरुपी देव को चार श्रृंग, तीन पैर, दो मस्तक एवं सात हाथ हैं । तीन स्थानों में बंधा हुआ यह शक्तिशाली वृषभ गर्जना कर रहा है, यह महान देव मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ है।

महर्षि पतंजलि ने इस मन्त्र का व्याकरणपरक अर्थ इस प्रकार से किया है । इस वाणीरुपी देव के चार श्रृंग यानी नाम, आरव्यात, उपसर्ग एवं निपात आदि चार पद हैं । तीन पैर अर्थत्-भूत, भविष्य एवं वर्तमान आदि तीन काल हैं । दो मस्तक-अर्थात् नित्य एवं अनित्य शब्दों कें दो प्रकार हैं, सात हाथ अर्थात् प्रथमादि सप्त विभक्तियाँ, छाती कंठ एवं मस्तक ये तीन स्थान है, महान देव यानी महान शब्द, इस प्रकार से पतंजलिने इस मंत्र में व्याकरण का मूल देखा है ।

इससे हम कह सकते हैं कि वैदिक व्याकरण का मूल वेदों में निहित है ।

जिस प्रकार से आटे को चलनी से साफ किया जाता है इसी प्रकार व्याकरण के (प्रकृति-प्रत्यय) ज्ञान द्वारा सुसंस्कृत वाणी का प्रयोग किया जा सकता है इस हेतु ऋग्वेद का निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है -

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सरवाय: सरव्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥[३]"

इसी प्रकार से एक अन्य मन्त्र में 'तालु' आदि उच्चारण स्थान का उल्लेख मिलता है, यथा :

"सुदेवोऽसि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥[४]"

इसी प्रकार से वाणी के दो भेद बताते हुए ऋग्वेद में कहा है-

"देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरुपा: पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रे नोर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥[५]"

अर्थात् एक दैवी जनों द्वारा व्यवहृत वाणी और दूसरी मनुष्यों एवं अन्यो द्वारा उचरित वाणी । इसी बात को स्पष्ट करते हुऐ शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि-

"तदेतत्तुरीयं वाचोऽनिरुक्तं यन्मनुष्या वदन्ति.... [६]"

३. ऋग्वेद ७-७१-२
४. ऋग्वेद ८ - २९ - १२
५. वहीं ९-१००-११
६. शत०. ब्रा० ४.१.३.१६.

इस तुरीय वाणी को मनुष्य, पशु, पक्षी, क्षुद्रजन्तु आदि बोलते हैं । "निरुक्तपरिशिष्ट" [७] में 'चत्वारि पदानि' की सविस्तृत चर्चा की गई है-

"कतमानि तानि चत्वारि पदानि । ओंकारो महाव्याहृतयश्चेत्यार्षम् ।

नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः......तस्माद् ब्राह्मणा उभयीवाचं वदन्ति । या च देवानां या च मनुष्याणामिति ॥

इसमे कोई सन्देह नहीं कि 'निरुक्तपरिशिष्ट' का आधार ब्राह्मण ग्रंथ ही है । ब्राह्मण ग्रन्थो में वैदिक व्याकरण का मूल प्रच्छन्नरुपेण देखा जा सकता है ।

वैदिक व्याकरण के आचार्यो के मन में वाणी के दो रुप विद्यमान थे (१) व्याकृत (२) अव्याकृत ।

"वाग्वै पराच्यव्याकृताऽवदन् ते देवा इन्द्रमब्रुवन् इमां नो वाचं व्याकुरु इति......तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् तस्मादियं व्याकृता वागुच्यते" । [८]

इस उल्लेखानुसार पहले अव्याकृत वाणी बोली जाती थी । देवोंने इन्द्र से प्रार्थना की कि हमारे लिये वाणी का विभाजन करो । इन्द्रने उनकी बिनती को स्वीकार कर वाणी का अव्याकृत एवं व्याकृत दो रुप में विभाजन किया । इस (तै. स. ६. ६. ४. ७) की व्याख्या में सायण कहता है-"तामखण्डां वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययविभागं सर्वत्राकरोत् ।"

जिस प्रकार से ऋग्वेद की ऋचाओं में व्याकरण विषयक उल्लेख उपलब्ध हैं उसी प्रकार से ऋग्वेद में छन्दविषयक उल्लेख भी प्राप्त होते हैं । सात देवों से सात छंद उत्पन्न हुए इस हेतु निम्न मंत्र द्रष्टव्य है -

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिकया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्त ऋषयो मनुष्याः ॥ [९]

इसमें स्पष्ट है कि अग्नि से गायत्री, सविता से उष्णिक्, सोम से अनुष्टुप्, बृहस्पती से बृहती, मित्रावरुण से विराज, इन्द्र से त्रिष्टुभ, तथा विश्वदेवों से जगती छन्द उत्पन्न हुअे ।

---

७ निरु. परि० १३.७

८ तै. सं. ६.६.४.७.

९ ऋग्वेद - १०-१३०-४,५.

ऋग्वेद में व्याकरण की व्युत्पत्ति के विषय में भी पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होते हैं

जिनके द्वारा प्रकृति-प्रत्ययका बोध हो सके । व्युत्पत्ति के क्षेत्र में यास्क का निरुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त है, जिसके द्वारा व्याकरण विषयक अनेक गुत्थियों को हम सुलझा सकते हैं तथापि यास्क से सदीयों पूर्व वेदों में भी ऐसे मंत्र उपलब्ध होते हैं जिनमें प्रकृति-प्रत्यय का बोध होता हो यथा-

१. युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे (ऋग्० १ । १५२। १)

२. अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं (२ । ३५ । १)

३. यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान् (३ । १४ । ५)

४. आवां वहिष्टा इह ते वहन्तु (४ । १४ । ४)

५. जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नाम् (५ । १ । ५)

६. ये संहासि सहसा सहन्ते (६ । ९७ । ९)

७. इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च (७ । ९७ । १)

८. आ वहेथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना (८ । ३५ । १)

९. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् (१ । १०६ । ३)

१०. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व (१० । ३४ । १३)

इसी प्रकार से मै सं. (४ । २ । १) में भी प्रकृति-प्रत्यय से युक्त व्युत्पत्तियाँ मिलती है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में न्यग्रोध आदि की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दिखाई गई है

यथा-न्यग् रोहति इति न्यग्रोधः (७ । ५ । ४)

जनिमानि वेत्ति इति जातवेदसम् (३ । ३६ । २)

गवां स्फावयिता इति गयस्फानः (१ । १३ । २३)

इसी प्रकार से पुंलिंग एवं स्त्रीलिंग शब्द के लिये ऐतैरय ब्राह्मण में वृषन एवं योषा शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा-वृषावा ऋषभो योषा सुब्रह्मण्या"[१०]

शतपथ ब्राह्मण में तीनो लिंगों का उल्लेख प्राप्त होता है यथा-

"सा वैषा वाक् त्रेधा विहिता...यदस्मिन्स्त्रेधा विहिता इष्टका उपधीयन्ते पुंनाम्न्यो स्त्रीनाम्न्यो नपुसंकनाम्नस्त्रेधा विहितान्यु एवेमानि पुरुषस्यांगानि पुंनामानि स्त्रीनामानि नपुसंकनामानि"

---

१० ऐ. ब्रा० ६-१३.

इसी प्रकार से गोपथ ब्राह्मण में धातु प्रतिपदिक नाम आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय आदि का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा-

"ओंकारं पृच्छाम: को धातु: किं प्रातिपदिकम्, किं नाम, किमाख्यातम् किं लिंगम्, किं वचनम, का विभक्ति:, क: प्रत्यय:"। [१२]

छान्दोग्य उपनिषद् में भी स्वर, घोष, बल, उष्म, विवृत आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है, यथा -

("सर्वे स्वरा: घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या: । सर्वे उष्माण: अग्रस्ता अनिरस्ता: विवृता वक्तव्या सर्वे स्पर्शा लेशेन अनभिनिहिता वक्तव्या: । [१३]'

इसी उपनिषदमें प्र. आ. उत्, प्रति, उप, नि आदि उपसर्गोका भी उल्लेख प्राप्त होता है । [१४]

तैत्तिरीय उपषिद् के शिक्षानुवाक में वर्ण, स्वर, मात्रा, साम, सन्तान आदि शब्दों का उल्लेख पाया जाता है, यथा-

"शिक्षां व्यारव्यास्याम: वर्ण: स्वर: मात्रा बलम् साम सन्तान: । इत्युक्त: शिक्षाध्याय: । तत्र वर्णकारादि: स्वर उदात्तादि: मात्रा ह्रस्वाद्या: बलं प्रयत्नविशेष: सामवर्णानां मध्यवृत्या उच्चारणं समता, सन्तान: सन्तति: संहिता इत्यर्थ:" ।

शांखायन श्रौतसूत्र एवं कात्यायन श्रौतसूत्र में व्यंजन ओंकार, मकार, तालु, ओष्ठ, प्लुत, सन्ध्यक्षर, प्रगृह्य आदि व्याकरणनिष्ठ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है । [१५]

प्रातिशाख्य - वैदिक व्याकरण का मूल वेद, ब्राह्मणग्रंथ, उपनिषद् एवं शिक्षा आदि ग्रंथो के अतिरिक्त प्रातिशाख्यों में भी देखा जा सकता है । प्रातिशाख्यों में व्याकरणशास्त्र के उद्देश्य भूत प्रकृति-प्रत्ययरुप व्याकृति का निर्देश शब्दस्वरुप में नहीं मिलता अत: इन्हे विवेचक व्याकरण की कोटि में रखने से हिचकिचाते हैं । तथापि प्रातिशाख्यों में व्याकरण के एकादेश संधि आदि का निर्देश होने से लोक में ग्रंथों को वैदिक व्याकरण के रुप में ही प्रसिद्धि प्राप्त हुई है

सम्प्रति निम्न प्रातिशाख्य उपलब्ध होते हैं अथवा ज्ञात है -

---

११ शत०. ब्रा० १०. ५. १. २.

१२ गो ब्रा. १. २५

१३ छा. उ० २. २२. ५

१४ वहीं २. ८. २

१५ देखे - Weber - Indische Studien IV p. 75

(१) ऋक्प्रतिशाख्य (२) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
(३) बाष्कल प्रातिशाख्य (४) चारायणीय प्रातिशाख्य
(५) आश्वलायन प्रातिशाख्य (६) मैत्रायणीय प्रातिशाख्य
(७) शांखायन प्रातिशाख्य (८) वाजसनेय प्रातिशाख्य
(९) अथर्व प्रातिशाख्य (१०) सामप्रातिशाख्य

इसके अतिरिक्त सात या आठ ग्रंथ अन्य भी ऐसे हैं जिन्हे हम प्रातिशाख्यों की कक्षा में रख सकते हैं -

(१) अथर्वचतुरध्यायी (२) ऋक्तन्त्र
(३) लघुऋक्तन्त्र (४) सामतन्त्र
(५) प्रतिज्ञासूत्र (६) भाषिकसूत्र
(७) अक्षरतन्त्र

श्री मीमांसक जीने इन्हें 'प्रातिशाख्य सदृश' कहकर प्रातिशाख्यों की कक्षा में ही युक्तिपुरःसर गिनाया है । वस्तुतः इन्हें प्रातिशाख्यों में गिनने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती ।

अपरनाम - पतंजलि ने महाभाष्य में "सर्ववेदपारिषदंहीदं शास्त्रम्" [१६] के उदेश्य से स्पष्ट है कि प्रातिशाख्यों के लिए 'पारिषद' शब्द का भी प्रयोग होता था ।

प्रातिशाख्य का अर्थ - शाखां शाखां प्रति प्रतिशाखम् । प्रतिशाखेषु भवं प्रातिशाख्यम् ।

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिस ग्रंथमें वेद की एक शाखा के नियमों का वर्णन हो, वह प्रातिशाख्य कहाता है परन्तु इनमें किसी एक शाखा के नियमों का निर्देश नहीं है अपितु एक एक चरण की सभी शाखाओं के नियमों का सामान्यरुप से उल्लेख मिलता है-

"पदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि" [१७] यहाँ यास्क ने भी चरणों का सम्बन्ध प्रातिशख्यों से दर्शाया है क्योंकि प्रातिशाख्यों के लिये पारिषद शब्द का प्रयोग होता है यंह हम उपर देख चुके हैं, पार्षद और पारिषद पर्यायवाची नाम है । [१८] इससे स्पष्ट है कि प्रातिशाख्यों का विकास यास्क से पर्याप्त पूर्व हो चुका था ।

श्री मीमांसकजी अनेक उदाहरण देकर शाखा और चरण में अन्तर प्रस्थापित

---

१६ व्या महा० ६ - ४ - १४

१७ निरुक्त १- १७.

१८ देखे - सं व्या, शा. इति. भा. २. पृ. ३३० टिप्पण २.

करते हैं किन्तु पाश्चात्य विद्वान एवं पाश्चात्य विचारधारा के प्रशंसक शाखा एवं चरणों को एक ही मानते हैं । वस्तुतः मीमांसकजी का मत हमें अधिक समीचीन लगता है ।

प्रातिशाख्य के प्रयोजन के सम्बन्ध में एक श्लोक मिलता है -

''शिक्षाछन्दोव्याकरणैः सामान्येनोक्तलक्षणम् ।
तदेवमिह शाखायामितिशास्त्रप्रयोजनम् ॥''

अर्थात् शिक्षा, छन्द तथा व्याकरण के द्वारा सामान्य नियमों का कथन किया जाता हैं, किन्तु वे नियम संहिता की विशिष्ट शाखा में किसप्रकार के हैं यह प्रातिशाख्य शास्त्र बताता है ।

प्रातिशाख्य की विषयवस्तु - आचार्य पाणिनि से स्वशब्दानुशासन में वर्णोपदेश, संज्ञाप्रकरण, स्वरप्रकरण, ध्वनि परिवर्तन प्रकृति-प्रत्यय का विचार आदि का समावेश किया है इसकी तुलना में ''वर्गद्वयवृति'' में विष्णुमित्र ने प्रातिशाख्य का विषय इसप्रकार से कहा है-

गुरुत्वं लघुता साम्यं ह्रस्वदीर्घप्लुतानि च ।
सोपागमविकाराश्च प्रकृतिर्विक्रमः क्रमः ॥ ५ ॥
स्वरितोदात्तनीचत्वं श्वासो नादस्तथोभयम् ।
एतत्सर्वँ तु विज्ञेयं छन्दोभाषामधीयता ॥ ६ ॥
पदक्रमविभागज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः ।
स्वरमात्राविशेषज्ञो गच्छेदाचार्यसंपदम् ॥ ७ ॥

अर्थात्-(१) गुरुता-लघुता का निर्णय (२) स्वरमात्राओं के स्वरुप और विनिमय का ज्ञान (३) स्वरवर्णादि के लोपागम-विकारादि का ज्ञान (४) प्रकृति (५) विकृति (६) क्रम (७) स्वरज्ञान (८) अल्पप्राण तथा घोष अघोषादि का अन्तः परिवर्तन आदि विषयवस्तु का उल्लेख प्रातिशाख्यों में उपलब्ध है। जो व्यक्ति पद, क्रम, पदविभाग, वर्ण, वर्णक्रम, स्वर, और मात्रा आदि के विषय को पूर्णरुपेण जानता है वही आचार्य कहलवाने के लायक है । पदपाठ और स्वरज्ञान का आधार प्रकृति-प्रत्यय के विभाग के ज्ञान पर ही आधारित है, उसी विषय के आधार पर चलनेवाले प्रातिशाख्यों के विषय में ऐसा कहना कि उसमें प्रकृति प्रत्यय विभाग नहीं है, गलत हैं । प्रातिशाख्यों के लिये छन्दशास्त्र का नाम भी व्याकृत होता पाया जाता है ।[१९]

प्रातिशाख्यों में पदों में संहिता के कारण होनेवाले विकारों के अतिरिक्त

१९. व्या. महा० १-२-३२ प्रदीपोद्योत नागेश.

शिक्षा का भी सूक्ष्म विवेचन मिलता है, ऋक्प्रातिशाख्य में वर्णोच्चारण में होनेवाले दोषो का पर्याप्त सूक्ष्म विवेचन मिलता है ।

प्रातिशाख्यों का ऐन्द्रव्याकरण से सम्बन्ध :-

कुछ पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों का मत है कि प्रातिशाख्यों का सम्बन्ध ऐन्द्र सम्प्रदाय से है क्योंकि ऐन्द्र सम्प्रदाय के कातन्त्र में अक्षर समाम्नाय का पाठ नहीं है और प्रातिशाख्यों में भी अक्षर समाम्नाय का पाठ उपदिष्ट नहीं है । परन्तु श्री मीमांसक जीने अनेक प्रयत्नों के बाद ऐन्द्र तंत्र का आदि सूत्र- "अथ वर्ण समूह" ढूंढ निकाला है अतः स्पष्ट है कि ऐन्द्र व्याकरण में अक्षर समाम्नाय का पाठ अवश्य होगा । ऋक्प्रातिशाख्य के आरंभ के दो वर्गो में अक्षरसमाम्नाय का पाठ अवश्य उपदिष्ट था । किंच प्रातिशाख्य पाणिनीय पद्धति की अपेक्षा ऐन्द्र पद्धति से अधिक निकट अवश्य थे । स, ष, श, ण, आदि का विधान करनेवाले एवं संयोजी अंशो का प्रयोग करनेवाले प्रातिशाख्य ष्टुत्व, चुत्वादि, तपर, उदित आदि का पाठ करनेवाले प्रातिशाख्य १४ पाणिनीय पद्धति के व्याकरणों की अपेक्षा भिन्न सरणी किंवा अनुसरण करनेवाले माने जाने चाहिए। यथा प्रातिशाख्यों में पाणिनि की प्रत्याहार पद्धति भी नहीं अपनाई गयी है । परिणामस्वरुप "इको यणचि" (पा. अ. ६।१।७७) "एचोऽयवायावः" (६।१।७८) जैसे सूत्रों की सिद्धि के लिये प्रातिशाख्यों में अनेक सूत्रों का पठन करना अवश्यंभावी हो गया है । ऐन्द्र शाकटायन आदि के व्याकरण में वर्णोपदेशादि को परवर्ती प्रातिशाख्य पद्धति पर वर्गात्मक तथा सवर्णात्मक रुप में पढा गया होगा ।

वैसे भी हमारे विचार से अधिकांश प्रातिशाख्य पाणिनि से प्राचीन हैं अतः प्रातिशाख्य पाणिनि के शब्दानुशासन के आधार पर न होकर ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर ही रचे गये होंगे ऐसा हमारा विचार हैं । तथापि कतिपय पाश्चात्य विद्वानों के मत प्रदर्शित करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं -

(१) अधिकांश विद्वान ऋक्प्रातिशाख्य को पाणिनि से प्राचीन मानते हैं एवं अन्य प्रातिशाख्यों के विषय में भिन्न भिन्न मत प्रदर्शित करते हैं ।

(२) प्रो. मैक्समूलर सभी प्रातिशाख्योंको पाणिनि से प्राचीन मानते हैं क्योंकि शिक्षा सम्बन्धी सभी उदाहरण पाणिनि ने प्रातिशाख्यों से उदघृत किये हैं। [२०]

(३) मैक्समूलरके विधान का खंडन करते हुए श्री गोल्डस्टुकर कहते

२०. Max Muller - HSI p. 120

हैं कि पाणिनि में जागरुकता प्रतीत होती है जब कि प्रतिशाख्यों में अर्थो की परवाह नहीं की गई है । [२१]

(४) प्रो. ब्रूनो लिबिश ऋक्प्रातिशाख्य को पाणिनि से प्राचीन मानते है । [२२]

(५) प्रो. ल्यूडर्स तैत्तिरीय प्रातिशाख्य को पाणिनि से प्राचीन मानते हैं।

(६) प्रो. गोल्डस्टुकर "वाजसनेयि प्रातिशाख्य" के कर्ता कात्यायन एवं वार्तिककार कात्यायन को एक ही व्यक्ति मानते हैं इसके आधार पर 'वाजसनेयिप्रातिशाख्य' को अर्वाचीन मानते हैं प्रो. लिबिश इसका खण्डन करते हुअे कहते हैं कि वाजसनेयि प्रातिशाख्यों की प्राचीनता एवं विषयवस्तु का संयोजन उन्हें प्राक् पाणिनि सिद्ध करता हैं -

(Great as may be the Progress in style on the part of the Vajasaneyi Pratishakhya, the formulation of the author of the Vajasjenyi Pratishakhya appears still Careless and diffcult if contrasted with Panini's sutras Which are hewn as it were out of stone) [23]

(७) लिबिश के विधान का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने के पश्चात प्रो. थीमे कहते हैं कि वाजसनेयि प्रातिशाख्य पाणिनि से अर्वाचीन है । [२४]

अब हम कुछ महत्त्वपूर्ण प्रातिशाख्यों पर विचार करेंगे ।

(१) ऋक्प्रातिशाख्यः- वर्गद्वयवृत्तिकार विष्णुमित्र इसे शाकल शाखा की उपशाखा शैशिरीय से सम्बन्ध मानते हैं . डो. अभ्यंकर ने इसे पाणिनि से पश्चाद्वर्ती माना हैं अन्यान्य प्रातिशाख्यों से भी इसमें सहायता ली गयी है। यह छन्दोबद्ध रचना है । इसमें तीन अध्याय और छह पटल है । वेदों की उच्चारण शुद्धता एवं पदों की स्वरविधि का सही ज्ञान इसका मुख्य उद्देश्य है। काशिका (४। ३। १०६) में शौनकीया शिक्षा का उल्लेख है । ऋक्प्रातिशाख्य में १३-१४ पटल शिक्षाविषयक ही है । ऋक्प्रातिशाख्य पर आत्रेय, विष्णु मित्र, उव्वट आदि ने वृत्तियां एवं भाष्य लिखे हैं । प्रथम पटल में संहिता, पद, क्रम, वैदिक भाषा के अभ्यासार्थ आवश्यक गुरुत्व-लघुत्व, ह्रस्व-दीर्घ-लोप, आगम, विकार, प्रकृति, विकृति, क्रम, स्वरित, उदात्त, श्वास, नाद, वर्णव्यवस्था, स्वर-

---

२१. Gold Stucker - panini p. 15.

२२. Bruno leisbisch - Zur Einfuehrung II p. 38

२३. Bruno leisbisch - Zur Einfuehrung II p. 38

२४. Panini and the veda p. 93

व्यंजन, घोष-अघोष, अनुस्वार, विसर्जनीय, प्लुति, स्वरभक्ति, रक्त, स्थान, उष्मवर्ण नाम स्वर आदि के उदाहरण एवं रेफ आदि के उदाहरणों की चर्चा की गई हैं । ऋक्प्रातिशाख्य के द्वितीय पटल में संहिता विषयक सामग्री उपलब्ध होती है । निवृत्ति, प्रश्लिष्ट, क्षैप्र, पदवृत्ति, विविध प्रकारकी सन्धियाँ तथा उसके उदाहरण एवं प्रकृतिभाव आदि की चर्चा ४४ पद्यों में की गई हैं। तृतीय पटल में उन्नीस पद्य हैं जिसमें उदात्त-अनुदात्त स्वरित आदि की चर्चा हैं। चतुर्थ पटल में संधि विषयक चर्चा है । स्वर व्यंजन के प्रकार संधि द्वारा होनेवाले परिवर्तनो का निर्देश, नियत, प्रश्लिष्ट, रेफ, उष्मादि संधियों की चर्चा, दन्त्य सकार का मूर्धन्यादेश आदि चालिस पद्यों में चर्चा की गई हैं। पाँचवे पटल के २८ पद्यों में दन्त्य सकार को मूर्धन्यादेश विधान विषयक चर्चा की गयी हैं । पन्द्रह श्लोको में निबद्ध छठ्ठे पटलमें व्यंजनोके द्वित्व की सोदाहरण चर्चा की गई हे । चौबीस पद्यों में निबद्ध सातवे पटल में प्लुत आदि की चर्चा की गई है । अष्टम पटल में ३० श्लोक हैं जिसमें असंयुक्त पदों में होनेवाली संधियों की चर्चा है । नवमें पटल में भी ३० श्लोक हैं । जिसमें पूर्व पद में प्राप्त सामासिक प्लुत आदि की विशेषताओ की चर्चा की गई हैं। दसवें पटलमें चौदह पद्य हैं जिसमें पदों का क्रम एवं द्वित्व आदि की चर्चा है । ग्यारहवे पटल में ३७ श्लोक हैं जिसमें क्रम पाठ आदि के कारणों की एवं प्रयोजनों की चर्चा की गई है । पदपाठ एवं संहिता पाठ के ज्ञाता के लिये क्रमपाठ की आवश्यकता नहीं हैं इस मत का खंडन करके पद, संहिता, क्रम, जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ एवं घन आदि आठ प्रकार के पाठों की आवश्यकता बतायी है । द्वादश पटल में नव श्लोक हैं जिसमें संहिता पाठ के विषयमें जानकारी दी गई है । उच्चारण आदि नियमों की चर्चा तेरहवे पटल में की गई है । इसमें बीस पद्य हैं । चतुर्दश पटल में उच्चारण दोषों की चर्चा तीस श्लोको में की गई है । पन्द्रहवे पटल में सोलह श्लोक हैं । जिसमें वेद पारायण की पद्धति का निरुपण किया गया है । सोलहवे पटल में साठ श्लोक हैं, सत्रहवे पटल में बत्तीस श्लोक हैं । अठ्ठारहवे पटल में चौतीस पद्य हैं जिस में विविध वैदिक छन्दों का निरुपण किया गया है

(२) आश्वलायन प्रातिशाख्य :- डॉ. अभ्यंकर इसे ऋक्प्रातिशाख्य से अभिन्न मानते है । किन्तु आश्वालायन शौनक के शिष्य थे । यदि ऋक्प्रातिशाख्य शौनक की कृति है तब परवर्ती आश्वलायन से इसका सम्बन्ध नहीं जोडा जा सकता। डो. अभ्यंकर ने आश्वलायन प्रातिशाख्य को तीन अध्याय और छह

पटलों में न बाटकर अठारह पटलों में बाटा है । संहिता ब्राह्मण, श्रौत एवं आश्वलायन गृह्यसूत्र अनुक्रमणी आदि के लेखक के रुप में यह आचार्य प्रसिद्ध है ।

(३) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य :- इसका सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता से है । प्रतिशाख्यों में इसकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा होने के कारण इस पर अनेक टीकाएँ एवं भाष्य लिखे गये हैं । जिनमें आत्रेय, वररुचि, माहिषेय, गार्ग्य, गोपालयज्वा, वीरराघव, भैरव, पद्मनाभ आदि मुख्य हैं । यह ग्रंथ चौबीस अध्यायों मे विभक्त है । इसमें प्रास्ताविक परिभाषा, वर्णोच्चारण, उपसर्ग, संज्ञाप्रकरण, शब्दोत्पत्ति, शिक्षाविषय, स्वरव्यंजनादिभेद ह्रस्व-दीर्घ व्यत्यय, प्रग्रह, प्रकृति ष्टुत्व, विसर्ग संधि, स्वर संधि, अनुस्वारादि विधान, अन्य संन्धियाँ, वर्णलोप, द्वित्वविधि, अनुनासिक विधि आदि का समावेश होता है । यद्यपि इसमें प्रकृति-प्रत्यय विभाग नहीं है तथापि अवग्रह. प्रगृह्य प्रकृति भाव आदि के विस्तार से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें प्रकृति-प्रत्यय विभाग है । डो. सूर्यकान्त तथा सिद्धेश्वर वर्मा इसके कुछ अंशो को पाणिनि से पूर्व का मानते हैं जब की अन्य विद्वान इसे पाणिनि के के पश्चात् का ही मानते हैं। इसके बहुत से सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायी से मिलते हैं । यथा-पाणिनि ने ''समाहारः स्वरितः'' (१ । ४०) सूत्र का विधान किया है जब कि तै प्रा० में ''उभयात्स्वरितः'' किसी भी प्रकार से पश्चाद्वर्ती नहीं हो सकता । इसी प्रकार से अपृक्तसंज्ञा के लिये तै प्रा. में ''एकवर्णः पदम्'' (१ । ५४) सूत्र है इसी हेतु पाणिनि ने ''अपृक्त एकाल्प्रत्ययः'' (१ । २ । ४१) सूत्रका विधान किया है । इसी प्रकार से पाणिनि विभाषा संज्ञार्थ'' न वेति विभाष'' (१ ।४। ४४) सूत्र का विधान किया है । इस हेतु तै, प्रा. में. दो सूत्र रचे गये है। इन साम्यों से स्पष्ट है कि पाणिनीय सूत्र पूर्ण और मँजे हुअे हैं अतः वे परवर्ती ही ठहर सकते हैं ।

तै. प्रा. के चौबीसवे अध्याय में अंतिम तीन श्लोको का आधार ऋक्प्रातिशाख्य भी है जो तै. प्रा. को ऋक्प्रातिशाख्य के समीप का सिद्ध करता है । तै. प्रा. में. अनेक आचार्यो का उल्लेख किया गया है यथा पौष्करसादि, गौतम, शांखायन, भारद्वाज वाल्मिकी, कौण्डिन्य, आत्रेय अग्निवेश्य आदि । तै. प्रा. में इन आचार्यो के उल्लेख के कारण एवं पाणिनि के अनुल्लेख के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि तै. प्रातिशाख्यकार पाणिनि के नाम से अपरिचित है अतः स्पष्ट है कि पाणिनि तै. प्रातिशाख्यकार के पश्चात् ही हुअे होंगे ।

(४) वाजसनेय प्रातिशाख्य - शुक्लयजुर्वेद की माध्यान्दिन शाखा के साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रातिशाख्य आठ अध्यायों में विभक्त है, एवं इसका लेखक ऋषि कात्यायन ही हैं ।

मैक्डोनल, कीथ, डो. अभ्यंकर एवं अनेक विद्वान इसे वार्तिककार कात्यायन की ही कृति मानते हैं । "कात्यायन के वार्तिकोमें एवं इसमें समता खोजने का भी सराहनीय प्रयास किया गया है ।[२५]

श्री मीमांसक जी याज्ञवल्क्य कात्यायन को प्रातिशाख्य का रचयिता एवं उसके पुत्र वररुचि कात्यायन को वार्तिककार मानते हैं । उनके विचारसे भ्रम का कारण यह हो सकता है कि कात्यायन नाम गोत्रापत्य में या शिष्य परंपरा में व्यवहृत हुआ हैं[२६]।

वाजसनेय प्रातिशाख्य एवं पाणिनीय अष्टाध्यायी में कुछ सूत्र एक समान पाये जाते हैं यथा-

		वा. प्रा.	पा. अ.
(१)	षष्ठी स्थानेयोगाः	१.१३६	१.१.४९
(२)	तस्मिन्निितिनिर्दिष्टे पूर्वस्य	१.१३४	१.१.६६
(३)	उच्चैरुदात्तः	१.१०८	१.२.२९
(४)	नीचैरनुदात्तः	१.१०९	१.२.३०

वाजसनेय प्रातिशाख्य एवं पाणिनीय अष्टाध्यायी में किंचित् भिन्न सूत्र इस प्रकार से प्राप्त होते हैं ।

वा. प्रातिशाख्य	पा. अ.
(१) उभयात्वरितः (१।११४)	समाहारः स्वरितः (१।२।३१)
(२) नश्चाम्रेडिते (४।९)	कानाम्रेडिते (८।३।१२)
(३) समानस्थानकरणास्य प्रयत्नः सवर्णः (१.१४३)	तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (१।१।९)
(४) स एवादिरन्तश्च (१।१५२)	अन्तादिवच्च (४।१।८४)
(५) अन्यात् वर्णात् पूर्व उपधा (९।३५)	अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा (१।१।६५)
(६) नृन् पकारे विसर्जनीयः (१३।१४०)	नृन् पे (८।३।१०)
(७) एकवर्णं पदमपृक्तम् (९।१५१)	अपृक्त एकाल्प्रत्ययः (१।२।१४)
(८) तस्मादित्युत्तरस्यादेः (११।३५)	तस्मादित्युत्तरस्य (१।१।६७)

---

२५. Gold Stucker - The Panini

२६ युधिष्ठिर भीमांसक - सं. व्या, शा. रुति. भा. १ पृ. २८७.

इन सूत्रों की समानता को देखकर गोल्डस्टुकर आदि विद्वानों ने कात्यायन को पाणिनि का अनुगामी सिद्ध किया है किन्तु पूर्णता संक्षेप एवं सौष्ठव जो पाणिनि में पाया जाता है वह कात्यायन प्रणीत वा. प्रा. में नहीं हैं अतः किसी भी तरह से वा. प्रा. को पाणिनि के पश्चाद् नहीं रखा जा सकता । व्याकरण के सभी अध्येता इस बात से सहमत है कि पाणिनि का व्याकरण संक्षिप्त एवं परिमार्जित है जो वा. प्रा. में संभव नहीं दिखाई देता । दो - एक उदाहरण द्वारा इसे हम और स्पष्ट करना चाहेंगे -

(अ) पाणिनि ने पद के लिये-

" सुप्तिडन्तं पदम्" (१।১।१४) सूत्र की रचना की है जब की वा. प्रा. में इस हेतु चार सूत्र पाये जाते है, यथा-

(१) स्वरितवर्जमेकोदात्तं पदम् (२।१)
(२) अर्थःपदम् (३।२)
(३) अक्षर समुदायः पदम् (८।४६)
(४) अक्षर वा (८।४७)

(ब) पाणिनि ने प्रातिपदिक हेतु " अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम्" (१।२।४५) एवं कृत्तद्धितसमासाश्च (१। २।४६) सूत्र का विधान किया है किन्तु कात्यायन ने वा, प्रा०. (१।२७) में तिङ्कृत्तद्धित चतुष्टयसमासाः शब्दमयम्"यहाँ उन्हें तिङ् के द्वारा प्रतिपादित का कथन इष्ट नहीं हैं । तथापि प्रातिपदिक और कृत्तध्दितसमास में भिन्नता नहीं मानते । इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि वा. प्रातिशाख्य पाणिनि से उत्तवर्ती नहीं हो सकता ।

प्रातिशाख्यकार कात्यायन एवं वार्तिककार कात्यायन दोनों भिन्न व्यक्ति थे इस विषय में निम्न बातें अवधेय हैं -

(१) प्रातिशाख्यकार कात्यायन माहेश्वर सूत्र से अनभिज्ञ प्रतीत होता है, वार्तिककार कात्यायन माहेश्वरसूत्रों से पूर्ण परिचित हैं ।

(२) प्रातिशाख्यकार कात्यायन ने पद-प्रातिपदिक आदि संज्ञाओं के लिये अनेक सूत्र दिये हैं जबकि वार्तिककार कात्यायन इस उलझन से बचे हैं ।

प्रातिशाख्यकार कात्यायन वार्तिककार कात्यायन से भिन्न है एवं पाणिनि से प्राचीन है इस हेतु एक अन्य उदाहरण भी दिया जा सकता है यथा-प्रातिशाख्यकारने रिफित, नामि, रेफि, जैसी संज्ञाओं का खुलकर प्रयोग किया है । जात्यस्वरित की

भी पर्याप्त चर्चा की है इसी प्रकार से ''तपरस्तत्कालस्य''[२७] के नियम का अनुसरण न करते हुअे वे 'अ इति' आदि के रुप में तपर के स्थान पर 'इतिपरक' प्रयोग करते हैं यह परम्परा पाणिनि से प्राचीन है अतः स्पष्ट है कि वार्तिककार कात्यायन एवं प्रातिशाख्यकार कात्यायन भिन्न व्यक्ति थे । एवं प्रातिशाख्यकार कात्यायन किसी भी तरह से पाणिनि से अर्वाचीन नही हो सकते ।

(५) अथर्वप्रातिशाख्यः-

डॉ. सूर्यकान्त द्वारा संम्पादित ''अथर्वप्रातिशाख्य'' एवं डॉ. व्हिट्ने द्वारा सम्पादित ''शौनकीयचतुरध्यायी'' या ''अथर्व चतुरध्यायी'' के नाम से अथर्ववेद से सम्बन्धित दो प्रातिशाख्य प्राप्त होते हैं । अथर्वप्रातिशाख्य का सम्बन्ध अथर्ववेद से है जबकि ''शौनकीय चतुरध्यायी'' का सम्बन्ध पैप्लादशाखा से है । डो. सूर्यकान्त के मत से पैप्पलादशाखा में अथर्ववेद का बीसवां काण्ड प्रक्षिप्त माना जाता है, किन्तु केवल ''चतुरध्यायी'' के आधार पर इसे प्रक्षिप्त मानना उचित नहीं है, क्योकि वे स्वयं भी चतुरध्यायी के (२।६७) सूत्र में अथर्ववेद के बीसवे काण्ड का आभास पाते हैं ।

शौनकीया चतुरध्यायी के नाम से प्रसिद्ध अथर्वप्रातिशाख्य के चार अध्यायों में सूत्रात्मक शैली में वर्णो का वर्गीकरण विसर्जनीय, अभिनिधान, वर्णो में परिवर्तन, उपधा, वर्णसंयोग, संहिताविषयक नियम, घोष, अघोष, रेफ, वकार, विसर्जनीय, अन्त्य स्वरोंमें दीर्धत्व प्राप्ति, व्यंजनों का द्विर्भाव, अपवादक संधि, अन्त्य आद्यस्वरों में संयोग, संहिता पाठ एवं पदपाठ विषयक नियम, क्रमपाठ विषयक नियम, उसके अभ्यास की आवश्यकता आदि की चर्चा की गई हैं। अथर्वप्रातिशाख्यों के टीकाकारों ने पाणिनीय उदाहरणों का आधार लिया है । अद्यतनी (२।६७) ह्यस्तनी (३।२७) संज्ञा का प्रयोग लकार में किया है । आत्मनेभाषा, परस्मैभाषा का प्रयोग (३।८२) आत्मनेपद परस्मैपद के अर्थ में हुआ है ।

अथर्वप्रातिशाख्य एवं चतुरध्यायी पाणिनि की अपेक्षा प्राचीन है । तथापि कतिपय विद्वान इस प्रातिशाख्य को पतंजलि से प्राचीन एवं पाणिनि से अर्वाचीन मानने को बाध्य हो गये हैं । इसका एक कारण यह भी है कि वैदिक एवं लौकिक व्याकरण में इन्द्र, आपिशलि आदि आचार्यो के सूत्र सर्वमान्य रुप से स्वीकृति प्राप्त कर चुके थे । अथर्व प्रातिशाख्य में शौनक का एवं चतुरध्यायी में शाकटायन का स्पष्टोल्लेख है । इन दोनों को पाणिनि से पूर्ववर्ती माना गया है । किन्तु पाणिनि, व्याडि, कात्यायन आदि का इसमें उल्लेख नहीं मिलता इससे स्पष्ट है कि अथर्वप्रातिशाख्य पाणिनि से प्राचीन माना जा सकता है । किन्तु

२७. पा. अ. १-१-७०

शौनकीय चतुरध्यायी का अन्तिमस्वरुप में संमार्जन एवं संस्करण पाणिनि से पश्चात हुआ होगा अतः इसे पाणिनि से परवर्ती मानने में हर्ज नही है ऐसा अधिकांश विद्वानों का मन्तव्य है ।

(६) सामप्रातिशाख्य :- सामवेद से सम्बन्धित तीन प्रातिशाख्य प्राप्त होते है जो निम्न नामसे प्रसिद्ध है ।

(१) सामतन्त्र

(२) पुष्पसूत्र

(३) ऋक्तन्त्र

सामतन्त्र-इस प्रातिशाख्य के कर्ता औदव्रजि है । भट्टोजिदीक्षितने मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (१।१।८) सूत्र पर शब्दकौस्तुभ में लिखा है। ''तथा च ऋक्तन्त्रव्याकरणस्य छान्दोग्यलक्षणस्य प्रणेता औदव्रजिरप्यसूत्रयत् अनन्त्यान्तसंयोगे मध्ये यमः पूर्वस्य गुणः इति'' [२८]

हरदत्तने भी सामतन्त्र का प्रवक्ता औदव्रजि ही लिखा है । [२९]

''सामतन्त्रं प्रवक्ष्यामि सुखार्थं सामवेदिनाम् ।

औदव्रजिकृतं सूक्ष्मं सामगानां सुखावहम् ॥''

पं सत्यव्रत सामश्रमी अक्षरतन्त्र की भूमिका पृ. २में सामतन्त्र का आचार्य गार्ग्य बताते हैं-

''सामतन्त्रं तु गार्ग्येणेति वयमुपदिष्टा प्रामाणिकैः ।''

किन्तु अधिकांश विद्वान औदव्रजि को ही सामतन्त्र का प्रवक्ता स्वीकारते हैं । पुष्पसूत्र का कर्ता वररुचि है । तथा ऋक्तन्त्र का कर्ता शाकटायन है । नागेशभट्ट [३०] लिखता है कि-

''ऋक्तन्त्रव्याकरणे शाकटायनोऽपि-इदमक्षरं छन्दो''

ऋक्तन्त्र के अन्त में पाठ मिलता है-

''इति शाकटायनोक्तमृक्तन्त्रव्याकरणं सम्पूर्णम्''

ऋक्तन्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्यों की पद्धति में होकर भी व्याकरण की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें २८० सूत्र हैं पाणिनि एवं यास्क ने शाकटायन को पर्याप्त सन्मान दिया है । इस पर

---

२८ भट्टोजिदीक्षित - शब्द कौस्तुभ (१-१-८) पृ. १४३

२९ हरदत - सामवेदीय सर्वानुक्रमणी

३० नागेशभट्ट - लघुशब्देन्दुशेखर भा. १ पृ. ७

अजातशत्रु का भाष्य मिलता है । इसमें आठ प्रपाठक हैं । साम का सम्बन्ध गान और उसकी प्रक्रिया से है । यह गान ऋचामें कैसे रुपान्तरित होता है या ऋचा गान में रुपान्तरित कैसे होती है सामतन्त्र में इसकी विशद चर्चा निरुपित है । पुष्पसूत्र का सम्बन्ध भी गान विद्या से ही है ।

ऋक्ततन्त्र का विषय सामगान न होकर अन्य प्रातिशाख्यों की भाँति पद और ऋचा के समबन्ध को परस्पर बताना और निश्चित करना ही है इसमें पाँच प्रपाठक ३२ खंडिका और २८० सूत्र है । स्वर संधि-आदि की चर्चा इसका प्रमुख विषय रही है । ऋक्तन्त्र से पूर्व सामतन्त्र की रचना हो चुकी होगी अतः नाम की पुनरुक्ति से बचने के लिये और विषय की स्पष्टता के हेतु शाकटायन ने इसका नाम ऋक्तन्त्र चुना होगा ।

डॉ. सूर्यकान्त और अन्य कुछ विद्वानों इसे पाणिनि का उतरवर्ती स्वीकारते हैं परन्तु जैसा कि हमने बताया है कि यास्क और पाणिनि ने इसका सादर स्मरण किया है अतः अवश्य ही शाकटायन पाणिनि से पूर्ववर्ती है तथापि किसी परवर्ती आचार्यने इस ऋक्तन्त्र का प्रतिसंस्कार किया हो उससे प्रेरित होकर डो. सूर्यकान्त इसे पाणिनि से उत्तरवर्ती मानने को बाध्य हुए हो ।

(७) **लघुऋक्तन्त्रः**- ऋक्तन्त्र का एक लघुसंस्करण लघुऋक्तन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है । निश्चय ही इसे पाणिनि का उत्तरकालिक स्वीकार किया जाना उचित है । क्योंकि ऋक्तन्त्र में बृहस्पति से लेकर औदव्रजि तक के आचार्यो का उल्लेख सादर स्मरण किया गया है यदि पाणिनि शाकटायन से पूर्ववर्ती होते तो पाणिनि का भी नामोल्लेख अवश्य होता परन्तु ऋक्तन्त्र में ऐसा हुआ नहीं है प्रत्युत लघु ऋक्तन्त्र में पाणिनि का नामस्मरण किया गया है । अतः स्पष्ट है कि ऋक्तन्त्र का प्रतिसंस्कार ही लघुऋक्तन्त्र है जिसका पुनरुद्धार पाणिनि के पश्चात् हुआ होगा एवं नाम सादृश्य के कारण शाकटायन के नाम पर चढा दिया होगा ।

इस प्रकार से प्रातिशाख्योंने एवं शिक्षासंबंधी ग्रन्थोंने वैदिक व्याकरण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है । वैदिक व्याकरण के विषय में ऐसे अनगिनत उद्धरण दिये जा सकते है जिनके द्वारा यह सिद्ध होता है कि पाणिनि से पूर्व भी वैदिक व्याकरण का अस्तित्व था । वास्तव मे भारतीय व्याकरणशास्त्र का इतिहास वैदिकभाषा के अध्ययन से ही आरंभ होता है । जब वैदिक मन्त्रों की भाषा दुरुह तथा कठिन प्रतीत होने लगी तब इनके व्याख्यान का प्रयास आरंभ हुआ । शाकल्य आदि पदकारों ने वैदिक पदों के विश्लेषण द्वारा इनके

व्याख्यान को सरल बनाने का स्तुत्य प्रयास किया । पदपाठ के आधार पर शौनक कात्यायन आदि प्रातिशाख्यकारोंने वैदिक पदों के शुद्ध उच्चारण, संधि तथा स्वर आदि के सम्बन्ध में नियम बनायें ।

वैदिक पदों के अर्थबोध के निमित्त निघण्टु नामक वैदिक कोश का संकलन किया गया । नैरुक्तोंने अपने अपने ढंग से निघण्टु में संकलित वैदिक पदों का निर्वचन किया । यास्कीय निरुक्त में ऐसे अनेक वचन प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर यह साबित किया जा सकता है कि यास्क से पूर्व भी अनेक नैरुक्त एवं वैयाकरण हो चुके थे जो वैदिक व्याकरण के मार्गदर्शक एवं उपदेशक रहे हों । व्याकरण शास्त्र अपनी प्रगति की चरम सीमा पर था । वास्तव में यास्क का निरुक्त तो इसमें पूरक ही होगा ।

यास्क के समयतक वैदिक भाषा के व्याकरण के साथ साथ लौकिक संस्कृत व्याकरण पर भी तुलनात्मक विचार करने की प्रवृत्ति का उद्भव हो चुका था। इसी लिये निरुक्त मे [३१] "नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम् उभयमन्वध्यायम्" अर्थात् लौकिक संस्कृत के लिये 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता था एवं वैदिक प्रयोग हेतु "अन्वध्यायम्" शब्द का प्रयोग किया जाता था ।

यद्यपि मूलतः व्याकरण "वेदाङ्ग" का ही अंश है और बैदिक (वेद सम्बन्धी) शब्दों की व्याकृति ही इसका मूल प्रयोजन रहा होगा, तथापि ज्यों ज्यों इस शास्त्र का विकास होता गया तत्कालिन लौकिक संस्कृत का विवेचन भी इसका अभिन्न अंग बनता गया । यही कारण है कि पाणिनीय व्याकरण में वैदिक शब्दों का व्याकरण तथा लौकिक शब्दोंके व्याकरण का समन्वित रुप प्राप्त होता है । अधिकतर सूत्र वैदिक एवं लौकिक प्रयोगों के लिये समानरुपेण लागू होते है । वास्तवमें लौकिक एवं वैदिक संस्कृत में आधारभूत मौलिक समानता ही है । केवल विकासक्रम से उत्पन्न होनेवाली विशेषताओं का ही अन्तर है ।

भट्टोजि दीक्षित, वामन, जयादित्य आदि वैयाकरण और उवट, महीधर एवं सायण आदि वैदिक भाष्यकारोंने अपनी अपनी टीका व भाष्यों में लौकिक के साथ साथ वैदिक भाषा की समस्याओं का भी समाधान किया है ।

उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट है कि वैदिक व्याकरण का इतिहास अत्यंत प्राचीन है । प्राक्पाणिनि युगमें ध्वनि सम्बन्धी विषय पर परिपूर्ण रुप

---

३१. निरुक्त (१/४)

से एवं सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया गया । वेदों की रक्षा करना इस युग का परम ध्येय था । इसी प्रकार से स्वरसम्बन्धी विषयों पर भी पर्याप्तमात्रा में विचार हुआ । इस सम्बन्ध में प्रातिशाख्यों की भूमिका सविशेष रही है । सामवेदी के लिये उदात्तादि तीन स्वरों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसका कार्य संगीतमय प्रस्तुतीकरण है । उधर ऋग्वेद का सम्बन्ध अर्थचेतना से है । यजुर्वेद में कर्म या विधि की प्रधानता रही है । उच्चारण का महत्व प्रतिवेद मे अपने अपने ढंग का है । इस बात को प्रातिशाख्यों ने समझ ली थी । इसीलिये वा. प्रा. ने सप्तस्वर से चलते चलते एकस्वर पर समाप्ति की । सामतन्त्र में सप्तस्वर है जबकि अन्य प्रातिशाख्यों में उदात्तादि तीनस्वरों पर भी बल दिया गया है । वैदिक ग्रंथ एवं तत्सम्बन्धी मतों का अनुशीलन किये बिना वैदिक भाषा को जानने का कोई भी व्यक्ति दावा नहीं कर सकता ।

प्रकरण-३

पाणिनि और अन्य आचार्यों का व्याकरणशास्त्रमें प्रदान

व्याकरणशास्त्र : "मुखं व्याकरण स्मृतम्" वेदरुपीशरीर के षडंगों में व्याकरण मुख है । अनादि काल से अनेक आचार्योंने पाणिनि से पूर्व भी व्याकरणशास्त्र की रचना की थी । यहाँ हम पाणिनीय व्याकरण में अनुल्लिखित तथापि पाणिनि से पूर्व हुए आचार्यों का नामोल्लेख करेंगे जिन्होंने व्याकरणशास्त्रमें अपना प्रदान किया था । पाणिनि से पूर्व हुए आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं-

(१) शिव महेश्वर (२) बृहस्पति (३) इन्द्र (४) वायु
(५) भरद्वाज (६) भागुरि (७) पौष्करसादि (८) चारायण
(९) काशकृत्स्न (१०) शन्तनु (११) वैयाघ्रपद्य (१२)माध्यन्दिनि
(१३) रौढि (१४) शौनकि (१५) गौतम (१६) व्याडि।

आचार्य पाणिनिने दश व्याकरण प्रवक्ता आचार्यों का 'अष्टाध्यायी में उल्लेख किया है । वे १० आचार्यों के नाम इस प्रकार है ।

(१) आपिशालि (२) काश्यप (३) गार्ग्य (४) गालव (५) चाक्रवर्मण (६) भारद्वाज (७) शाकल्य (९) सेनक (१०) स्फोटायन ।

व्याकरणाशास्त्र के आठ आचार्यों का उल्लेख निम्न श्लोक में प्राप्त होता है-

ब्राह्ममैशानमैन्द्रं च प्राजापत्यं बृहस्पतिम् ।
त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयथाष्टकम् ॥[1]

अन्यत्र निम्नश्लोक प्राप्त होता है-

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम् [2]॥

इस प्रकार से आठ-नौ एवं दश आचार्यो का उल्लेख प्राप्त होता है । पाणिनि ने जिन आचार्यो का नामोल्लेख किया है वे सभी व्याकरणशास्त्र के महान आचार्य थे । परन्तु उनमें से एक भी आचार्य का व्याकरण सांगोपांग उपलब्ध नही होता सिवा पाणिनि के ।

---

१ हैमबृहद्वृत्त्यवचूर्णि पृ. ३
२ श्रीतत्वनिधि

१. पाणिनीय व्याकरण की विशेषता :- पाणिनि व्याकरण ही एक ऐसा व्याकरण है जो प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृत व्याकरण में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विद्वानोंने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । अद्यावधि किसी भी भाषा में ऐसा परिष्कृत एवं वैज्ञानिक व्याकरण आज तक नहीं बना यही इसकी महान विशेषता है । पालि-प्राकृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के शतशः व्याकरण पाणिनि का अनुसरण करके ही बनाये गये हैं. जो पाणिनि की गुणगाथा का परिचायक है ।

अष्टाध्यायी के माध्यम से पाणिनि ने जो व्याकरण प्रदान किया है उसका मूल्य सिर्फ संस्कृत साहित्य में ही नहीं है, वरन विश्व साहित्य में उसका अपना स्थान है । उन्होंने जो निष्कर्ष हमारे सामने रखे हैं हजारो सालों के बाद भी उसको कोई चुनौती दे सके ऐसा कोई व्याकरण हमारे सम्मुख नहीं आया है। पाणिनि एक जीते जागते कोम्प्युटर (COMPUTER) थे । "अर्धमात्रालाघवलेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः" आधीमात्रा बचाने की धुन महान सूत्रकार के रुपमें पाणिनि को हमारे समक्ष उपस्थित करती है ।

महान नेता-

पाणिनि व्याकरणशास्त्र के महान नेता के रुपमें हमारे सामने आते हैं । विद्वानों ने जितना अनुगमन किया है, जितना विवेचन एवं जितनी छानबीन अष्टाध्यायी पर हुई है, उतनी छानबीन संस्कृत साहित्य में ही नहीं प्रत्युत विश्वसाहित्य में भी नहीं हुई है ।

अनेक नाम : पाणिनि के छह नाम पर्यायरुपेण प्राप्त होते हैं [३] वे इस प्रकार हैं-

(१) पाणिनि (२) पाणिन (२) दाक्षीपुत्र (४) शालङ्कि (५) शालातुरीय (६) आहिक।

इसी प्रकार श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के याजुष-पाठ में 'पाणिनेय' नाम [४] तथा "यशस्तिलक चम्पू" में पणिपुत्र [५] नाम भी मिलता है ।

इन सभी नामों में से दाक्षीपुत्र एवं पाणिनि ये दो ही नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं ।

---

३ पुरुषोत्तमदेव - "त्रिकाण्डशेष"

४. दाक्षिपुत्रः पाणिनेयो येनेदं व्याहृतं भुवि पृ. ३८

५. "पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु" आश्वास २ पृ. २३६.

पाणिनि यह ग्रन्थकार का अत्यन्त प्रसिद्ध नाम है । इसकी व्यत्पत्ति के विषय मे विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं-

(१) 'पणिन्' शब्द से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय लगाकर और उसमें अपत्यार्थमें पुनः 'इञ्' प्रत्यय लगाकर पाणिनि शब्द निष्पन्न होता है ।

(२) 'पणिन्' नकरान्त का पर्याय 'पणिन' अकारान्त स्वतन्त्र शब्द है। उससे "अत इञ्" (४।१।९५) सूत्र से इञ् प्रत्यय लगाकर पाणिनि शब्द बनता है । पाणिनि 'पणिन' (नकारान्त) का अपत्य है ।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक तथा डो. सत्यकाम वर्मा के मत से द्वितीय मत अधिक उपयुक्त है ।[6]

आचार्य पाणिनि की महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि उसके दोनों पाणिनि और पणिन नाम गोत्ररुप से लोक में अधिक प्रसिद्ध हैं । उसके वंशजोंने गोत्र नाम का प्रयोग करने में अधिक गौरव समझा हो ।

प्रदेश : पाणिनि का एक नाम शालातुरीय है । जैन लेखक वर्धमान[७] इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दर्शाता है-

"शलातुरो नाम ग्रामः,सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः तत्र भवान् पाणिनिः" अर्थात् शलातुर ग्राम पाणिनि के पूर्वजों का प्रदेश था । क्योंकि महाभाष्य (४-३-९०) में कहा गया है कि-

"अभिजनो नाम यत्र पूर्वैरुषितम्"

अष्टाध्यायी के "उदक् च विपाशः" (४-२-७४) वाहीकग्रामेभ्यश्च (४-२-११७) सूत्रों से पता चलता है कि पाणिनि का वाहीक देश से अत्यन्त घनिष्ट नाता था । अतः निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि पाणिनि औदीच्य या पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के निवासी थे ।

पाणिनि का कुल अत्यन्त सम्पन्न था । उसने अपने यहाँ अध्ययन करनेवाले छात्रों के लिए चावल का प्रबन्ध कर रखा था । पाणिनि की शालामें अध्ययन करनेवाले छात्र पर्वतीय प्राच्य या उदीच्य प्रदेश के रहे होंगे, जिनका चावल के साथ घनिष्ठ संबंध रहा होगा ।महा० (१-१-७३) का उदाहरण तथा काशिका (६-२-६९) में दी व्याख्या "ओदन पाणिनीयाः"- "ओदन प्रधान पाणिनीयः इस बात का परिचायक है ।

पाणिनि के अनेक शिष्य रहे होंगे । काशिका (६-२-१०४) में

६. सं व्या. शा. इति भा १ पृ. १८०
सं. व्या. उ. और वि. पृ. १३०

७. वर्धमान-ग.र.म.पृ. १

"पूर्वपाणिनीयाः" "अपर पाणिनीयाः" इसी बात की पुष्टि करता है । पाणिनि ने शिष्यों को दो विभागों में विभाजित किया होगा ।[८] यथा- "उभयथा ह्याचार्येण शिष्याः सूत्रं प्रतिपादिताः केचिदाकडारादेका संज्ञा इति, केचित् प्राक्कडारात् परं कार्यमिति" ।

इससे भी विदित होता है कि पाणिनि के अनेक शिष्य थे । पाणिनि के इन शिष्यों में कौत्स पाणिनि के अत्यन्त प्रसिद्ध शिष्य थे ।

इस बात की पुष्टि "उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्, अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्, उपशुश्रुषिवान् कौत्सः पाणिनिम्"[९] उदाहरण इस बात का परिचायक है । इसके सिवा कात्यायन वररुचि भी पाणिनि के शिष्य थे ऐसा मीमांसकजी मानते हैं किन्तु सत्यकाम वर्मा मीमांसक जी के इस मत से सहमत होते नहीं दिखाई देते ।[१०]

पाणिनि के गुरु का नाम 'वर्ष' था इस बात की पुष्टि" "अथकालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत् । तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरोऽभवत्[११] । इस वचन से होती है ।

समय : आचार्य पाणिनि के समय के विषय में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं । कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने तथा पाश्चात्य शैली का अनुसरण करनेवाले भारतीय विद्वानों ने पाणिनि को अतिअर्वाचीन साबित करने का प्रयत्न किया है । उसी तरह भारतीय साहित्य के मर्मज्ञ युधिष्ठिर मीमांसकजी ने पाणिनि को महाभारत काल के पश्चात् का साबित किया है । विभिन्न विद्वानों ने पाणिनि का काल निम्नप्रकार से जताने का प्रयत्न किया है-

(१) श्री गोल्डस्टूकर ने पाणिनि के काल के विषय में विस्तार से विचार किया है । उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि पाणिनि का अस्तित्व बुद्ध से बहुत पूर्व विद्यमान था । वे बुद्ध को ५४३ ई.स. पूर्व मानते हैं । इससे पर्याप्त पूर्व न भी माने तब भी ७०० ई. सन् पूर्व के लगभग तो उनका समय बैठता ही है ।[१२]

(२) अष्टाध्यायी (४-१-४९) में 'यवन' शब्द का उल्लेख मिलता है ।

---

८. व्या. महा० १-४-१.

९. भी. भा. १ पृ. १३७

१०. वर्मा. डो. सत्यकाम - सं. व्या. का. उ. वि. पृ. १२७

११. क.स.सा.ल. १ त. ४ श्लो. २०

१२. The Goldstuker Panini P. २४५-२४७

उसके आधार पर कीथ (Kieth) का विचार है कि पाणिनि सिकन्दर के भारत आक्रमण के बाद हुआ है ।

(३) वेबर भी मानते हैं कि सिकन्दर के साथ जूझनेवाली क्षुद्रक मालवों की सेना का उल्लेख पाणिनि ने 'क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम्' खण्डिकागणपठित (४-२-४५) गण सूत्र में किया है । इससे वेबर का मानना है कि पाणिनि सिकन्दर का समकालीन था ।

श्रीमीमांसक तथा वासुदेवशरण अग्रवाल का मत-

कीथ स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि पाणिनि के काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी । अष्टाध्यायी में शतशः प्रयोग ऐसे मिलते है जो लोक में प्रयुक्त होते पाये गये हैं । यथा -"नित्यं पणः परिमाणे" (३-३-६६) सूत्र द्वारा ज्ञात होता है कि शाक बेचनेवाले कूजडों द्वारा बेचने के लिए मूली, पालक, धनिया, आदि की बांधी गुड्डी के लिये प्रयुक्त 'मूलकपणः,' 'शाकपणः' आंदि शब्द जनसाधारण में प्रयुक्त पाये जाते हैं । बुद्ध तथा महावीर स्वामी के समय पालि तथा प्राकृत बोलचाल की भाषा थी अतः निश्चित है कि पाणिनि महावीर तथा बुद्ध से पूर्व हुए थे ।

पाणिनि के काल के विषय में डो. वासुदेवशरण अग्रवाल तथा युधिष्ठिर मीमांसक भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर उन्हें महाभारत काल का उत्तरकालिन बताते हैं । श्रीमीमांसकजी का इस बारे में मानना है कि-

पाणिनि के "योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्" (२-१-५९) इस सूत्र के आधार पर 'अंगाः', 'बंगाः,' पंचालाः आदि देशवाची शब्दों की प्रवृत्ति का निमित्त तत् तत्देशीय क्षत्रिय है । क्षत्रियों के निवास के कारण ही उस उस प्रदेश के ये नाम प्रसिद्ध हुए । पाणिनि भी ऐसा ही मानते है । पाणिनि के इस अभिप्राय को ध्यान में रखते हुअे भारतीय इतिहास में क्षत्रियों का तीन बार सम्पूर्णतया नाश हुआ था ।[१३]

(१) प्रथम बार दाशरथि राम से पूर्व परशुराम द्वारा क्षत्रियों का सम्पूर्णतया उन्मूलन हुआ था ।

(२) द्वितीय बार महाभारत काल में कौरव पांडवों के समय में सभी क्षत्रियों का नाश हुआ था ।

(३) तृतीय बार सर्वक्षत्रान्तकृत् नन्द के द्वारा क्षत्रियों का नाश किया गया था. श्री मीमांसक जी के मत से पाणिनि का काल महाभारत युद्ध के २००-३००

१३. भीमांसक युधिष्ठर सं. व्या. शा. इति. भा. १ पृ. १९९ - २००

साल के बीच का मानना युक्तिसंगत है । क्योंकि महाभारत युद्ध के २००-३०० साल बाद पंचाल आदि क्षत्रिय पुनः अपनी स्थिति को प्राप्त करते हुअे इतिहास में दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल पाणिनि को सर्वक्षत्रान्तकृत नन्द का समकालिन मानते हैं । वे पाणिनि को ई.स. पंचम शतक का मध्यभाग स्वीकारते है ।[१४] किन्तु मीमांसकजी को उक्त मत ग्राह्य नहीं है । क्योंकि पाणिनि को नन्द का समकालिन मानने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि यदि नन्द ने पांचालादि क्षत्रियों का उन्मूलन किया हो तो पाणिनि उस काल में सूत्र रचना नहीं कर सकता क्योंकि "तस्य निवासः" आदि् संबंधज्ञान का अभाव नहीं हो सकता। अग्रवालजी के मत को स्वीकारा जाय तो भी पाणिनि को नन्द से २००-३०० साल पश्चाद्वर्ती ही मानना होगा । ऐसा मानने पर पाश्चात्य विद्वानों की काल गणना से मेल नहीं खाता । अतः मीमांसकजी पाणिनि को महाभारत युद्धकाल के २००-३०० साल पश्चात् का ही मानते हैं ।

चीनी यात्री युवानच्वाङ् (ह्यु-एन-त्सांग) जब भारत भ्रमण करने आया तब उसने पाणिनि के विषय में लिखा था कि -

"ब्रह्मदेव और देवेन्द्र ने आवश्यक्तानुसार कुछ नियम बनाये. परन्तु विद्यार्थीयों को उनका प्रयोग ठीक से नहीं आता था. जब मानव जीवन १०० वर्ष तक की सीमा तक घट गया तब पाणिनि का जन्म हुआ ।"

आयुर्वेदीय 'चरक संहिता' ग्रंथ जो महाभारतकालीन माना जाता है उसमें मनुष्य की उम्र १०० साल की कही है । 'वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले [१५] इस प्रमाण से भी प्रतीत होता है कि पाणिनि महाभारत युद्ध के २००-३०० साल पश्चात् ही हुए थे ।

श्री भण्डारकर, बेल्वालकर आदि विद्वान् पाणिनि को ३५० ई. स. पूर्व ही मानते हैं ।

श्री गोल्डस्टुकर (Goldstucker) के मत को स्वीकार करते हुअे डो. सत्यकाम वर्माने पाणिनि का काल ई.स. पूर्व ७०० का ही स्वीकार किया है । [१६]

---

१४. A Agrawal Dr. Vasdev Sharan - India as known to Panimi PP. ४५६.४७५

१५. चरक - च.सं.श.स्था. ६/ २६.

१६. वर्मा डो. सत्काम - सं व्या.वि. पृ. १२४

हमारे विचार से ''गतानुगतिको लोको न लोक:पारमार्थिक:'' इस कहावत का ही अधिकांश विद्वानोंने अनुसरण किया है ।

जीवन एवं मृत्यु :-

संस्कृत साहित्य की यह बडी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि व्याकरणशास्त्र में नक्षत्र की तरह प्रकाशमान इस महान आचार्य के जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । सिर्फ दन्तकथाएँ एवं जनश्रुतियाँ ही पाणिनि के जीवन के बारे में कुछ प्रकाश डालती है, किन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य नहींवत् है।

'बृहत्कथा' पर आधारित सोमदेवकृत कथासरित्सागर (१०००से ११००) तथा क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथामंजरी' के अनुसार पाणिनि मन्दमति थे । शिवजी की तपस्या के फलस्वरुप वे ज्ञानी बने ।

दक्षिण भारत में प्रचलित दन्तकथा के आधार पर शिवजी के पाणिग्रहण के वक्त पाणिनि एवं अगस्त्यमुनि वामदक्षिण कक्ष बैठे थे । शिव ने प्रसन्न होकर पाणिनि को चौदह प्रत्याहार सूत्र जो शिवसूत्र के नाम से प्रचलित हैं प्रदान किये एवं अगस्त्य मुनि को तमिल व्याकरण दिया ।

एक अन्य दन्तकथा के अनुसार पाणिनि एवं कात्यायन 'वर्ष नामक' गुरु के शिष्य थे । वर्ष की कन्याने कात्यायन को पसंद किया । इस घटना से खिन्न होकर पाणिनि आत्महत्या के लिये उद्यत हुए । इसके सिवा पाणिनि के जीवन के विषय में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती । हाँ उनकी मृत्यु के विषय में इस प्रकार का श्लोक प्राप्त होता है ।[१७]

सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान प्रियान् पाणिने: ।
मीमांसाकृतमुन्मभाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनीम् ।
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिंगलम् ।
अज्ञानावृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणै: ॥

इस दन्तकथा के अनुसार पाणिनि के प्राणो का हरण सिंहने किया एवं मीमांसाकार जैमिनी को हाथीने मारा, एवं आचार्य पिंगल को मगर ने मारा हमारे विचार से यह श्लोक भी किंवदन्तीयुक्त है ।

रचनाएँ

(१) पाणिनीय शिक्षा - संस्कृत व्याकरण शास्त्र में पाणिनि को अमरत्व प्रदान करने वाला महान ग्रन्थ ''अष्टाध्यायी'' या ''पाणिनीयाष्टक'' तो है ही,

१७. विष्णुशर्मा - पंचतन्त्र श्लो. ३६.

जिसके विषय में बाद में विचार किया जायगा । अष्टाध्यायी के सिवा भी अन्य कुछ ग्रन्थ पाणिनि ने लिखे हैं, जिनमें पाणिनीय शिक्षा मुख्य है ।

शब्दोच्चारण के यथार्थ परिज्ञान के लिए एक छोटा सा सूत्रात्मक शिक्षा ग्रन्थ पाणिनि ने रचा था । ''पाणिनीय शिक्षा'' के स्वरुपके विषय में भी विद्वानों में विवाद खडा हुआ है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, डो. रघुवीर आदि विद्वान मानते हैं कि ''सूत्रमयी शिक्षा'' जो चान्द्र एवं ''आपिशलीयशिक्षा'' से मिलती जुलती है वही वास्तविक पाणिनीय शिक्षा है ।[१८] दूसरी ओर डो. मनमोहन घोषने कलकत्ता विश्वविद्यालय से श्लोकात्मिका पाणिनीय शिक्षा का एक संस्करण प्रकाशित किया है । उसकीभूमिका में उन्होंने प्रयत्नपूर्वक यह सिद्ध किया है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिन शिक्षा सूत्रों को पाणिनि के नाम से प्रकाशित किया है वे उनके द्वारा कल्पित है । डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा सूत्रात्मक शिक्षा को ही पाणिनीय बतलाते हैं । उधर डॉ सत्यकाम वर्मा का झुकाव श्लोक बद्ध पाणिनीय शिक्षा की ओर ही है । इस विषय में वे कहते हैं कि अष्टाध्यायी सूत्रात्मक होते हुए भी यदि अतिप्रसिद्ध है तो किसी भी प्राचीन आचार्य ने शिक्षा का उल्लेख क्यों नहीं किया ? उनकी दूसरी दलिल यह भी है कि श्लोकात्मक शिक्षा में उच्चारण एवं ध्वनिविज्ञान संबंधी कुछ ऐसे सत्य हैं जो पाणिनि जैसे गंभीर वेदाध्यायी के मुख से निकल सकते है । दूसरी ओर सूत्रात्मक शिक्षा का विरोध करते भी वे नजर नहीं आते ।

उन्हीं के शब्दों में-'कुछ भी हो इतना तो निश्चित है कि शिक्षाओं के दो रुप उस समय तक निश्चित हो चुके थे ।'' सूत्रात्मक और श्लोकात्मक ।[१९]

उधर श्री मीमांसकजी ''श्लोकात्मिक शिक्षा'' पाणिनि की नहीं प्रत्युत्त उनके अनुज पिंगल की है ऐसा मानते है ।[२०] इस विषय में '' श्लोकात्मिक शिक्षा'' का प्रथम श्लोक ही इसका प्रमाण है-

'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा' । इस अन्त साक्ष्य की उपस्थिति में श्लोकबद्ध शिक्षा को पाणिनीय मानना युक्तिसंगत नहीं है । तथापि अधिकांश

१८. वर्मा सत्यकाम - सं.व्या.उ.वि.पृ. १३१.

१९. वर्मा डो. सत्यकाम - सं.व्या.शा.उ.वि.पृ. १३२.

२०. शि.प्र.टीका - ज्येष्ठ भ्रातृभिर्विहिते व्याकरणेऽनुजस्तत्रभवान् पिगंलाचार्यस्तन्मतमनु -भाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते ।

विद्वान इसे पाणिनीय प्रोक्त नहीं किन्तु पाणिनीय संमत मानते हैं । श्लोकात्मिका पाणिनीयशिक्षा के भी दो पाठ है (१) लघु (२) वृद्ध । लघु याजुष पाठ और वृद्ध आर्चपाठ कहाता है और आर्चपाठ में ३५ श्लोक हैं आर्च पाठ में 60 श्लोक हैं । ये श्लोक ११ वर्ग अथवा खण्डों में विभक्त हैं ।

(२) जाम्बवतीविजयः- जाम्बती विजय का दूसरा नाम पातालविजय है ।[२१] श्रीकृष्ण पाताल में जाकर जाम्बवती की विजय एवं उससे परिणय की कथा पर आश्रित यह काव्य भी विद्वानों में चर्चास्पद एवं विवाद का विषय बना हुआ है। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इसे पाणिनि की कृति मानने में आपत्तियाँ पेश की है । दूसरी ओर भारतीय परम्परा के साधक इसे पाणिनि मुनि की ही कृति बताते हैं । राजशेखर (सं. ९५०)ने पाणिनि की प्रशंसा में लिखा है-

"नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवती विजयम् ॥"

पाणिनि के छन्द की क्षेमेन्द्र ने प्रशंसा की है-

"स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः ।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः ॥ [२२]"

इससे सिद्ध है कि उपजाति छन्द में विरचित पाणिनि की कृति जाम्बवती विजय ही हो सकती है ।

महर्षि पतञ्जलि भी पाणिनि को कवि कहते हुए कहते हैं-

"ब्रुविशासिगुणेन च यत् सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना ।" [२३]

इससे स्पष्ट है कि पाणिनि एक अच्छे मँझे हुअे कवि थे और उन्होंने जाम्बवती विजय की रचना अवश्य की थी । समुद्रगुप्तरचित "कृष्णचरित"(श्लो.१०) में पाणिनि एवं कात्यायन को कवि बताया गया है।

पुरुषोत्तमदेव अपनी "भाषावृत्ति" में पा. सू. २-४-७४ की व्याख्या की पुष्टि में जाम्बवती विजय काव्य को पाणिनीय मानकर उद्धृत करता है ।[२४] पं. युधिष्ठिर मीमांसक एवं डो. सत्यकाम वर्मा भी इसे पाणिनिकी ही कृति मानते हैं किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य है कि इतना सुंदर एवं चर्चित काव्य भी

---

२१. जोशी एस. जे. - सं.सा.सं.इति जाम्बवती विजय एवं पातालविजय को पृथक् पृथक् रचनाएँ मानी है । पृ.१७

२२. क्षेमेन्द्र - सुवृत्ततिलक

२३. पतंजलि - महा० १-४-५१.

२४. इति पाणिनेर्जाम्बवतीविजयकाव्यम् ।

हमें अक्षुण्णरुपेण प्राप्य नहीं है ।

जाम्बवतीविजय का परिमाण :- जाम्बवतीविजय इस समय अनुपलब्ध है । अतः उसके विषय में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता । जाम्बवतीविजय का एक श्लोक निम्नरूपेण प्राप्त होता है -

त्वया सहार्जितं यच्च यच्च सख्यं पुरातनम् ।
चिराय चेतसि पुनस्तरुणीकृतमद्य मे ॥ [२५]

इससे स्पष्ट है कि जाम्बवतीविजय में कम से कम १८ सर्ग तो अवश्य थे ही । जाम्बवतीविजय का उद्धरण निम्नग्रन्थों में उपलब्ध होता है । [२६]

(१) अलंकार कौस्तुभ - कविकर्णपूर (२) अलंकारशेखर - जीवनाथ
(३) अलंकारसर्वस्व - रुय्यक (४) कुवलयानन्द - अप्पयदीक्षित
(५) गणरत्नमहोदधि - वर्धमान (६) भाषावृत्ति - पुरुषोत्तमदेव
(७) सरस्वतीकण्ठाभरण - कृष्णदेवलीलाशुकमुनि
(८) हैमकाव्यानुशासनवृत्ति - हेमचन्द्र ।

श्री मीमांसकजी ने २८ ग्रन्थों में जाम्बवती विजय के उद्धरण दर्शाये है । [२७]

अन्य ग्रन्थ-

पूर्वपाणिनीयम् - महर्षि पतञ्जलि ने महाभारत में ''पूर्वपाणिनीयाः'' ''अपरपाणिनीयाः'' की चर्चा की है । काशिका (६-२-१०४) के प्रत्युदाहरणमें

''पूर्वपाणिनीयम् शास्त्रम्'' का उल्लेख मिलता है । श्री मीमांसकजी ने इस कृति के चौबीस सूत्रों का उल्लेख भी किया है । [२८] श्री जीवराम कालिदास वैद्य जो इसके अन्वेषक एवं संपादन कर्ता है वे इसे पाणिनिकृत् मानते हैं।

श्री मीमांसक जी के विचार से इस विषय में दो हस्तलेख प्राप्त हुअे हैं, जिसमें से एक में ''कात्यायन सूत्रम्'' ऐसा लिखा है, अतः यह सूत्र किसी अर्वाचीन कात्यायन के होने की संभावना विशेष है ।

डॉ. सत्यकाम वर्मा भी इस ग्रन्थ की लघुता को देखते हुअे ये सूत्र पाणिनि के है इस विषय में शंकित दिखाई देते हैं ।

२५. शरणदेव - दुर्घटवृत्ति सर्ग - १८.
२६. श्री मीमांसकयुधिष्ठर - सं.व्या.शा.इति. भा.पृ. ४३३.
२७. वहीं.
२८. श्री मीमांसक युधिष्ठर - सं.व्या.शा.इति.भा. १ पृ. २४०-२४६.

द्विरुपकोश - इस कृति का एक हस्तलेख लन्दन की इण्डिया आफिस लाईबेरी में प्राप्त है जिसमें "इति पाणिनि मुनिना कृतं द्विरुपकोशं सम्पूर्णम्" लिखा है । किन्तु यह कृति भी वैयाकरण पाणिनि की है या किसी अन्य की इस विषय में अभी निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता ।

अष्टाध्यायी :- महत्त्व - पाणिनि के एक मात्र महान ग्रंथ "अष्टाध्यायी" का महत्त्व जिस प्रकार से व्याकरणशास्त्र में है, वैसा महत्त्वपूर्ण स्थान किसी भी अन्य ग्रंथ का नहीं है । यह महान ग्रन्थ सिर्फ व्याकरणशास्त्र का परिचय कर्ता नहीं है, प्रत्युत महामुनि ने इसमें भारत, भारतीय साहित्य एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी यथास्थान उल्लेख किया है । डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने तो "पाणिनिकालीनभारतवर्ष" पुस्तक लिखकर इस विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है, एवं अष्टाध्यायी का नाता इतिहास एवं भूगोल से जोड दिया है, जैसे कि अष्टाध्यायी ऐतिहासिक ग्रन्थ हो ।

अनेक नामः- पाणिनीयशास्त्र के चार नाम उपलब्ध होते हैं - (१) अष्टक (२) अष्टाध्यायी (३) शब्दानुशासन (४) वृत्तिसूत्र ।

अष्टक एवं अष्टाध्यायी नाम इसलिये प्रसिद्ध है' कि पाणिनीय ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है, अतः उसके ये नाम अधिक प्रसिद्ध हुए । इनमें अष्टाध्यायी नाम सबसे अधिक लोकविश्रुत है ।

"**शब्दानुशासन**" नाम का उल्लेख महाभाष्य में मिलता है । "अथेति शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते । शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम् ।"[२९]

वृत्तिसूत्र - पाणिनीय सूत्रपाठ के लिये वृतिसूत्र पद का प्रयोग दो स्थानों पर मिलता है । [३०]

चीनी यात्री इत्सिंग ने भी इसका उल्लेख किया है । [३१]

न्यायमंजरी के रचयिता ने एक श्लोक में वृत्तिसूत्र का उल्लेख किया है। श्लोक इस प्रकार है-

वृत्तिसूत्रं तिला माषाः कपत्रीकोद्रवौदनम् ।
अजडाय प्रदातव्यं जडीकरणमुत्तमम्॥ [३२]

---

२९. पतंजलि - महा. प्रथम पंक्ति

३०. वहीं - महा. २-१-१- पृ. ३७१, २-२-२४ पृ. ४२४.

३१. इत्सिंग की भारतयात्रा पृ. २६८.

३२. भट्टजयन्त - न्यायमंजरी पृ. ४१८.

पं. गुरुपद हालदार ने "वृतिसूत्र" पद का अर्थ न समझकर अनेक कल्पनाएँ की है जो चिन्त्य है ।[३३]

पतंजलि ने 'वृत्ति'शब्द का अर्थ शास्त्रप्रवृत्ति किया है । व्याकरण शास्त्र में सुप्, कृत्, तिङ् आदि वृत्तियाँ ही कही जाती है । अतः 'वृत्तिसूत्र' शब्द का अर्थ होगा शास्त्रप्रवृत्तियों के बोधक सूत्र ।

अष्टाध्यायी की सूत्रसंख्या एवं विषय :-

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी का विभाजन आठ अध्यायों में किया है, प्रत्येक अध्याय का विभाजन चार पादों में किया इस प्रकार सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में ३२ पाद हैं, प्रत्येक पाद में कुछ सूत्रों का पठन किया गया है । काशिका में प्राप्त सूत्रों के अनुसार अष्टाध्यायी के प्रत्येक पाद में सूत्रों की संख्या इस प्रकार है-

अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र
१	१	७५	२	१	७२	३	१	१५०
१	२	७३	२	२	३८	३	२	१८८
१	३	९३	२	३	७३	३	३	१७६
१	४	११०	२	४	८५	३	४	११७

अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र
४	१	१७८	५	१	१३६	६	१	२२३
४	२	१४५	५	२	१४०	६	२	१९९
४	३	१६८	५	३	११९	६	३	१३९
४	४	१४४	५	४	१६०	६	४	१७५

अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सुत्र
७	१	१०३	८	१	७४
७	२	११८	८	२	१०८
७	३	१२०	८	३	११९
७	४	९७	८	४	६८

---

३३. पं. हालदार गुरुपद - व्या. द. इति. पृ. ३९४.

"निर्णयसागर प्रेस" द्वारा प्रकाशित अष्टाध्यायी में इतनी ही संख्या बतायी गई हैं । गोल्डस्टुकर के मतानुसार अष्टाध्यायी की संख्या ३९९६ की है । भारतीय परंपरानुसार एक श्लोक में अष्टाध्यायी की संख्या निम्नदर्शायी गई है-

त्राणि सूत्रसहस्त्राणि तथा नवशतानि च ।
षण्णवतिं च सूत्राणां पाणिनिः कृतवान्स्वयम् ॥

इस श्लोक के आधार पर हम कह सकते हैं कि अष्टाध्यायी की सूत्रसंख्या ३९९६ थी ।

कात्यायन पतंजलि एवं काशिकाकार ने जिनपर वार्तिक, भाष्य एवं वृत्तियाँ लिखी थी उनका समुचित अभ्यास करके किलहर्न इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि कात्यायन एवं पतंजलि द्वारा ज्ञात एवं काशिकाकार द्वारा ज्ञात अष्टाध्यायी में जरुर भेद रहा होगा । उन्होंने गवेषणा के बाद ५८ सूत्र इस प्रकार के ढूंढ निकाले हैं जिनमें कुछ अन्तर है । इनमें से १७ सूत्र ऐसे हैं जो अष्टाध्यायी में ८ सूत्र के रूप में थे । उन्नीस सूत्रों में सामान्य शाब्दिक परिवर्तन पाया जाता है । १० सूत्रों में अधिक परिवर्तन दिखाई देता है । कात्यायन एवं पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट सूत्रों से काशिकाकार ने २०सूत्र ज्यादा पढे हैं । इस प्रकार के परिवर्तन के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं यथा-

(१) पतंजलि ने योगाविभाग द्वारा कई सूत्रों को विभाजित रूपेण पढ़ा है ।
(२) कुछ परिवर्तन कात्यायन के सूत्रानुसार हुअे दिखाई देते हैं ।
(३) कात्यायन ने जिन सूत्रों पर वार्तिक पढे है तथा जिनका उल्लेख वे करते हैं ऐसे सूत्र १७१३ के करीब हैं ।

अष्टाध्यायी रचित सूत्रों का प्रकार - कोई भी लेखक चाहे वह किसी भी जमाने का हो अपने समय से प्रभावित हुअे बिना रह नहीं सकता । आचार्य पाणिनि भी इसमें अपवाद नहीं है ।

आचार्य पाणिनि ने सूत्रों द्वारा रूपसिद्धि के प्रयोजन को स्वीकारा है । पाणिनि के समय में अध्यापन पद्धति की सरलता के लिये तथा शास्त्र ज्ञान को स्मृतिरूप बनाये रखने में किसी प्रकार की मुसीबत न हो एतदर्थ शास्त्रों का प्रणयन सूत्ररूप में ही किया जाता था । ऐसी सूत्रपद्धति पाणिनि से पूर्व भी परिचित थी । ब्राह्मणग्रन्थ, कल्पसूत्र तथा वेदांग सूत्ररूप में ही रचे गये थे । सूत्र की व्याख्या इस प्रकार से प्राप्त होती है -

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं शास्त्रविदो विदुः ॥

इस व्याख्यानुसार देखा जाय तो अष्टाध्यायी सूत्रसमूह का उत्तम उदाहरण है । ऐसा लगता है कि जैसे पाणिनि के सूत्रों को ही देखकर यह व्याख्या बनायी गई हो ।

सूत्रपद्धति - अत्यंत अर्थगौरव से व्याकरण पद्धति द्वारा कहें तो प्रयत्न लाघव से, वर्ण्यविषय का रहस्योद्घाटन करती है । कम शब्दों द्वारा अर्थाधिक्य ही इसका ध्येय है, और इस ध्येय को पाणिनि ने सुचारुरुपेण सिद्ध किया है।

विषयवस्तु का व्यवस्थित निदर्शन हो इस हेतु पाणिनि ने सूत्रों को छः भागों में बाट दिया है -

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते ॥

(१) संज्ञा (२) परिभाषा (३) विधि (४) नियम (५) अतिदेश (६) अधिकार ।

संज्ञा - अनेक वर्ण या शब्दों का पुनः पुनः प्रयोग न करना पड़े इस कारण से उन्होंने "संज्ञा" पद्धति द्वारा काम साधा है । यथा - वृद्धि, गुण, टि, घु, भ, नदी आदि । इनमें से कुछ संज्ञाओं को पाणिनिने पूर्वाचार्यो द्वारा ली है । कुछ संज्ञाओं का स्वयं उन्होंने निर्माण किया है । संज्ञाओं को उन्होंने कृत्रिम एवं अकृत्रिम इन दो विभागोंमें बाटा है ।

टि, घु, घ, नदी, आदि कृत्रिम संज्ञाएँ है । एकवचन, बहुवचन, सर्वनाम आदि अकृत्रिम संज्ञाएँ हैं । टि, घु, नदी, आदि लघ्वी संज्ञाएँ है , सम्प्रसारण, सर्वनाम स्थान आदि महती संज्ञाएँ है । संज्ञा सूत्र अपूर्वविधि का बोध कराते हैं । पहले जिनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है ऐसी संज्ञाएं नियमों का विधान करती है । पाणिनीय शास्त्र में कृत्रिम एवं अकृत्रिम उभयविध संज्ञाओं का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है । यथा "उभयगतिरिह भवति । कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति कृत्रिमा संज्ञा । कर्मप्रदेशेषु चोभयगतिरिह भवति । कर्मणि द्वितीयेति कृत्रिमस्यैव ग्रहणम् । कर्तरि कर्म व्यतिहारे इत्यत्राकृत्रिमस्य ।" [३४]

पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रथम दो अध्यायों में संज्ञाओं का बाहुल्येन प्रयोग किया है । अतः इन अध्यायों का नाम संज्ञा प्रकरण दिया जा सकता है ।

(२) परिभाषा सूत्र - द्वितीय प्रकार के सूत्रों का नाम परिभाषा सूत्र है । परिभाषा शब्द पाणिनीय अष्टाध्यायी में प्राप्त नहीं होता। आचार्य कात्यायन

३४. पतंजलि - महा० १-१-२२.

ने "अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्यय:"[३५] तथा "स्वरितेनाधिकार" [३६] सूत्र में दोनों सूत्रों का परिभाषारुपेण अंगिकार किया है । आचार्य पतंजलि ने भी परिभाषा की व्याख्या स्पष्ट नहीं की है । तथापि अधिकार एवं परिभाषा के बीच के भेद को इस प्रकार से स्पष्ट किया है -

"अधिकार: प्रतियोगं तस्यानिर्देशार्थ इति योगे योगे उपतिष्ठते । परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत् ।" [३७]

पतंजलि के पश्चाद्वर्ती वैयाकरण परिभाषा का उपयोग दर्शाते हुए कहते है कि-

"विधि सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए एवं रूपसिद्धि के कार्य में सहायहेतु परिभाषा का प्रयोग किया जाता है ।"

पदमंजरीकार हरदत्त परिभाषा की व्याख्या देते हुअे कहते है कि-

"परित: सर्वत्र पूर्वत्र परत्र व्यवहिते चान्तरे च भाष्यते कार्यमनया सा परिभाषा" पाणिनीय अष्टाध्यायी में लगभग ५० ऐसे सूत्र हैं जिनका परिभाषा के अन्तर्गत परिगणन किया जा सकता है ।

(३) विधिसूत्र - किसी निश्चित सिद्धान्त का विधान करनेवाले सूत्रों को विधि सूत्र कहते हैं । यथा-"समर्थ: पदविधि:" (२-१-१) यह विधिसूत्र है । क्योंकि उसमें परस्पर साम्य रखनेवाले पदों का विधान किया गया है। विधिसूत्रों का परिव्याप काफी विशाल है । अधिकार सूत्र अथवा परिभाषा सूत्र विधि सूत्र के अन्तर्गत आ सकते हैं ।

(४) अपवाद सूत्र - सामान्य विधान करनेवाले सूत्रों के अपवादरुप में जिन सूत्रों का प्रयोग होता है वे अपवाद सूत्र कहे जाते हैं । यथा "कर्मण्यण्" (३-२-१) सामान्य विधायक सूत्र है । उसका अपवाद "आतोऽनुपसर्गे क:" (३।२।३) सूत्र है । यहाँ अण् सूत्र का प्रत्याख्यान करके 'क' प्रत्यय का विधान किया गया है ।

(५) नियम सूत्र- जब एक साथ अनेक कार्यों का विधान प्राप्त होता है उस समय किस कार्य को अग्रिमता दी जाए इस हेतु जिस सूत्र द्वारा किसी एक का नियमन किया जाए उसे नियम सूत्र कहते हैं । "अनेक प्राप्तौ एकस्य

---

३५. पा. अ. १-१-६९.

३६. वहीं १-३-३१.

३७. पतंजलि - महा० २-१-१.

नियमो भवति शेषेष्वनियमः।'' [३८]

नियमों के भी अनेक प्रकार सूचित किये गये है, यथा-प्रयोग नियम, अभिधेय नियम, अर्थनियम, प्रत्यय नियम, प्रकृतिनियम, संज्ञानियम वगेरे ।

अष्टाध्यायी की महत्त्पूर्ण कुछ विशेषताएँ - पाणिनि ने अष्टाध्यायी में सूत्रों का विभाग उपर्युक्त कुछ बातों को ध्यान में रखते हुए किया है । ऐसे विभागों में नाम, उनका पारस्परिक सम्बन्ध, उनका, प्रमाणत्व आदि महत्त्वपूर्ण है । पाणिनि से लेकर नागेश भट्ट तक के वैयाकरणों ने इसी पद्धति को अपनाया । पाणिनि ने अष्टाध्यायी में सूत्रों के बलाबल के प्रामाण्य के विषय में कुछ नियम पेश किये हैं । ऐसे नियमकर्ता सूत्र उन्होने स्वयं बनाने थे, या पूर्वाचार्यो के सूत्रों की उन्होंने सहायता ली होगी इस विषयमें यद्यपि तार्किकरुपेण कुछ नहीं कहा जा सकता, तथापि हमारा स्पष्ट अभिप्राय है कि पाणिनि ने पूर्वाचार्यों के सूत्रों से अवश्य मदद ली होगी ।

पाणिनि द्वारा अपनाई गई सूत्रपद्धति में वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि को जहाँ जहाँ उनको अपूर्ति दिखाई दी वहाँ वहाँ वार्तिकों का पठन करके पाणिनीय व्याकरण को उन्होंने सर्वांग संपूर्ण बनाया इसमें कोई शक नहीं ।

प्रत्याहार योजना - पाणिनीय अष्टाध्यायी में प्रत्याहार योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसका पठन पाणिनि ने शिवसूत्रों में ही किया है । इस प्रत्याहार योजना का आयोजन प्रारंभ में किया है तथापि सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में इसकी आवश्यकता अनिवार्य सी जान पडती है । 'इत्' अथवा तो अनुबन्ध (Indicatory letter) के द्वारा ही लेखक ने रूपों को निष्पन्न किया है ।

महाभाष्य की साक्षी पर आचार्य मीमांसकजी कहते है कि-''पाणिनि की अनुबन्ध प्रणाली सर्वथा नूतन है ।'' ये अनुबन्ध लघुता और पूर्णता के प्रयोजन को लेकर चले हैं । शिवसूत्रों के वर्णो में से किसी एक वर्ण को लेकर उसे किसी शिवसूत्र के अंतिम वर्ण या इत् के साथ जोडने से प्रत्याहार बनते हैं। यथा अइउण् 'ऋलृक्' 'एओङ्' वगेरे शिवसूत्रों में से अण्, इण्, उण्, अक्, अङ्, ऐच् आदि प्रत्याहार बनते हैं । इन प्रत्याहारों का प्रयोग जगह जगह अष्टाध्यायी में दिखाई देता है ।

शिवसूत्रों द्वारा बने प्रत्याहारों के अलावा भी संज्ञा एवं क्रियापदों के

---

३८. पतंजलि - महा० २-२-३४.

विविधरुपों में प्राप्त प्रत्ययों को 'इत्' लगाकार भी प्रत्याहार बनाये गये हैं । यथा 'शानच्' प्रत्यय में श एवं च् इत् है । इत् का लोप होने पर आन प्रत्यय शेष रहेगा । इसी प्रकार डच्, डतमच् आदि में भी अनुबन्ध का महत्त्व दिखाई देता है ।

सपाद सप्ताध्यायी एवं त्रिपादी की चर्चा - सपाद सप्ताध्यायी तथा त्रिपादी की आन्तरिक चर्चा विभाजन अष्टाध्यायी का महत्त्वपूर्ण अंग है । सूत्रों का बलाबलत्व या सिद्धत्व अथवा असिद्धत्व पाणिनीय योजना के अंग है । "पूर्वत्रासिद्धम्" (८-२-१) इस सूत्र अनुसार पाणिनीय सपादसप्ताध्यायी के सूत्रों की तुलना में अष्टाध्यायी के तीन पाद (अष्टामाध्याय का द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ) के सूत्रों का प्रामाण्य नहीं माना जायगा । यानी असिद्ध माने जायेंगे । कुछ विशिष्ट अपवादों को नियम में बांधने के लिए ही उन्हें "त्रिपादी" का यह विधान करना पड़ा था । असिद्धवदत्राभात् (६-४-२२) आदि के द्वारा भी वे इसी शैली को अपनाते हैं ।

"विप्रतिषेधे परं कार्यम्" (१-४-१) सूत्रानुसार जहाँ जहाँ समान कार्य प्राप्त होते हैं वहाँ पर कार्य महत्त्व का समझना चाहिए । इसी प्रकार" स्थानेऽन्तरतमः (१-४-५०) सूत्र द्वारा वे कहते है जहाँ स्थान, गुण आदि गुण आदि द्वारा सादृश्य प्राप्त होता है वहाँ स्थान का सादृश्य ही प्रमाणभूत माना जायगा । इसी प्रकार से "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य" (१-१-६६) "तस्मादित्युत्तरस्य" (१-१-६७) सूत्र द्वारा सप्तमी निर्दिष्ट कार्य पूर्व को तथा पंचमी निर्दिष्ट कार्य उत्तर को समझना चाहिये । इस प्रकार से पाणिनि ने अनेक विध विधानों का कुशलतापूर्वक निरूपण किया है । इन नियमों में जहाँ अपूर्ति दिखाई दी वार्तिककार कात्यायनने उसे पूरा किया । यथा "एकदेश विकृत" का नियम (शिवसूत्र वा. ४) "प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्ति" प्रत्येक में वाक्य की परिसमाप्ति (१-१-१ वा. १२), कृत्रिम अकृत्रिम का विचार (१-१-२३ वा. २३) अन्तरंग बलियस्त्व (७-१- वा. ५) व्यपदेशिवद्भाव (१-१-२१ वा. २) उपपद विभक्ति एवं कारकविभक्ति के बलाबल का विचार २-३-१९ वा. १ में कात्यायन ने किया है ।

अष्टाध्यायी अकालक व्याकरण :- पाणिनीय व्याकरण के लिये "अकालकं व्याकरणम्" ऐसा शब्द प्रयोग प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों में पौनः पुन्येन दिखाई देता है । "तेन प्रोक्तम्" (४-३-१०१) सूत्र की काशिकावृत्ति में "पाणिनीयम्" ऐसा उदाहरण मिलता है । अन्यत्र "पाणिनिनोपज्ञातं

पाणिनीयकालकं व्याकरणम्''[३९] इस प्रकार का उदाहरण मिलता है । ''मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके'' (६-२-१४) सूत्र की काशिकावृत्ति में भी पाणिनिनोपज्ञं अकालकं व्याकरणम् ऐसा उदाहरण मिलता है ।

इसी प्रकार से काशिका [४०] वामनीय लिंगानुशान [४१] एवं सरस्वतीकण्ठभरण [४२] की वृत्तियों में भी ''पाणिन्युपज्ञमकालकं व्याकरणम्'' उदाहरण मिलता है।

आचार्य चन्द्रगोमि अपने व्याकरण की स्वोपज्ञवृत्ति में ''पाणिनोपज्ञम--कालकंव्याकरणम्'' [४३] उदाहरण देते दिखाई पडते हैं ।

इन सभी उदाहरणों का भाव यही है कि कालविषयक परिभाषाओं से रहित व्याकरण सर्वप्रथम पाणिनि ने ही बनाया । जिनेन्द्रबुद्धि इस विषय पर अपना मत प्रकट करते हुअे कहते है कि ''अकालकमिति कालपरिभाषा-रहितमित्यर्थः''। [४४] ''पदमंजरी'' में हरदत्त का विचार है कि-पूर्वाणि व्याकरणान्यद्यतनादि कालपरिभाषायुक्तानि तद्रहितं तु व्याकरणं पाणिनि प्रभृति प्रवृत्तम्'' । इस प्रकार से प्रायः सभी आचार्य पाणिनि के व्याकरण को अकालक मानते हैं ।

इस विषय में डॉ. मंगलदेव शास्त्री एवं डो. सत्यकाम वर्मा के विचार भी देखने जैसे है । उनका कहना हैं कि भर्तृहरि अपने वाक्यपदीय के प्रकीर्णकाण्ड के कालसमुद्देश प्रकरण में काल की गुत्थियों को सुलझाते समय पाणिनीय व्याकरण को ही आधार बनाते हैं । ''वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा'' [४५] जैसे सूत्रों के बलपर ही वे काल की तथाकथित सीमाओं को तोडते हैं। डो. वर्मा तथा शास्त्री का विचार है कि पाणिनिने ''वर्तमाने लट्'' (३-२-१२३), परोक्षे लिट् (३-२-११५, लृट् शेषे च (३-३-१३) आदि में लट् लिट्, लृट्, लोट् आदि लकारों का प्रयोग करते समय वे काल की अपेक्षा भाव को ही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं ।

''भावप्रधानमारव्यातम्'' (नि. १-१-३) क्रियावाची लकार भावप्रधान ही

---

३९. पा.अ. उपज्ञाते (४-३-११५) का.वृ.

४०. का. २-४-२१.

४१. पाणिनिना प्रथमं कालाधिकाररहितं व्याकरणं कर्तुंशक्यमितिपरिज्ञातम् पृ. ७.

४२. दण्डनाथ वृत्ति - ३३-३-१२६.

४३. चा.व्या. २-२-६८.

४४. न्यास - ४-३-१५५.

४५. पा.अ. ३-३-१३१.

है । ऐसी उनकी श्रद्धा है । अतएव काल को भाव के अन्तर्गत ही समाविष्ट समझना चाहिये । [४६]

आचार्य भर्तृहरि की कारिका भी इसी बात की पुष्टि करती है -

अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः ।

जन्मादयो विकारा षड् भावभेदस्य योनयः ॥ [४७]

अत एव पाणिनीय व्याकरण अकालक होकर भी अभावक नहीं है । अन्यथा तिङन्तप्रकरण आदि की रचना सर्वथा अनर्थक सी लगेगी ।

प्रो. का. वा. अभ्यंकर भी पाणिनीय व्याकरण को अकालक मानते हुए कहते हैं कि पाणिनि से पूर्व प्राचीन व्याकरण शास्त्र में अद्यतनी, श्वस्तनी, भविष्यन्ती, अनद्यतनी, परोक्ष , भवन्ती, आदि कालबोधक संज्ञाओं का प्रयोग जिस अर्थ में होता था, उस अर्थ में इन पदो का प्रयोग पाणिनीय शास्त्र में नहीं होता । [४८] अतः पाणिनीय व्याकरण अकालक है ।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टिसे पाणिनि का महत्त्व :- पाणिनीय शब्दनुशासन का सूक्ष्म अवलोकन करने से विदित होता है कि पाणिनि सिर्फ शब्दशास्त्र का ज्ञाता ही नहीं था, अपितु समस्त प्राचीन वाङ्मयमें उसकी अस्खलित गति थी । वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त भूगोल, इतिहास, ज्योतिष आदि शास्त्रों का भी वह अद्वितीय विद्वान था । इतिहास-भूगोल एवं अन्यशास्त्रों के ज्ञान के लिये शब्दानुशासन एक आधारस्तम्भ समान है । प्राचीन एवं अर्वाचीन काल को जोडने वाला सेतु समान है । पतंजलि पाणिनि की प्रशंसा में लिखते हैं -

(१) ''प्रमाणभूतःआचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महताप्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म । तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम् किं पुनरियता सूत्रेण'' । [४९]

प्रमाणभूत आचार्य ने हाथ में दर्भ ग्रहण करके शुद्ध एकान्त स्थान में पूर्वाभि मुख बैठकर अनेक प्रयत्नों के पश्चात् सूत्रों का प्रणयन किया है । अतः उसमें एक वर्ण भी अनर्थक नही हो सकता, फिर इतने बड़े सूत्रमें अनर्थकता कैसे संभवित हो सकती है ?

---

४६. वर्मा. डो. सत्यकाम - सं.व्या.उ.वि. पृ. १३९ - ४०

४७. भर्तृहरि - वा.प. १/४.

४८. प्रो. अभ्यंकर का.वा.व्या. महा० प्रस्तावना खंड पृ. १३४.

४९. व्या. महा० १-१-१ पृ. ३९.

(२) महाभाष्यकार एक अन्य स्थान पर पाणिनि की प्रशंसा में लिखते हैं –।[५०]

"सामर्थ्ययोगान्नहि किंचिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्"। अर्थात् सम्बन्ध-रुपी पारस्परिक सामर्थ्य से इस शास्त्र में कुछ भी अनर्थक हो ऐसा दिखाई नहीं देता ।

(३) "उदक् च विपाशः"[५१] सूत्र की वृत्ति में जयादित्य लिखता है-

"महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य"॥ अर्थात् सूत्रकार की दृष्टि पैनी है वह साधारण वस्तु की भी अवहेलना नहीं करता ।

(४) ऋग्वेद का भाष्यकारवेंकटमाधव लिखता है कि-

"शाकल्यः पाणिनिर्यास्कः इत्यृगर्थपरास्त्रयः"[५२] अर्थात् शाकल्य पाणिनि एवं यास्क ऋग्वेद के तीन ज्ञाता हैं । यहाँ पाणिनि का वेदों में स्वरभार विषयक वैदग्ध्य बताया गया है ।

(५) चीनी यात्री ह्यू-एन त्सांग लिखता है–ऋषिने १००० दोहों में सारी कृति रची । प्रत्येक दोहा ३२ अक्षरों का था । इसमें प्राचीन तथा नवीन सम्पूर्ण लिखित ज्ञान समाप्त हो गया । शब्द और अक्षर विषयक कोई भी बात छूटने नहीं पायी ।[५३]

(६) लेनिग्राड के प्रो. टी. शेंरवात्सकी ने पाणिनीय व्याकरण के विषय में कहा है कि "अष्टाध्यायी इन्सानी दिमाग की सबसे बडी रचनाओं मे से एक है"।[५४]

(७) इंग्लैन्ड देश का प्रो. मोनियर विलियम्स कहता है- "संस्कृत व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है ।"

इस प्रकार से भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानोंने पाणिनि की भूरि भूरि प्रशंसा की है ।

अष्टध्यायी में विषयवस्तु का वर्गीकरणः पाणिनीय अष्टाध्यायी बत्तीस पादों मे तथा आठ अध्यायों में विभक्त है । प्रत्येक अध्याय में चार पाद समाविष्ट

---

५०. व्या. महा.- ६/१/७७.

५१. पा.अ. ४/२/७४

५२. मन्त्रार्थानुक्रमणी ऋग्भाष्य ८-१ आरंभ में

५३. ह्यूनसांग वाटर्स का अनु. भा. १ पृ. २२१.

५४. पं. जवाहरलाल नेहरु - हिंक.पृ. १३१.

हैं । अब क्रमशः प्रत्येक पाद में सन्निविष्ट विषयों के बारे हम विचारणा करेगें-

प्रथम अध्याय के प्रथम पाद को संज्ञा परिभाषा पाद कहा जा सकता है। क्योंकि इस पाद में पाणिनिने कुछ संज्ञाओं की व्याख्या दी है । यथा - वृद्धि, गुण, संयोग, अनुनासिक, सवर्ण, प्रगृह्य, इस विषय में आचार्य शाकल्य का मत, घु, घ, संख्या, षट् निष्ठा, सर्वनाम संज्ञा निषेध, नियत अर्थोमें सर्वनामसंज्ञा, अव्यय, सर्वनामस्थान, विभाषा, सम्प्रसारण आदि संज्ञाओं का समावेश (१ से ४५) तक के सूत्रो में किया है . तत्पश्चत् ६० वे सूत्र से पुनः संज्ञाओ की व्याख्याएँ दी गई है, यथा- लोप, श्लु, लुक्, लुप, प्रत्ययलक्षण. टि, उपधा तथा वृद्ध आदि संज्ञाओं का निर्देश किया गया है। इस प्रथम पाद में पाणिनि ने संज्ञा सूत्रों के बीच में परिभाषासूत्रों का भी पठन किया है । यथा-सप्तमी निर्दिष्ट एवं पंचमी निर्दिष्ट परिभाषाएँ (१।१। ६६-६७), स्वरुपहग्रहण परिभाषा सूत्र (१।१। ६८-६९) में तत्कालता (१।१।७०) में, एवं तदन्तविधि परिभाषा का ग्रहण (१।१।७२) में किया गया है ।

द्वितीय पादः द्वितीय पाद में ङित्, कित् जैसे अतिदेशों का पठन, उदात्तादि स्वर, एक श्रुति, प्रातिपदिक के लिंग एवं संख्या, प्रत्यय का लोप होने के पश्चात् प्रातिपादिक का स्वरुप, एकशेष आदि विषयों का समावेश द्वितीय पाद में किया गया है ।

द्वितीय पाद के प्रारंभ में ङित् एवं कित् प्रत्यय एवं कुछ अन्य प्रत्ययों का परिगणन किया गया है । ङिद् भाव एवं किद्भाव के कारण गुण एवं वृद्धि के कार्य नहीं होते । सूत्र (१ से २६) तक के सूत्रों में इसी विषय की चर्चा की गई है । (२७ से ३२ तक के सूत्रों मे उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित की व्याख्याएँ दी गई है । सूत्र (३३ तक ४०) तक के सूत्रों में एक श्रुति के नियमों की चर्चा है । एक श्रुति से सम्बद्ध सूत्र वैदिक संदर्भ रखते हैं। सूत्र (४१-४२) में अपृक्त एवं कर्मधारय संज्ञा का उल्लेख किया गया है । सूत्र (४३-४४) में उपसर्जन के दो भेद दिखाये गये हैं । सूत्र (४५-४६) में प्रातिपदिक की व्याक्या दी गई है ।'' लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'' सूत्र से लेकर ''कालोपसर्जने च तुल्यम्'' सूत्रों तक लुप् संज्ञा प्राप्ति, प्रातिपदिक स्वरुप का वर्णन स्पष्ट रुप से दिया गया है । लुप् से पूर्वावस्था की स्थित्यनुसार लिंग, वचन आदि की व्यवस्था, ''सरुपाणामेकशेष एक विभक्तौ'' सूत्र (१।२।६४)से लेकर, अन्त तक के सूत्रों में एक शेष का विचार प्रस्तुत किया गया है ।

तृतीय पाद का आरंभ धातु शब्द से होता है । "भू" आदि शब्दो की धातु संज्ञा होती है । सूत्र २ से ८ तक का प्रकरण 'इत्' संज्ञा का है । नौवे सूत्र मे इत् का लोप होता है ऐसा निर्णायक मत दिया गया है । "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" सूत्र १० में यथाक्रम स्थानी के स्थान में आदेश का विधान होता है । "स्वरितेनाधिकारः सूत्र से स्वरित के अधिकार की स्थापना की गई है।

"अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" सूत्र १२ से पाद की समाप्ति तक आत्मनेपद, परस्मैपद एवं विकल्प से परस्मैपद का विधान किया है । इस विषय में पाणिनिने अनेक धातुओं का परिगणन करके एक महान अव्यवस्था को सुव्यवस्थित किया है ।

चतुर्थ पाद के प्रारंभ में एक संज्ञा एवं विप्रतिषेध के प्रसंग में पर कार्य ही निष्पन्न होगा ऐसा मत प्रदर्शित किया गया है । तत्पश्चात् नदी, घि, लघु, गुरु, अंग, पद, भ, बहुवचन, एकवचन एवं द्विवचन आदि संज्ञाओं का स्पष्टिकरण किया गया है । सूत्र २३ "कारके" से लेकर "तत्प्रयोजको हेतुश्च" तक में कारक तथा उसकी अवान्तर संज्ञाए यथा अपादान, सम्प्रदान, करण, कर्म, तथा कर्ता के विषय में विवरण दिया गया है । "प्राग्रीश्वरान्निपाताः" (सूत्र १।४।५६) से लेकर "जीविकोपनिषदावौपम्ये" (१।४।७९)तक के सूत्र मे निपात, उपसर्ग एवं गति संज्ञाओं की व्याख्याएं तथा उनका प्रयोग कहाँ कहाँ होता है यह बताया गया है । तत्पश्चात् "ते प्राग्धातोः", "छन्दसि परेऽपि" "व्यवहिताश्च" (१-४ -८० से ८२) तक के सूत्रों में उपसर्ग एवं गति धातु से पूर्व रखने चाहिये, वेदों में उभय जगह पर यानी पहले भी तथा पीछे भी पाए जाते हैं । कर्मप्रवचनीयाः (१-४-८४) सूत्र से लेकर विभाषा कृञि (१।४।९८) तक के सूत्रों में कर्मप्रवचनीय संज्ञा किन किन अर्थो में प्रयुक्त होती है उसकी चर्चा की गई है । 'लः परस्मैपदम्' (१-४-९९) तथा 'तङानावात्मनेपदम्' सूत्रों में परस्मैपद एवं आत्मनेपद का विचार किया गया है । तत्पश्चात् 'तिङस्त्रीणि त्रीणि' सूत्र से लेकर "शेषे प्रथमः" तक के सूत्रों में विभक्ति, मध्यमपुरुष एवं प्रथमपुरुष के विषय में विचार किया गया है । अन्तिम दो सूत्रों में संहिता एवं अवसान संज्ञा की व्याख्या दी गई है ।[५५]

द्वितीय अध्याय :-

द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद का प्रथम सूत्र "समर्थः पदविधिः" है । इसी

---

५५. पा.अ. पर सन्निकर्षः संहिता, विरामोऽवसानम् (१-४-१०९ - ११०)

एक सूत्र पर भगवान् पतंजलि ने विस्तार से चर्चा की है । वैयाकरणी इस सूत्र को "समर्थ" सूत्र कहते हैं। द्वितीय सूत्र में वेद में प्राप्त समासवत् पदवृत्ति की चर्चा की है । "प्राक् कडारात्समासः" यह अधिकार सूत्र है । "कडाराः कर्मधारये" (२-२-३८) तक के सूत्रों में विहित समासयुक्त कार्य अवगन्तव्य है । "सह सुपा" (२-२-४) यह सामान्य विधायक सूत्र है । जिसमें एक पद का अन्य विभक्तयन्त पद के साथ समास का विधान किया गया है । "अव्ययीभावः" (२-१-५ः से "अन्यपदार्थेच संज्ञायाम्" (२-१-२१) तक के सूत्रों में अव्ययीभाव समास का विवेचन किया गया है ।

"तत्पुरुषः" (२-१-२२) सूत्र से लेकर मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) तक के सूत्रों में तत्पुरुष समास के विषय में विशद चर्चा की गई है ।

द्वितीय पाद :- द्वितीय पाद तत्पुरुष समास के प्रकरण को लेकर ही चलता है । इस पाद में द्विगु, कर्मधारय, एकदेशि तत्पुरुष, नञ् तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष एवं उपपद तत्पुरुष का विचार किया गया है प्रथम बाईस सूत्रों में इस विषय में पाणिनि ने चर्चा की है । "शेषो बहुव्रीहिः" (२-२-२३) से लेकर "तेन सहेति तुल्ययोगे" (२-२-२८) तक के सूत्रों में बहुव्रीहि समास का विधान किया गया है । "चार्थे द्वन्द्वः" (२-२-२९) सूत्र द्वारा द्वन्द्व समास की व्याख्या दी गई है । यह द्वन्द्व समास किन किन पदों में किस अवस्था में होता है इस विषय का विधान पाद की समाप्ति तक किया गया है ।

तृतीय पाद - तृतीय पाद में सामासिक शब्दों में लगनेवाली विभक्तियों के विषय में विचार कीया है । तिङ् कृत्, तद्धित एवं समास द्वारा जब कर्म आदि अनभिहित हो, तब द्वितीयादि विभक्तियों का योग प्राप्त होता है, इस पाद के प्रथम सूत्र में इस प्रकार के नियम का विधान करके द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, पञ्चमी, चतुर्थी, षष्ठी वगेरे विभक्तियाँ किन अर्थो में तथा किन किन शब्दों को लगती है । इसकी विस्तृत चर्चा की गई है ।

"प्रतिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचन मात्रे प्रथमा" (२-३-४६) एवं "सम्बोधने च" (२-२-४७) सूत्र द्वारा प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है । "षष्ठीशेषे" (२-३-५०) सूत्र से लेकर पाद समाप्ति तक के सूत्रों में षष्ठी विभक्ति का विविध अर्थो में विधान किया गया है ।

चतुर्थ पाद - चतुर्थ पाद के आरंभ में द्विगु के विषय में विचार व्यक्त करते हुअे कहा गया है कि द्विगु का समाहार एकत्व संख्यायुक्त समझना चाहिये । सूत्र दो से सोलह तक के सूत्रों में प्राण्यंग, सेनांग, क्षुद्रजन्तु शाश्वतिक विरोध करनेवाले प्राणी,

शूद्र वगैरे के अर्थ में प्राप्त द्वन्द्व समास एकवद् भावयुक्त होता है ।

वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, पशु, पक्षी वगैरे का अर्थ बतानेवाले शब्दों में विकल्प से एकवद् भाव होता है । "स नपुसंकम्" (२-४-१७) सूत्र से "अर्धर्चाः पुंसि च" (२-४-३१) तक के सूत्रों में द्विगु, द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समास के उदाहरणों के विषय में लिंग का विधान किया गया है । (२-४-३२ से ३४) तक से सूत्रों में "इदम्" एवं "एतद्" आदेश की चर्चा की है ।

"आर्धधातुके" (२-४-३५) सूत्र से लेकर "वायौ" (२-४-५७) तक के सूत्रों में आर्धधातुक प्रत्यय को लगनेवाले आदेश का विधान किया गया है । यथा "अस्" धातु को "भू" आदेश "ब्रू" धातु को "वचादेश चक्ष्" धातु को "ख्या" आदेश, "अद्" को जग्धादेश हन् को वधादेश, इण् को गा आदेश का विधान किया गया है । सूत्र २-४-५७) से २-४-८५ तक के सूत्रों में प्रत्यय लोप का विधान किया गया है । जिसमें तद्राज, गोत्र, युव अपत्यादि तद्धित प्रत्यय, विभक्ति प्रत्यय, शप् आम्विधि के पश्चात् आनेवाले आप् सुप् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । "यङोऽचि च" (२-४-७४) सूत्र से पाद की समाप्ति तक के सूत्रों में आम् प्रत्यय, विकरण वगैरे लोप का विधान किया गया है ।

तृतीयाध्याय-

तृतीय अध्याय में धातु को प्राप्त होनेवाले तिडन्त एवं कृदन्त के शब्द स्वरूपों की चर्चा इसमें की गई है ।

प्रथमपाद के आरंभ में "प्रत्ययः" "परश्च" सूत्र द्वारा पाणिनि दर्शाते हैं कि प्रत्यय हमेशा प्रकृति के पश्चात् ही लगता है । एवं वह प्रत्यय आद्युदात्त होना चाहिये । इस प्रकार का सामान्य नियम करने के बाद सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष् णिच्, यक्, णिङ्, स्य, तास्, आम्, च्लि, सिच् क्स, चङ्, चिण्, चिणाभाव, शप्, श्यन्, श्नु, शृ, य, श्रच्, उ, श्ना, श्नुआदि प्रत्ययों का विधान पाणिनि ने ९० सूत्रों तक में किया है ।

"धातोः" सूत्र (३-१-९१) द्वारा पाणिनि अधिकार की स्थापना करते हैं । तृतीयाध्याय की समाप्ति तक के सभी सूत्रों द्वारा पाणिनि विधान करते हैं कि प्रत्यय धातु को ही लगते है । "कृदतिङ्" (३-१-९२) सूत्र इस बात का परिचायक है कि तिङ्वर्जित धातु को लगनेवाले प्रत्यय कृत् कहलायेंगे। "वासरूपोऽस्त्रियाम्" (३-१-९४) सूत्र से "चित्याग्निचित्ये च" (३-१-

१२३) तक के सूत्रों में कृत्य प्रत्यय का विधान किया गया है । उन प्रत्ययों में भाव एवं कर्म को लगनेवाले तव्य, अनीय, क्यप्, ण्यत्, आदि का परिहार करके क्यप्, ण्वुल्, तृच्, ल्यु (अक) णिनि, क, श, ण, अच्, ष्वुन्, ण्युट् एवं वुन् आदि प्रत्यय मुख्य हैं ।

द्वितीय पाद :- "कर्मण्यण्" सूत्र से द्वितीय पाद का आरंभ होता है। कर्मार्थप्रयुक्त सुबन्त शब्द जब उपपद में हो एवं निश्चित अर्थ में करण एवं अधिकरणवाची शब्द उपपद में हो तब धातु को "अण्" प्रत्यय लगता है। इसके सिवा क, टक्, अच् ट, इन्, खश्, खच्, ड, णिनि, टक्, ख्युन्, खिष्णुच्, कन्, आदि प्रत्यय मुख्य हैं । "सत्सूद्विष".... सूत्र (३-२-६१) से "आत्ममाने खश्च (३-२-८३) तक के सूत्रों में उपसर्ग एवं सुबन्त उपपद में रहने पर कालदर्शक क्विप्ण्वि, युट्, विट्, णिनि आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

"भूते" (३-२-८४) इस अधिकार सूत्र से आरंभ करके "पुरि लुङ् चास्मे" (३-२-१२२) तक के सूत्रों में भूतकाल की क्रिया दर्शानेवाले प्रत्ययों का विधान किया गया है । इन सूत्रों में "लुङ् (३-२-११०) अद्यतनभूतकालवाची, "अनद्यतनेलङ्" (३-२-१११), ह्यस्तनवाची, "परोक्षे लिट्" (३-२-११५) सूत्र ह्यस्तन भूतकाल का विधान करनेवाले सूत्र हैं । "करणे यजः (३-२-८५) सूत्र से लेकर "उपेयिवाननाश्वा" (३-२-१०९) तक के सूत्रों में "भूतार्थ में णिनि, क्विप्, इनि क्वनिप् उ, निष्ठा, आदि प्रत्यय क्तवतु ड्वनिप् अतृन् लिट आदि प्रत्यय लिट्को कानज् क्वसु आदि प्रत्ययादेश का विधान किया गया है । उपेयिवान्, अनाश्वान् तथा अनूचान शब्द निपातन युक्त है ।

"अभिज्ञावचने लृट्" (३-२-११२) के बाद के सूत्रों में कुछ विशिष्ट प्रत्यय एवं अपवाद सूत्रों का विधान किया गया है । सूत्र (३-२-१२३)" वर्तमाने लट् "से वर्तमान काल के अर्थ में लट् प्रत्यय का विधान किया गया है । वर्तमान कालिक प्रत्ययों का विधान आपादसमाप्ति तक गति करता है। "लटः शतृशानः" (३-२-१२४) सूत्र से "आक्वेश तच्छीलतंद्धर्म०" (३-२-१३४) तक के के सूत्रों में शतृ, शानच् एवं शानन आदि प्रत्ययोंका विधान किया गया है । "तृन्" (३। २। १३५) सूत्र से अन्येभ्योऽपि दृश्यते (३।२।१७८) तक के सूत्रों में तृन्, इष्णुच्, ग्स्नु, क्व, धिनुण्, वुञ्, युच्, उकञ्. षाकन् इनि, आलुच्, रु, क्वरप् घुरच्, कुरच् ऊक्, र, उ, कि, किन्, नजिङ् आरु, लु, क्लुकन्, वरच्, तथा क्विप् आदि प्रत्ययों का पठन किया गया है

। "भुवःसंज्ञान्तरयोः" सूत्र से लेकर "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च" तक के सूत्रों में क्विप्, ष्ट्रन्, क्त, व आदि प्रत्यों के विषय में विचार किया गया है ।

तृतीय पाद - तृतीयाध्याय के तृतीय पाद का प्रथम सूत्र "उणादयोबहुलम्" है । इस सूत्र द्वारा पाणिनि उणादि प्रत्ययों का उल्लेख करते हैं । यें उणादि प्रत्यय भूतकाल में प्राप्त होते हैं ।[५६] "भविष्यति गम्यादयः सूत्र से लेकर अनद्यतने लुट्" तक के सूत्रों में भविष्यकालवाचक प्रत्यय पढे गये है । "भविष्यति गम्यादयः" सूत्र द्वारा गमी आदि का साधुत्व दर्शाके लट्, तुमुन्, ण्वुल, अण्, लृट्, लुट् प्रत्ययों का विधान किया गया है । "पदरुजविशस्पृशो घञ्" सूत्र से लेकर "हस्तादाने चेरस्तेये" तक के सूत्रों में घञ् प्रत्यय भावार्थ में प्राप्त होता है । तत्पश्चात् भिन्न भिन्न अर्थो में णच्, इनुण्, घञ् आदि प्रत्ययों का विधान "परो भुवौ अवज्ञाने"[५७] तक के सूत्रों में किया गया है।

"एरच्" (३-३-५६) सूत्र से आरंभ करके "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" (३-३-१३०) तक के सूत्रों में भाव करण एवं अधिकरण के अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का विधान किया गया है । उनमें से भाव अर्थ में अच्, ण, क, अथुच्, नङ्, नन्, कि, क्तिन्, क्यप्, श, अ, ऊङ् युच् रिञ्, ण्वुच्, अनि आदि प्रत्ययों का विधान "आक्रोशे नञ्यनि"तक के सूत्रों में किया गया है ।[५८] इन प्रत्ययों में से क्तिन्, ज्ञ, अ, अश्, युच्, ण्वुल, आदि प्रत्यय स्त्रीलिंग में लगते है । "कृत्यल्युटोबहुलम्" (३-३-११३) से नपुंसक लिंग के अर्थ में क्त, ल्युट्, आदि प्रत्यय लगते है । पुल्लिंग में करण एवं अधिकरण के अर्थ में घ एवं घञ् प्रत्ययों का विधान किया गया है । तत्पश्चात् "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" तक के सूत्रों में खल्, युच्, आदि प्रत्यय लौकिक एवं वैदिक अर्थो में लगते दिखाई देते है ।

सूत्र (३-३-१३१) से (३-३-१७६) तक के सूत्रों में लकारार्थ में विधीयमान प्रत्ययों का निर्देश किया गया है । यथा - भविष्यत्काल, मर्यादा, कालविभाग, क्रियातिपत्त्यर्थ, भूत, गर्हा, किम्, किल, आस, चित्रीकरण, कालप्रवेदन, संभावनवचन, इच्छार्थ , विधि, निमंत्रण, आमंत्रण, अधीष्ट कार्य, संप्रश्न, प्रार्थना द्वेष, अतिसर्ग, आशिष आदि अर्थों में विशिष्ट प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

---

५६. पा.अ. भूतेऽपिदृश्यन्ते (३/३/२)

५७. पा.अ. (३/३/५५)

५८. पा.अ. ३-३-११२.

चतुर्थ पाद - तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में भावार्थक कृत् प्रत्यय, एवं लकारा देश का विधान किया गया है । सूत्र (३-४-६) से "सृपि तुदोः कसुन्" (३-४-१७) तक के सूत्रों में लिङ् प्रत्यय के अर्थ में लेट्, तुम् प्रत्यय के स्थान में से, असे आदि प्रत्यय, कृत्य प्रत्यय की जगह तवै, केन आदि प्रत्यय, भावार्थ में तोसुन्कसुन् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

(३-४-१८) सूत्र से (३-४-६४) तक के सूत्रों में क्त्वा, णमुल, खमुञ्, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । तत्पश्चत् विशिष्ट अर्थो में प्रयुक्त प्रत्ययों के अपवाद, आदेश आदि का विधान किया गया है । इसके बाद दश लकार में सामान्य ऐसे पुरुष एवं वचन से युक्त प्रत्यय तथा तिङ् प्रत्ययों के आदेश का विधान किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय : आचार्य पाणिनि ने चतुर्थ एवं पंचमाध्याय के प्रकरण को तद्धित ऐसा नाम दिया है । एवं तत् संबंधी प्रत्ययों का विधान किया है।

चतुर्थाध्याय के प्रथमपाद के ८१ तक के सूत्रों में स्त्रीलिंग वाचक प्रत्ययों का विधान किया है । [५९] "ड्याप् प्रातिपदिकात्" यह अधिकार सूत्र होने के कारण जहाँ जहाँ स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों की आवश्यकता होगी वहाँ वहाँ टाप् एवं ङीप् प्रत्ययों का विधान किया गया है । "सु औ जस् अम् औट् शस्"इस द्वितीय सूत्र द्वारा स्त्रीप्रत्यान्त शब्दों एवं प्रातिपदिकों को कारक एवं संख्या के अर्थ में विभक्ति प्रत्ययों का विधान किया गया है । तत्पश्चात् के सूत्रों में टाप्, डाप् डीष्, आदि प्रत्ययों के विषय में यथोचित जानकारी दी गई है ।

"तध्दिता :" (४-१-७६) यह अधिकार सूत्र है । एवं आपंचमाध्याय की समाप्ति तक जिन जिन प्रत्ययों का विधान किया जायगा वे तद्धित प्रत्ययान्त ही माने जायेंगे । "समर्थानां प्रथमाद्वा" (४-१-८२) सूत्र द्वारा तद्धित प्रत्यय का जिनको विधान किया गया है वे पद समर्थ होने चाहिये ऐसा नियम दर्शाया गया है । तत्पश्चात् "स्त्रीपुंसाभ्यां नञस्नञौ भवनात्" (४-१-८७) तक के ५ सूत्रों में "तेन दीव्यति" के अर्थ में अण् प्रत्यब एवं उसके अपवादक ण्य, अञ्, नञ्,स्नञ्, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । सूत्र (४-१- ८ से ९१) तक के सूत्रों में प्रत्यय के लुक् का विधान किया गया है ।

"तस्यापत्यम्" (४-१-९२) सूत्र से अपत्यवाचक सूत्रों का विभाग शुरु होता है । इन अपत्यवाची प्रत्ययों में इञ्, अकङ्, फक्, च्फञ्, अञ्, यञ्,

५९. पा.अ. दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेवृद्धिभ्योऽन्यतस्याम् ।

अण्, ढक्, नुक्, ऐरक्, ढ्रक्, आरक, श्छण्, ढञ्, ध, ख, छ, ष्ठक्, ण, ण्य, इक्, कुक्, षुक्, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

"**अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्**" (४-१-१६२) सूत्र से आगे के छः सूत्रों में [६०] गोत्र एवं युव प्रत्यान्त शब्दों की शास्त्रीय व्याख्या दी गई है । 'तत्पश्चात् तद्राज प्रत्ययों का विधान करके पाद की समाप्ति की गई है।

द्वितीय पाद - चतुर्थाध्याय के द्वितीय पाद में रक्त, समूह, अध्येतृ आदि अर्थवाले प्रत्यय एवं शैषिक प्रत्ययों का विधान किया गया है । "तेन रक्तं रागात्" (४-२-१) एवं "लाक्षारोचनाट्ठक्" इन सूत्रों में अण्-एवं ठक् प्रत्यय का विधान किया गया है । तदनन्तर नक्षत्रवाची एवं कालवाची प्रत्ययों का विधान किया गया है । इस द्वितीय पाद में भिन्न भिन्न अर्थो में लगनेवाले अनेक प्रत्ययों का इस पाद में विधान किया गया है । छ. ठक्, डयत्, डय, इनि, अञ्, यत्, उक्, ढञ्, टयण्, अण्, इनि, त्र, कट्यच्, वुन्, डमतुप्, आदि अनेक प्रत्यय विभिन्न अर्थो में लगते है ।

तृतीय पाद - तृतीय पाद में द्वितीय पाद की तरह प्रत्ययों का विधान किया गया है । पाद का आरंभ शैषिक प्रत्ययों से होता है । यत्, यञ्, ठञ्, अञ, वुञ्, वुन्, कन्, आदि प्रत्यय शैषिक प्रत्ययों में गिने जा सकते है ।

"तत्रभव"[६१] के अर्थ में यत्, ठञ् अण्, ञ्यः आदि प्रत्ययों का पाणिनिने परिगणन किया है ।

"ततः आगतः" [६२] इस अर्थ में ठक्, अण्, वुञ्, मयट् आदि प्रत्यय अवगन्तव्य हैं ।

"प्रभवति" (४-३-८३) के अर्थ में ञ्य प्रत्यय लगता है । "सोऽस्यनिवासः' (४-३-८९) के अर्थ में "छ" प्रत्यय का पाणिनि ने निर्देश किया है । "तेन प्रोक्तम्" [६३] के अर्थ में सूत्रकार पाणिनि ने अण्, छण् णिनि, अण्, ढिनुक्, आदि प्रत्ययों को पाणिनि ने परिगणन किया है ।

"तेनैक दिक्" (४-३-११२) इस अर्थ में तस् वगेरे प्रत्यय लगते हैं। संज्ञा के अर्थ में वुञ् प्रत्यय लगता है । "तस्येदम्" [६४] इस अर्थ में यत्,

---

६०. पा.अ. यूनश्च कुत्सायाम् ४.१.१६७.

६१. पा.अ. ४-३-५३.

६२. पा.अ. ४-३-७४.

६३. पा.अ. ४-३-१०१.

६४. पा.अ. ४-३-१२०.

अञ्, ढक्, वुञ्, अण् आदि प्रत्यय अवगन्तव्य हैं ।

"तस्यविकार" (४-३-१३४) इस अर्थ में यथाविहित अण्, षुक्, अञ्, टलञ्, मयट्, कन्, वुञ्, ढञ् यत् आदि प्रत्ययों का आचार्य पाणिनि ने परिगणन किया है ।

चतुर्थ पाद - इस पाद में १४४ सूत्र हैं । सूत्र (४-४-२) से[६५] (४-४-७५) तक ६६ के सूत्रों में तेन दीव्यति, तेन खनति, तेन संस्कृतम्, तेन जयति, तेन जितम्, तेन तरति आदि अर्थो में ठक् तथा ठक् के अपवादक अण्, ढञ्, ष्ठल्, ठञ्, ण्य अञ् आदि कतिपय प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

"तद्धहति रथयुगप्रासंगम्" (४-४-७६) सूत्र से पाद समाप्ति तक कुछ विशिष्ट प्रत्ययों का विधान किया गया है । महाभाष्यकार पतंजलि ने इस पाद के १९ सूत्रों पर ही भाष्य रचा है ।

पञ्चमाध्याय :-

प्रथम पाद - पंचमाध्याय के प्रथम पाद में "प्राक् क्रीताच्छः" (५-१-१) सूत्र से "तेन क्रीतम्" (५-१-३७) तक के सूत्रों में क्रीत अर्थ में न हो ऐसे छ, यत्, ष्यन्, ख, ण, ढञ्, खञ्, ञ्य, ढक्, कन्, अण्, इकन्, आदि प्रत्ययों का विधान किया है । तत्पश्चात् "तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ" (५-१-३८) सूत्र से लेकर "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" (५-१-११८) तक के सूत्रों में ईश्वर, वहन, आवहन्, संभव, अपहरण, परिमाणम्, काल, तदस्य ब्रह्मचर्यम् आदि विविध अर्थो में विविध प्रत्ययों का विधान किया है ।

"तस्यभावस्त्वतलौ" (५-१-११९) सूत्र से पाद की समाप्ति तक के सूत्रों में भाव के अर्थ में विविध प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

द्वितीय पाद - पंचमाध्याय के द्वितीय पाद में भी तद्धित प्रत्ययों का विधान किया गया है । अनेक शब्दों को अनेक अर्थो में निश्चित प्रत्यय लगते हैं यह बात पुनः पाणिनि ने इस पाद में कही है । इस पाद में पाणिनि ने खञ्, ढक्, यत्, ख, द्वसज्, दघ्नच्, मात्रच्, मयट् डट्, तीय, तयप्, अयच्, तिथुक्, आदि विविध प्रत्ययों का परिगणन इस पाद में किया है । प्रमाण, परिमाण, अवयव, संख्या, कालपरिमाण यथा-मास, अर्धमास, संवत्सर वगैरे के अर्थो में इन प्रत्ययों का परिणगणन किया है । "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्"

---

६५. पा.अ. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् (४-४-२)

६५. पा. प्राग्धिताद्यत् ४-४-७५.

(५-२-९४) इस अर्थ में लच्, इलच्, श, न, विन्, इन्, इलच्, उलच्, र, म, व, वल्, इम्, ठन्, आदि प्रत्ययों का विधान पाद की समाप्ति तक किया गया है ।

तृतीय पाद - तृतीय पाद में सर्वनाम, किम्, बहु आदि शब्दों को तस्, त्र आदि प्रत्यय लगाकर जो अव्ययरुप शब्द निष्पन्न हुओ है उसका विधान किया गया है । तस्, त्र, आदि प्रत्ययों को विभक्ति नाम दिया गया है । "अतिशायने तमबिष्ठनौ" [६६] सूत्र द्वारा अधिकतादर्शक प्रत्ययों का विधान किया गया है । इसके सिवा स्वल्प, अज्ञात, कुत्सित, किंचित्, ह्रस्व अनुकंपा, कुत्सा, आदि अर्थो में विविध प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

चतुर्थ पाद :- इस पाद में भी विविध अर्थो में प्रयुक्त कन् [६७] प्रत्यय का विधान किया गया है । बहुत से सूत्रों में प्रत्यविधान प्रातिपदिकों को होता है ऐसा निर्देश किया गया है । क्योकि प्रातिपादिक की अनुवृत्ति अधिकार सूत्र [६८] से आती है । प्रत्यय कोई अर्थ नहीं रखता किन्तु प्रकृत्यर्थ ही प्रत्ययार्थ बनता है । अतः प्रत्यय को स्वार्थिक् प्रत्यय कहते है । ढक्, अञ्, अण् कृत्वसुच्, सुच्, मयट्, यत्, तल्, क, कन्, आदि प्रत्यय स्वार्थिक प्रत्यय है । "समासान्ताः" (५-४-६८) सूत्र से लेकर पाद की समाप्ति तक समासान्त प्रत्ययों का विधान किया गया है।

षष्ठाध्याय - प्रथम पाद - "एकाचो द्वे प्रथमस्य" (६-१-१) सूत्र से द्विर्वचन विभाग शुरु होता है एवं (६-१-१२) तक के सूत्रों में [६९] द्विर्वचन प्रकरण गति करता है । तत्पश्चात् "ष्यडः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे" (६-१-१३) सूत्र से "विभाषा परे" (६-१-४४) तक के सूत्रों में सम्प्रसारण विषयक नियमों का प्रतिपादन किया गया है . तदनन्तर "धात्वादेः षः सः "णो नः" सूत्र में सत्व एवं नत्व का विधान किया गया है । "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" (६-१-७१) सूत्र से "पदान्ताद्वा" (६-१-७६) सूत्र तक तुक् आगम का विधान किया गया है । "इको यणचि" एवं "एचो ऽयवायावः" सूत्र द्वारा यणादेश तथा अय्, अव्, आय्, आवादेश का विधान किया गया है । "एकः पूर्वपरयोः"

---

६६. पा.अ. ४-३-५५.

६७. पा.अ. स्थूलादिभ्यः प्रकारवचनेकन् ५.४.३.

६८. पा.अ."ड्याप् प्रातिपदिकात्" ४.१.१.

६९. पा.अ. दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च.

(६-१-८४) सूत्र से एकादेश का विभाग शुरु होता है । व्याकरण शास्त्र के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों में एकादेश, पूर्वसवर्ण, पररूप, प्रकृतिभाव आदि मुख्य हैं ।

"अनुदात्तं पदमेकवर्जम्" (६-१-१५८) सूत्र से पाद समाप्ति तक अनुदात्तादि स्वर के विषय में सामान्य नियम दिये गये है । उन सूत्रों में धातु, तद्धित तथा कुछ अन्य प्रत्ययों को अनुदात्त उदात्तादि नियमों का विधान किया गया है । तत्पश्चात् के सूत्रों में स्वरित विषयक चर्चा है । पाद की समाप्ति में "समासस्य" (६-१-२२३) सूत्र द्वारा सामासिक पद अन्तोदात्त होता है तद्विषयक विधान किया गया है ।

द्वितीय पाद - द्वितीय पाद में पूर्वपद को स्वर, प्रकृतिस्वर तथा उत्तरपद के स्वरों के विषय में सामान्य नियमों की चर्चा की गई है । इस पाद का आरंभ "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" सूत्र से होता है । तदनन्तर तत्पुरुष, कर्मधाय, द्विगु, द्वन्द्व, आदि समासों के स्वरों के विषय में चर्चा की गई है। "राजा च प्रशंसायाम्" (६-२-६३) तक के सूत्रों में इस प्रकरण की समाप्ति होती है । "आद्युदात्तः" (६-२-६४) सूत्र से आद्युदात्त स्वर का विभाग शुरु होता है, यह विभाग न भूताधिक... (६-२-९१) सूत्र तक अनुवृत्त होता है।

"अन्तः" (६-२-९२) सूत्र से "निष्ठोपसर्गमन्यतरस्याम्" (६-२-११०) तक में पूर्वपद अन्तोदात्त सम्बन्धी नियमों का विधान किया गया है । "उत्तरपदादिः" (६-२-१११) सूत्र से "कुण्डं वनम्" (६-२-१३६) तक उत्तरपद आद्युदात्त होता है एतद्विषयक चर्चा की गई है । "प्रकृत्या भगालम्" (६-२-१३७) सूत्र से "अन्तः" (६-२-१४३) तक के सूत्रों में उत्तरपद अन्तोदात्त सम्बन्धी चर्चा है ।

"अन्तः" (६-२-१४३) सूत्र से पाद समाप्ति तक इसी विभाग का विस्तार किया गया है ।

तृतीय पाद - षष्ठाध्याय के तृतीय पाद में अलुक् समास, पुंवद्भाव एवं उत्तरपद निमित्त एकादेश आदि विषयों की चर्चा की गई है ।

"अलुगुत्तरपदे" (६-३-१) सूत्र से "विभांषास्वसृपत्योः" [७०] तक के सूत्रों में अलुक् समास के विषय में एवं "आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" (६-३-२५) सूत्र से "पितरामातराच्छन्दसि" (६-३-३३) तक के सूत्रों में आदेश एवं निपातनसम्बन्धी नियमों की चर्चा की गई है । "स्त्रियाः पुंवद् भाषित"... (६-३-३४) सूत्र से आरंभ किया गया भाषितपुंस्क विभाग "पुंवत्कर्मधारय"

७० पा. अ. ६-३-२४.

..... (६-३-४२) तक के सूत्रों में पूर्णरूपेण पाया जाता है । कुछ आदेश विषयक सूत्रों की चर्चा घरुपकल्प (६-३-४३) सूत्र से मन्थौदन सक्तु.....(६-३-६०) तक के सूत्रों में समाप्त होती है ।

"इको ह्रस्वोङ्यो: गालवस्य" (६-३-६१) सूत्र से शुरु हुआ ह्रस्वादेश विभाग "खित्यनव्ययस्य" (६-३-६६) तक के सूत्रो में समाप्त होता है। तत्पश्चात् मुम्, नुट, स. आ, आदि आदेशों की चर्चा "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" (६-३-६७) सूत्र से "वनगिर्यो: संज्ञायाम्" (६-३-११७) सूत्र तक प्रवर्तित होता हैं । तत्पश्चात् दीर्घादेश का विभाग "वले" सूत्र से पाद समाप्ति तक गति करता है ।

चतुर्थ पाद : - "अंगस्य" (६-४-१) शुरु हुआ "अंगाधिकार" आसप्तमाध्याय की समाप्ति तक माना जाता है । "अंगस्य" सूत्र से इस विभाग में अंग विषयक नियमों की चर्चा की गई है । "हलः" (६-४-२) सूत्र से दीर्घाधिकार शुरु होता है, जो "क्रमश्च क्त्वि" सूत्र तक अनुवृत्त होता है । तदनन्तर सूत्र १९-२०-२१ में आदेश विषयक नियम दिये गये है । "असिद्धवदत्राभात्" (६-४-२२) सूत्र से "भस्य" (६-४-१२९) तक के सूत्र आभात् कहे जाते है । इस विभाग के सूत्र परस्पर में असिद्ध कहाते हैं "भस्य" (६-४-१२९) से पाद समाप्ति तक के सूत्रों में जिनकी "भ" संज्ञा होती हैं उनमें कार्य होते है । ऐसे कार्यो में कुछ आदेश, अ, अन्, इ, रु, छ का लोप आदि मुख्य हैं । अन्तिम दो सूत्रों में निपातन शब्दों का परिगणन किया गया है ।

सप्तमाध्याय : -

प्रथम पाद - सप्तमाध्यायके प्रथम पाद में अंग के कारण से विभक्ति प्रत्ययों को प्राप्त होनेवाले कार्य, एवं विभक्ति प्रत्ययों के कारण से अंग को होनेवाले कार्यो की चर्चा की गई है ।

"युवोरनाकौ" (७-१-१) सूत्रसे प्रारंभ होनेवाले इस प्रकरण में कतिपय प्रकीर्ण आदेश, शि, अद्ड आदेश, विभक्ति प्रत्ययों के आदेश तातङ्, ल्यप् आदि आदेशों की चर्चा "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्" (७-१-३७) तक के सूत्रों में की गई है ।

तत्पश्चात् बारह सूत्रों मे "क्त्वापि छन्दसि" (७-१-३८) से लेकर "स्नात्व्यादयश्च" तक के सूत्रों में [७१] वैदिक शब्दों को आदेश विधान सम्बन्धी

७१ पा. अ. ७-१-४९

चर्चा की गई है । "इदितो नुम्धातोः" (७-१-५८) सूत्र से "तृतीयादिषु भाषित".... (७-१-७४) तक के सूत्रों में नुमागम विषयक सूत्रों की विचारणा की गई है । तत्पश्चात् "अस्थिदधि"....(७-१-७५) सूत्र से पाद समाप्ति तक के सूत्रों में अनङ्, औ, आ, असुङ्, उ आदि आदेशों का विधान किया गया है । वेदों में वैविध्य होने की बजह से "बहुलं छन्दसि" जैसे सूत्रों का विधान करके पाणिनि ने झटिल समस्या को सरल बना दिया है ।

द्वितीय पाद : - द्वितीय पाद का आरंभ इडागम निषेध एवं इडागम विधान विषयक विषयों की चर्चा से होता है । प्रथम पाँच सूत्रों में "सिच्" प्रत्यय से पूर्व वृद्धि प्राप्ति के विषय की चर्चा है । तत्पश्चात् के सूत्र द्वय में विकल्प से वृद्धिका निर्देश किया है ।

नेडवशिकृति (७-२-८) सूत्र से इडागम निषेध का विभाग शुरु होता है । "अभेश्चाविदूर्ये" (७-२-२५) तक के सूत्रों में यह निषेध विभाग पूर्ण होता है । सूत्र २६ से (७-२-३४) तक के सूत्रों में विकल्प से इडागम तथा वैदिक निपातन शब्दो का परिगणन किया गया है ।

"आर्धधातुकस्येड् वलादेः" (७-१-३५) सूत्र से पुनः इड्विधान शुरु होता है जो "ईडजनोर्ध्वेच" (७-१-७८) सूत्र तक अनुवृत्त होता है । बीच बीच में इडागम निषेध एवं विकल्प की भी चर्चा है ।

"युष्मदस्मदोरनादेशे" [७२] सूत्र से "हलि लोपः" (७-२-११३) तक के सूत्रों में सर्वनाम विषयक नियमों की चर्चा है । अन्तिम तीन सूत्रों में वृद्धि का विधान किया गया है ।

तृतीय पाद - सप्तमाध्याय के तृतीय पाद में उत्तरपद को प्राप्त होनेवाली वृद्धि, आदेश, ह्रस्व, गुण, वृद्धि एवं अंगविषयक नियमों की चर्चा की गई है । "देविकाशिंशपादित्यवाट्०"....(७-३-१) सूत्र से "पदान्तस्यान्यतरस्याम्" (७-३-९) तक के सूत्रों में तद्धित प्रत्ययों को लगनेवाली वृद्धि का विधान किया गया है ।

"उत्तरपदस्य" (७-३-१०) सूत्र से लेकर "यथातथयथापुरयोः पर्यायेण" (७-३-३१) तक के सूत्रो में उत्तरपद को होनेवाली आद्यवृद्धि स्वर की चर्चा की गई है ।

"हनस्तोऽचिण्णलोः" (७-३-३२) सूत्र से लेकर "पाघ्राध्मा०" (७-३-७८) तक के सूत्रों में पुक्, त, इ, इक् वगेरे आदेश कण्ठ्यवर्णादेश

[७२] पा. अ. ७-२-८६

तथा कतिपय अनियमित शब्दों का विधान किया गया है । "जुसिच" "सार्वधातुक आर्द्धधातुक योः" (७-३-८३-८४) सूत्र के लेकर "गुणोऽपृक्ते" (७-३-९१) तक के सूत्रों में गुण विषयक नियमों की चर्चा की गई है । पाद समाप्ति तक के शेष सूत्रों में ईडागम, दीर्घत्व, आमागम[७३] तथा प्रकीर्ण आदेशविधायक सूत्रों की विस्तृत चर्चा की गई है ।

चतुर्थ पाद : - इस अध्याय के चतुर्थ पाद में लिट् प्रयोग, लुङ् प्रयोग, यङ् लुगन्त प्रयोग करते समय प्राप्त होनेवाले ह्रस्व, गुण, दीर्घ, इत्व आदि के विषय में नियम दिये गये हैं । इस पाद के ९७ सूत्रों में से सिर्फ छः सूत्रों पर ही भाष्यकार ने व्याख्यान किया है ।

अष्टमाध्याय प्रथम पाद - अष्टमाध्याय के प्रथम पाद में द्वित्वाधिकार "सर्वस्य द्वे" (८-१-१) सूत्र से लेकर "द्वन्द्वं रहस्य०" (८-१-१५) तक के सूत्रों में प्रवृत्त होता है । यह द्वित्व किन अर्थो में कहाँ पर होना चाहिये इसकी चर्चा उपर्युक्त सूत्रों में की गई है । "पदस्य" (८-१-१६) सूत्र से लेकर "आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्" (८-१-७२) तक के सूत्रों में युष्मद्, अस्मद्, अस्मद् शब्दों के एकाक्षर आदेश को, आमन्त्रित पद को, अतिङ् पहले के तिडन्त को सर्वानुदात्त होता है, एतद् विषयक नियम इन सूत्रों में दिये गये हैं । तथा उनके अपवादों की भी चर्चा की गई है । इस पाद की समाप्ति के साथ ही व्याकरण शास्त्र में चर्चित सपादसप्ताध्यायी विभाग पूरा होता है ।

द्वितीय पाद : - द्वितीय पाद का आरंभ "पूर्वत्रासिद्धम्" [७४] सूत्र से होता है । इस सूत्र द्वारा पाणिनि नियम बनाते हैं कि यहाँ से लेकर तीन पादों के सूत्र सपादसप्ताध्यायी में असिद्ध समझने चाहिये । तथा इन पादत्रय में भी पूर्वसूत्र को उत्तरसूत्र से बलवान् समझना चाहिए । इन सूत्रों में कुछ आदेश, स्वरविषयक नियम, न लोप, र को लादेश, संयोगान्त लोप, स, लोप, ह को ध,[७५] "व्रश्चभस्जसृज०" (८-२-३६) सूत्र से षादेश, "एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः" (८-२-३७) सूत्र से भषादेश, ध, क, न, आदि आदेश, निष्ठा के तकार को नकारादेश,

"ससजुषो रु :" (८-२-६६) सूत्र से रु आदेश, दकारादेश , [७६] उच्चारण,

---

७३. पा. अ. डे. राम्नद्याम्नीभ्यः ७-३-११६

७४ पा. अ. ८-२-१

पा. अ. हो ढः ॥ ८-२-३१ ॥

पा. अ. वसुस्त्रंसुध्वंस्वनडुहांद : ८-२-७२.

सम्बोधन, यज्ञकर्म में उच्चारित वर्णविषयक नियम आदि की चर्चा की गई है। "वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः" (८-२-८२) सूत्र से लेकर "प्लुतावैच इदुतौ" (८-२-१०६) सूत्र तक प्लुत प्रकरण की चर्चा की गई है । इस प्रकार से यकार वकार आदेश के साथ पादकी समाप्ति होती है ।

तृतीय पाद "मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि" (८-३-१) सूत्र द्वारा 'रु' आदेश का विधान करके "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" (८-३-२) सूत्र द्वारा विकल्प से पूर्ववर्ण को अनुनासिक का विधान किया है । 'रु' आदेश का विधान "कानाम्रेडिते" (८-३-१२) सूत्र तक प्रवृत्त होता हैं । तत्पश्चात् विसर्जनीयादेश।[७७] यकारा देश, अनुस्वारादेश, नकारादेश आदिका विधान किया गया है । तदन्नतर धुडागम तुगागममें आदि का विधान किया गया है । तदनन्तर विसर्ग संधि एवं 'ष्' आदि के नियमो की चर्चा, इस प्रकरण में आचार्य पाणिनि ने "मूर्धन्यादेश" विधायक सूत्रों की काफी चर्चा की हैं।

चतुर्थ पाद - इस पाद का आरंभ "रषाभ्यां नो णः समान पदे" (८-४-१) सूत्र द्वारा हुआ है । जिसमें नकारा को णकारादेश. यह प्रकरण (८-४-४०) तक प्रवृत्त होता है जिसमें विधि - निषेधादि कार्य प्रवृत्त होते हैं । तत्पश्चात मूर्धन्यादेश, तालव्यादेश, द्वित्व व्यंजन विषयक कतिपय नियम तथा स्वर संबंधी नियमो की चर्चा है । स्तोः श्चुना श्चुः (८-४-४०) "ष्टुना ष्टुः" आदि सूत्र इस पाद में प्रमुख स्थान रखते हैं । इस पाद का अन्तिम सूत्र "अ अ इति" (८-४-६८) है जो विवृत अकार के स्थान में संवृत अकार का विधान करता है ।

अष्याध्यायी में वैदिक व्याकरण विषयक निरूपण -

पाणिनि की अष्टाध्यायी लौकिक व्याकरण को लेकर चली है या वैदिक? इस विषय में विद्वानों में दोनों प्रकार की विचार धाराएँ प्रचलित हैं ।

प्रथम पक्षके विद्वान पाणिनि की अष्टाध्यायी को वेद की पृष्ठभूमि में ही देखते हैं । डॉ. पॉल थीमे (Paul Theme) इसके प्रमुख प्रवक्ता हैं । उनका मानना है कि अष्टाध्यायी का का मुख्य उद्देश्य लौकिक शब्दों का व्याख्यान करना न होकर वैदिक पूर्ण रचना प्रक्रिया को समझाना मात्र ही था ।[७८]

द्वितीय पक्ष के विद्वान पाणिनि को लौकिक व्याकरण का महान उदघोषक

---

७७. पा. अ. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८-३-१५

७८ देखें - डॉ. वर्मा सत्यकाम - सं. व्या. उ. वि० पृ. १७६.

मानते हैं ।पाणिनिनेअपने समय में जो बोलचाल की भाषा विद्यमान थी उसे ही स्वसूत्रों में अपनाया है एवं नियमबद्ध किया है ।

अधिकांश भारतीय विद्वानों ने "पाणिनीय अष्टाध्यायी लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के भाषा स्वरूपों का व्याकरण है" ऐसा मत प्रदर्शित किया है। अधिकांश सूत्रों का पठन लौकिक भाषा पर ही आधारित है अतएव द्विधायुक्त स्थलों के लिये "भाषायाम्" आदि शब्दों का वे पठन करते हैं । पाणिनीय व्याकरण में तत्कालीन इतिहास, भूगोल आदि विषयक विषयवस्तु का निरूपण किया गया है । पाणिनीय व्याकरण से निष्पन्न प्रयोग लौकिक भाषा में प्रयुक्त पाये जाते हैं । अतः पाणिनीय व्याकरण लौकिक भाषा पर ही आधारित है ऐसा उनका मानना है ।

सत्यपक्ष - वास्तविकता यही है कि पाणिनीय व्याकरण लौकिक एवं वैदिक दोनों बोलियाँ (dialects) पर ही आधारित है । भाष्यकार पतंजलि महाभाष्य में लिखते हैं - "अथ शब्दानुशासनं क्रियते । केषां शब्दानां ? लौकिकानां वैदिकानां च ।"[७९] इससे सिदध है कि पाणिनीय अष्टाध्यायी संस्कृत भाषाके लौकिक एवं वैदिक दोनों शब्दों पर आधारित है ।

यद्यपि यह सच है कि लौकिक शब्द विषयक सूत्रों की अपेक्षा पाणिनि ने वैदिक शब्दविषयक सूत्रों का प्रयोग अष्टाध्यायी में कम ही किया है तथापि वैदिक कार्यों के हेतु पाणिनि ने छन्दस् मन्त्र, ऋच्, यजुस्, ब्राह्मण, आदि शब्दों द्वारा बार बार वैदिक सूत्रों के प्रयोग की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। प्रकृति-प्रत्यय के विभाग की आधारशिला ही व्याकरण का महत्त्वपूर्ण अंग है।

वर्ण-पद-वाक्य आदि सभी विभाग व्यावहारिक सुविधाके द्योतक मात्र हैं । वैदिक पदरचना के सम्बन्ध में समान नियमों को खोज निकालने का पाणिनि का प्रयास व्याकरण की समान धारणा पर ही टीका हुआ है ।

यही बात स्वर-प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी लागू पडती है । पाणिनि प्रकृति एवं प्रत्यय को ही स्वर का आधार मानकर चलते हैं ।

पाणिनि अलग अलग स्थलों पर बीच बीचमें इन सूत्रों का निर्देश किया है, इस कारण कुछ विद्वान कहते है कि अष्टाध्यायी के वैदिक सूत्रों में निश्चित एवं सर्वतोग्राही दृष्टि नहीं है । पाणिनि वैदिक उदाहरणार्थ मुख्यतः ऋग्वेद और कृष्णयजुर्वेद की संहिताएँ, ब्राह्मणग्रन्थ एवं उपनिषदों का आधार लेते हैं ।

---

७९ व्या. म० - १-१-१.

वैदिक प्रयोगों के विषयमें प्राय: सर्वस्पर्शी सूक्ष्म नियमों का अवगाहन अष्टाध्यायी में दृष्टिगोचर होता है । कात्यायन एवं पतंजलि ने कई सूत्रों की चर्चा की है, तथापि वैदिक सूत्रों के विषय में पाणिनि का प्रदान असामान्य है । प्रातिशाख्यों में ध्वनि, उच्चारण एवं संधि विषयक चर्चा ही उपलब्ध होती है, वैदिक उदाहरणों का उल्लेख अत्यल्प है जब कि पाणिनि ने वैदिक सूत्र एवं उदाहरणों की पर्याप्त चर्चा की है ।

पाणिनि व्याकरण में सौ से अधिक सूत्रों में "छन्दसि" शब्दका प्रयोग मिलता है, एवं दर्जनों सूत्रो में इसकी अनुवृति चलती है । 'छन्दसि' शब्द के द्वारा सामान्य संकेत करके ही पाणिनि ने वैदिक भाषा को अस्पष्ट नही छोडा है ।

'छन्दसि' शब्द का प्रयोग पाणिनि ने अनेक सूत्रों में किया है, यहाँ हम कतिपय सूत्रों का ही निर्देश करेगें -

(क) (१) विभाषा छन्दसि. (१-२-३६) (२) छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् (१-२-६१), (३) षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा (१-४-९), (अयस्यमयादीनि छन्दसि (१-४-२०) (५) छन्दसि परेऽपि (१-४-८१), (६) तृतीया च होश्छन्दसि (२-३-३), (७) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि (२-३-६२), (८) बहुलं छन्दसि (२-४-३९), (९) गुपेश्छन्दसि (३-१-५०), (१०) कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि (३-१-५९), (११) छन्दसि शायजपि (३-१-८४), (१२) प्रत्यर्पिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (३-१-११८), (१३) छन्दसि निष्टक्र्यदेवहूय.....(३-१-१२३), (१४) छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् (३-२-२७), (१५) छन्दसि सह (३-२-६३), (१६) छन्दसि च (५-१-६७), (१७) छन्दसि घस् (५-१-१०६), (१८) छन्दसि परिपन्थि (५-२-८९) (१९) छन्दस्यपि दृश्यते (६-४-७३), (२०) छन्दस्युभयथा (६-४-८६), (२१) छन्दस्यने कमपि....(८-१-३५), (२२) छन्दोनाम्नि च (८-३-९४), (२३) छन्दस्यृदवग्रहात् (८-४-८६) आदि ।

(ख) "मन्त्रे" शब्द को लेकर पाणिनि ने अनेक सूत्रों का विधान किया है, कुछ सूत्रों का ही हम यहाँ उदाहरणरूपेण निर्देश करेंगे -

(१) मन्त्रे घसह्वरणशवृदहादवृच्कृगमिजनिभ्यो ले : (२-४-८०), (२) मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् (३-२-७१), (३) मन्त्रे वृषेषपचमनविद्भूवीरा उदात्तः (३-३-९६), (४) तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः (४-४-१२५), (५) ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे (६-१-१५१), (६) नित्यं मन्त्रे (६-१-२१०), (७) मंत्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ (६-३-१३१), (८)

जनिता मंत्रे (६-४-५३),

(ग) 'मंत्रेषु' शब्द के आधार पर पाणिनि ने "मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" (६-४-१४१) सूत्र का विधान किया है ।

(घ) "निगमे" शब्द के आधार पर अष्टाध्यायी में निम्न सूत्र पाये जाते हैं ।

(१) साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे (६-३-११३), (२) वा षपूर्वस्य निगमे (६-४-९), (३) बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे (७-२-६४), (४) मीनातेर्निगमे (७-३-८१), (५) ससूवेति निगमे (०७-४-७४),

(ङ) 'ब्राह्मणे' शब्द के आधार पर पाणिनि ने "द्वितीया ब्राह्मणे" (२-३-६०) सूत्र का विधान किया है ।

(च) पाणिनि ने अपने सूत्रों में वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थों का नामोल्लेखभी किया है, यथा -

(१) ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम् (६-३-१३३), (२) कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः (७-४-३९), (३) ऋक्षुशब्द का प्रयोग - उभयथर्क्षु (८-३-८), (३) यजुः शब्द का प्रयोग यजुष्युरः (६-१-११७), (५) देवसुम्नयोर्यजुषि काठके (७-४-३८),

(६) यजुष्येकेषाम् (८-३-१०४)

(छ) इसके अतिरिक्त पाणिनि ने वैदिक रूपों के विषय में इतनी सूक्ष्मता से विचार किया है कि वैदिक पाद के अन्त में "विद्मा हि त्वा सत्पतिं शूरगोनाम्" (यहाँ अन्त में नुडागम एवं दीर्घ [८०], पाद के मध्यमें यथा - "नृन्पे" (पा. अ. ८-३-१०) नॄँः पाहि । नॄँ प्रीणीहि यहाँ पकार के परे नृ शब्द के अन्त्य नकार को रु आदेश होता है ।

(ज) ऋग्वेद की भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताओं पर पाणिनि ने विशेष ध्यान दिया है । यथा - "उपरिस्विदासीदिति च" (पा. अ. ८-२-१०२) में अधः स्विदासी ३ त् उपरिस्विदासी ३ (ऋ. १०-१२९.५) में प्लुत स्वर के सम्बन्ध में विधान किया गया है ।

(पा. अ. ७-१-४३) में ऋ ८-२-३७) के "यजध्वैनम्" यहाँ यकारलोप का निर्देश पाणिनि ने किया है ।

पाणिनि ने प्रत्याहार की रचना द्वारा संस्कृत भाषा के व्याकरण का विश्लेषण

---

८० द्व्यचोऽतस्तिङः (६-३-१३४)

करने हेतु एक नई पद्धति कायम की अपने पुरोगामी आचार्यो की संज्ञाओं एवं परिभाषाओं का ऋणस्वीकार करते हुए स्वरभार पर उन्होंने काफी वजन दिया है । तदर्थ "इत्संज्ञक" वर्णो का उन्हों ने आयोजन किया है । निपातन शब्दों की सिद्धि हेतु 'इत्संज्ञक' वर्णो को उन्हों ने अपनी अष्टाध्यायी में स्थान दिया है । यथा - "अमावस्यदन्यतरस्याम्" [८१] सूत्र में अमावस्यत् पद का तकार तित्स्वरहेतु, "क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः" (५-२-९२) सूत्रस्थ चकार चित्स्वरहेतु "श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते" (५-२-८४) सूत्रस्थ नकार नित्स्वर हेतु है। पाणिनि ने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में से २७० सूत्र वैदिक प्रक्रिया हेतु एवं ३८० सूत्र स्वरप्रक्रिया हेतु रचे हैं ।

आचार्य पाणिनि ने "अनुदात्तं पदमेकवर्जम्" (६-१-१५८) सूत्र में स्वरभार विषयक सामान्य नियम का निरूपण करके तत्पश्चात् सुप्प्रत्यय, क्रियापद संबोधन पद, स्त्रीलिंग संहिता आदि के ज्ञान हेतु चित्, तित् लित्, ञित्, नित्, रित् आदि स्वरों की चर्चा है । षष्ठाध्याय के द्वितीय पाद में सामासिक स्वर विषयक चर्चा है । अष्टमाध्याय के द्वितीय पाद में (८-२-२८) से (९-२-७४) तक के सूत्रों में क्रियापदों के अनुदात्त स्वर की चर्चा है । इसके अलावा (६-१-१६१), (६-१-१७४), (८-२-४,६), (८-४-६६-६७) सूत्रों में संहिता स्वर की ही चर्चा की गई है ।

धातु विषयक एवं प्रत्ययविषयक नियमों की चर्चा (३-१-३) एवं (६-१-१६२) में की गई है । सुब्विषयक नियम (३-१-४) में उपलब्ध है । उदात्त, अनुदात्त, स्वरित एवं एकश्रुति की व्याख्या पाणिनि ने (८-२-८२ से ८-२-१०८) तक के सूत्रों में दी है ।

पाणिनीय व्याकरण में "स्वरविचार" अत्यंत महत्व का अंग है । प्रचलित भाषा में अप्रचलित शब्दों के लिये उन्होंने "छन्दसि"'मन्त्रे' आदि शब्दों का निर्देश करके अपनी स्थिति स्पष्ट की है । षष्ठाध्याय एवं अष्टामाध्याय के द्वितीय पाद के उत्तरार्ध में एवं तृतीय पाद में स्वर विषयक सूत्र दिये हैं एवं इस प्रकार से लौकिक संस्कृत बोली की तुलना में वैदिक संस्कृत बोली का महत्व प्रतिपादित किया है । "बियास" [८३] नदी के पूर्व पश्चिम स्थित अलग अलग छोर के लिये अलग अलग स्वरयुक्त उच्चारण पाणिनि का स्वर ज्ञान कितना सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण था इसकी प्रतीति

---

८१ पा. अ. ३-१-१२२.

८२ Dr. Balasubramanyam M.D. : SkAPV. Introp.v

८३ पा. अ. - उद्क च विपाश : (४-२-७४)

हेतु काफी है ।[८४] इसी कारण "महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य" काशिकाकार का वचन यथार्थ लगता है ।[८५]

"गन्तव्यपण्यंवणिजे" (६-२-१३), "मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुसंके (६-२-१४), "राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेन्धकवृष्णिषु" (६-२-३४) कार्तकौजपादयश्च (६-२-३७) घोषादिषु च (६-२-८५) आदि अनेक सूत्रों में पाणिनि ने स्वरविषयक विवेचन किया है एवं उन सूत्रों में लौकिक उदाहरणों का प्रयोग किया है इससे स्पष्ट है कि पाणिनि के जमाने में सस्वरउच्चारण पद्धति विद्यमान थी ।[८६]

वैदिक व्याकरण हेतु प्रातिशाख्यों में उच्चारण विषयक निरूपण किया है पाणिनि ने उसका समावेश अपनी अष्टाध्यायी में किया नहीं है, अपितु संहिता के सन्दर्भ में उसका उचित प्रयोग किया है । वेद में स्वर के परिवर्तन से अर्थपरिवर्तन होता है, लौकिक प्रयोग में भी इसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई देता है । निम्न उदाहरणों से इस बात की पुष्टि होती है, यथा

स्पर्शः = स्पर्श करनेवाला (अच् प्रत्ययान्त कर्तृवाचक अन्तोदात्त नाम)

स्पर्शः = रोग, उष्मा (घ्यु प्रत्ययान्त धातुसाधित आद्युदात्त नाम)

गरः = विष (अप् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त नाम)

गरः = निगल जाना (अप् प्रत्ययान्त आद्युदात्त नाम)

क्षयः = नाश (अच् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त नाम)

क्षयः = निवास (ध प्रत्ययान्त आद्युदात्त नाम)

आशितः = भोजन के काम आनेवाला पदार्थ (क्त प्रत्ययान्त अन्तोदात्त विशेषण)

आशित : = खानेवाला (क्त प्रत्ययान्त आद्युदात्त कर्तृवाचक नाम)

पाणिनीय व्याकरण में सामान्य नियम वैदिक शब्द प्रक्रिया को लागु पडते हैं तथापि विशिष्ट वैदिक प्रयोगों को लक्षित करके 'छन्दसि' पद का प्रयोग विशेषरूपेण किया गया है अतः स्पष्ट है कि सूत्रस्थ प्रयोग भाषा में प्रयुक्त नहीं होते । यथा - "भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि" (६-१-८३) इस सूत्र में "भी" धातु को लगा यत् प्रत्यय "भय्य" शब्दप्रयोग एवं प्र उपसर्गपूर्वक "वी" धातुको

---

८४ अभ्यंकर म.म. काशीनाथ वासुदेव - व्या. म. प्र. ख. पृ. १८५.

८५. पा. अ. ४-२-७४ सूत्रस्थित काशिकावृत्ति

८६. अभ्यंकर म. म. काशीनाथ वासुदेव - व्या. म. प्र. ख. पृ. १८८.

लगा यत् प्रत्यय से "प्रवय्य" शब्द को निपातनयुक्त वेद में सिद्ध किया गया है, परन्तु लोक में "भेयः" प्रवेयः" शब्दप्रयोग निष्पन्न होता है ।

अष्टाध्यायी में "मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः" (३-३-९६) सूत्र द्वारा "वृष" 'पच्' 'मन' 'विद्' 'भू', 'वी' एवं 'रा' धातु को उदात्त क्तिन् प्रत्यय लगता है । इससे स्पष्ट है कि मन्त्र रहित ब्राह्मण ग्रंथों के प्रयोग में उक्त शब्द आद्युदात्त है ।[८७] यहाँ पाणिनि ने मंत्रो में प्रयुक्त शब्दों एवं ब्राह्मण ग्रंथो में तथा लौकिक व्यवहार में प्रयुक्त शब्दों के स्वरों के बीच अन्तर को स्पष्ट करने के लिये पाणिनि "मन्त्रे" शब्द का प्रयोग किया है ।[८८]

पाणिनि ने अपने सूत्रों में 'छन्दसि' शब्द का स्पष्ट उल्लेख करके एवं तद्वर्ती सूत्रों में 'छन्दसि' की अनुवृत्ति को अनुवर्तित करके वैदिक शब्द प्रयोगों को सार्थक किया है; यथा - "छन्दसि सह" (३-२-६३) सूत्र में निर्दिष्ट 'छन्दसि' शब्द 'वहश्च "कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्", "हव्येऽनन्तः पादम्", "जन सनखनक्रमगमोविट्" (३-२-६४-६७) इन चार सूत्रों में अनुवृत्त होता है ।

इसी तरह "छन्दसि लिट्" (३-२-१०५) सूत्रस्थ 'छन्दसि' पद - की अनुवृत्ति तदनुवर्ती लिट्ः कानज्वा, "क्वसुश्च", (३-२-१०६ - १०७) इन दो सूत्रों में आती है । परन्तु "भाषायां सदवसश्रुवः" (३-२-१०८) सूत्र में प्रयुक्त "भाषायां" शब्द ज्ञापित करता है कि इस सूत्र में 'छन्दसि' शब्द निवृत्त हुआ है।

डॉ पॉल थीमे (**Paul Theme**) ने अष्टाध्यायी सूत्रस्थ तैंतीस वेदविषयक सूत्रों को वैदिक ग्रंथो के संदर्भ में जाँच पडताल करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पाणिनि का वेद विषयक ज्ञान अद्भुत एवं आश्चर्यजनक था ।[८९]

इसी प्रकार से(Leopoldvon Schroeder (वॉन श्रोय्) ने भी यजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता का एवं काठक संहिता का पाणिनि को अगाध ज्ञान था यह साबित किया है।

(Louies Renou) 'लूईस रेनु' भी इसी बात की गवाही देते हैं कि कठशाखा विषयक वैदिक संहिताओं का पाणिनि को पर्याप्त परिचय था । "पॉलथिमे" (Paul Theme) के मतानुसार पाणिनि को ऋग्वेद संहिता, कृष्णयजर्वेद की तैतरीय संहिता, कपिष्ठल कठ संहिता काठक संहिता, मैत्रायणि

---

८७ Panini & the Veda : studies in the early history of lingvistic science.

८८ Dr. balasubramanyam M.D. : SKAPV pp. 253

८९ Dr. balasubramanyam M.D. : SKAPV pp. 254; 506

संहिता, सामदेव संहिता, अर्थववेद की (शौनक भिन्न) संहिता, हारिद्रविक एवं छागलेयी संहिता आदि का पाणिनि ने तलस्पर्शी अध्ययन किया था । इसके अलावा पाणिनि ने ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण, माध्यन्दिन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण एवं उपनिषदों की सम्पूर्ण जानकारी थी ।

यथा - "छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्य -

खन्य० .... (पा. अ. ३-१-१२३) सूत्रस्थ निपातन निम्न वैदिक ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं -

निष्टर्क्य (तै. सं. ६-१-७२)	देवयज्या (अै. ब्रा० २.२०)
देवहूय (ऋ सं. ७-८५-२)	आपृच्छय(जै, ब्र. १-२४६)
प्रणीय (मै. सं ३-९-१)	प्रतिषीव्य-
उच्छिष्य (जै. ब्रा १०-३-५७)	ब्रह्मवाद्य (जै. उप० ३.२.३.२)
मर्य (तै. सं. ४.६.७.३)	भाव्य (अथ० सं. १.१३.१४)
स्तर्या (शत. ब्रा० २-२-२-१०)	स्ताव्य - -
अध्वर्य (तै. सं. ४-६-३-३)	उपचाय्य (काठ. सं. ११.१)
खन्य (तै. सं. ७-४-१३.१)	पृड -
खान्य -	

जिनका स्वरभार पाणिनीय सूत्रों में अनुपलब्ध है ऐसे 5% (पाँच प्रतिशत) शब्द ही वैदिक ग्रंथो में मिलते होंगे ।

पाणिनि का स्वरविषयक ज्ञान वैदिक स्वर से अत्यधिक प्रभावित था इस विषय में कोई सन्देह नहीं है । पाणिनि ने "उच्चैरुदात्तः" [९०] सूत्र से लेकर "उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः" [९१] तक के बारह सूत्रों में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, एकश्रुति एवं सन्नतर आदि स्वरों की चर्चा की है । "यज्ञकर्मण्यजपन्यूंखसामसु" (१-२-३४) सूत्र में यज्ञकर्म में, उपांशु प्रयोग में अकरणमंत्रों में न्यूंख एवं सामगान प्रयोग में एक श्रुति पाठ का विधान करते हैं । "विभाषा छन्दसि" (१-२-३६) सूत्रों द्वारा पाणिनि जताते हैं कि वेदपाठ सस्वर भी किया जाता सकता है एवं एकश्रुति भी ।

"स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम्" (१-२-३९) सूत्र में पाणिनि ने स्पष्ट

९० पा. अ. १-२-२९

९१ वहीं १-२-४०

निर्देश किया है कि - संहिता पाठ में स्वरित के पश्चात् आनेवाले अनुदातों का उच्चारण एकश्रुति में होता है । यथा - ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधाघृतस्पृशा [९२]

इस मन्त्र में स्वरित 'न'के पश्चात् सभी मन्त्र अक्षरों में एकश्रुति है । इसी प्रकार ''इमं' मे गंगे यमुने सरस्वती'' इस मंत्र में स्वरित 'में' के पश्चात् सभी अक्षरोमें एकश्रुति पाठ मिलता है ।

इसके सिवा पाणिनि प्रयुक्त आग्रायण, आर्चिक, औक्थिक, उपहव, क्रमक, पदक, चर्चा, संस्तव, श्रोत्रिय आदि शब्दों से प्रतीत होता है कि उनको वेद विषयक ज्ञान प्रत्यक्षरूपेण था ।

डॉ बालासुब्रह्मण्यम् के मत से अष्टाध्यायी के सूक्ष्म अभ्यास से प्रतीत होता है कि पाणिनि को वैदिक स्वरभार की पद्धति का सम्पूर्ण ज्ञान था । एतदर्थ जहाँ ''छन्दसि'' जैसे शब्दों का पाणिनि ने प्रयोग नहीं किया ऐसे सामान्य प्रक्रिया वाले सूत्रो में भी पाणिनि का वैदग्ध्य प्रेक्षणीय है[९३]

(१) ''अवे यजः''[९४] सूत्र में अव के उपपद में रहने पर 'यज्' धातु से मंत्र विषय में ण्विन् प्रत्यय लगता है । यथा - ''त्वं यज्ञेवरुणस्यावयाअसि'' ।[९५] मंत्रस्थ 'अवया' पद ''गतिकारकोपपदात् कृत्'' (६-२-१३९) सूत्रानुसार प्रकृतिस्वरयुक्त अन्तोदात्त बनता है ।

(२) पाणिनीय ''वृषादीनां च'' (६-१-२०३) अनुसार वृषादि गण के शब्दों में आदिस्वर उदात्त होता है । इन सभी शब्दों में ''नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः (३-१-१३४) सूत्रानुसार अच् प्रत्यय लगता है । ''प्रेरभसो मनीषा वृषा गावे इवेरते'' [९६] यहाँ 'वृषा' शब्द स्वरित होना चाहिये परन्तु पाणिनि के ''वृषादीनां च'' सूत्र के सामान्य नियमानुसार आद्युदात्त होता है ।

(३) पाणिनीय ''क्षयो निवासे'' (६-१-२०१) सूत्रानुसार निवास के अर्थ में 'क्षय' शब्द आद्युदात्त होता है ।ऋग्वेद के रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः[९७]

---

९२ ऋ. सं. १-२-८

९३ Dr. balasubramanyam M.D. : SKAPV p. VIII IX.

९४ पा. अ. (३-२-७२)

९५ का. सं. ३५.१२ कपि का सं. ४८.१२)

९६ अर्थव सं. २०-१२७ ५.

९७. ऋ. सं. १.१४४.७.

मंत्र में 'क्षि' धातु से क्षय शब्द बनता है । "पुंसि संज्ञायां घ प्रायेण" (पा. अ. ३-३-११८) सूत्रानुसार 'घ' प्रत्यय के विधान से प्रत्ययस्वर होना चाहिये परन्तु उक्त सूत्र से प्रकृति स्वर होता है । विनाश के अर्थ में 'क्षय' शब्द भाषा में प्रयुक्त होता है ।

इस प्रकार से विभिन्न विद्वानों के विचारों से सहमत होते हुए हमारा भी यही अभिप्राय है कि पाणिनीय व्याकरण में लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के शब्द विषयक सूत्र पाये जाते हैं । लौकिक शब्द विषयक सूत्रों के निदर्शन में कही भी पाणिनि ने वैदिक शब्दविषयक सूत्रो की अवहेलना नहीं की । हमारे विचार से पाणिनीय वैदिक शब्दविषयक सूत्र व्याकरण शास्त्र के पुरस्कर्ता के रूप में पाणिनि का महत्व और भी बढा देते है । पुनश्च "पोल थिमे" (Paul Theme) के मत से हम सहमत हैं कि अष्टाध्यायीस्थित वैदिक शब्दप्रयोग का लोक व्यवहार में काफी हद तक प्रभाव था, और पाणिनि ने उसके महत्त्व को अक्षुण्ण रूपेण प्रस्थापित किया यह पाणिनि की महान सिद्धि है । हम तो यहाँ तक कहने के लिये तैयार हैं कि यदि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी सिर्फ वैदिक सूत्रों का ही ग्रहण किया होता तो भी वे उतने ही महान माने जाते जितने आज माने जाते हैं ।

अष्टाध्यायी से सम्बद्ध अन्य उपकारक ग्रंथ

निस्सन्देह अष्टाध्यायी व्याकरण शास्त्र का महान ग्रंथ है, किन्तु सिर्फ अष्टाध्यायी के अध्ययन से कोई भी शिक्षार्थी व्याकरण शास्त्र का सम्पूर्ण ज्ञाता नहीं बन सकता । व्याकरणशास्त्र में पारंगत बनने हेतु उसे धातुपाठ, गणपाठ, परिभाषा सूत्र, उणादिसूत्र तथा फिट् सूत्रों का ज्ञान आवश्यक है । वैसे भी जब तक इन पर विचार न किया जाय तब तक पाणिनि का सही मूल्यांकन भी संभवित नही है । अतःक्रमशः संक्षेप से इस विषय में विचार करेंगे ।

धातुपाठ : - पाणिनीय व्याकरण व्यवस्था में धातुपाठ का भी अष्टाध्यायीवत् महत्त्वपूर्ण स्थान है । धातुपाठ पाणिनि रचित है ऐसा विद्वानों का सर्वस्वीकृत मत है । तथापि पावटे, बिर्वे तथा न्यासकार जिन्द्रबुद्धि ने इसे अपाणिनीय ठहराने का प्रयत्न किया है ।

वैसे देखा जाय तो पाणिनि से पूर्व भी व्याकरणशास्त्र में धातुपाठ की परम्परा विद्यमान थी । "सर्वानिनामान्यारव्यातजानि" इस सूत्र को सर्व प्रथम कहनेवाले मुनि शाक्टायनने भी धातुपाठ लिखा होगा । आपिशिलि के धातुपाठ के विषय में जिनेन्द्रबुद्धि ने न्यास में पर्याप्त उदाहरण दिये है । यथा

"सकारमात्रमस्तिधातुमापिशलिराचार्यः प्रतिजानीते । तथाहि न तस्य पाणिनेरिव" अस भुवि इति गणपाठः । किं तर्हि ? "स भुवि" इति पठति ।[९८] इसे स्पष्ट करते हुअे पदमंजरीकार हरदत्त कहता है कि "अस्" तथा 'आस्' धातु की जगह आपशिलि ने 'स' धातु का ग्रहण किया है एवं अट् आट् के आगम द्वारा अपना कार्य निष्पन्न किया है । स्कन्द स्वामी भी आपशिलि धातुपाठ का अस्तित्व स्वीकारते हैं ।

काशकृत्स्न का धातुपाठ कातन्त्र धातुपाठ में अनुकृत हुआ है एवं पाणिनि का धातुपाठ चान्द्र व्याकरण में अनुकृत हुआ है । चारों आचार्यो के धातुपाठ की तुलना से यह स्पष्ट होता है । यद्यपि पाणिनिसे पूर्व अन्य धातुपाठोंका अस्तित्त्व था तथापि पाणिनीय शास्त्र में उनका अपना धातुपाठ एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । श्री मीमांसकजी इस विषय में कहते हैं -

"सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में आचार्य पाणिनि का शब्दानुशासन ही एकमात्र ऐसा आर्षतन्त्र है, जो अपने पाँचो अवयवों सहित उपलब्ध है ।[९९] अष्टाध्यायी की तरह धातुपाठ के रचयिता भी पाणिनि थे इस विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं, यथा -

(१) पाणिनिने "शमामष्टानां दीर्घः श्यनि" (७-३-७४), "किरश्च पंचभ्यः" (७-२-७५), पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु (३-१-५५) इत्यादि अनेक सूत्रों में धातुपाठ के अन्तर्गत धात्वनुपूर्वी को ध्यान में रखकर तत्तत् कार्यो का विधान किया है । इसीप्रकार से धातुपाठस्थ धात्वनुबन्धों द्वारा अष्टाध्यायी में पाणिनि ने अनेक कार्यो को निष्पन्न किया है । यथा -

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१-३-११), स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (१-३-७२) ड्वितः क्त्रिः (३-३-८८), ट्वितोऽथुच् (३-३-८९) आदि सूत्रपाठों से स्पष्ट है कि सूत्रपाठों की रचना से पूर्व पाणिनिने अवश्य ही धातुपाठ का भी पठन किया होगा ।

(२) अथवा आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति - "नैवं जातीयकानामिद्विधिर्भवतीति, यदयमिरितः कांश्चिन्नुमनुषक्तान् पठति- "उबुन्दिर् निशामने, स्कन्दिर् गतिशोषनयोः ।[१००]

---

९८ जिनेन्द्रबुद्धि - न्यास १-३-२२ की व्याख्या

९९. श्री युधिष्ठिर मीमांसक - सं. व्या. शा. इति० भा० २ पृ० ३९.

१०० व्या. महा० १-३-७.

(अर्थात् आचार्य की प्रवृति सूचित करती है कि इस प्रकार की धातुओं में इकार की इत् संज्ञा नहीं होती, अत एव वह किन्हीं इरित् धातुओं को नुम्युक्त पढता है । यथा 'उबुन्दिर्' स्कन्दिर्)

यहाँ भाष्यकार को आचार्य पद से पाणिनि का ही सूचन अभिप्रेत है। तथा नुम्युक्त उबुन्दिर, स्कन्दिर् आदि धातुओं को पढ़ता है, यह सूचित करता है कि पाणिनि ने धातुपाठ की रचना की थी ।

(३) "मृजिरस्मायविशेषेणोपदिष्टः" [१०१] अर्थात् "मृज्" धातु का सामान्यरूप से उपदेश किया है ।

इस पर व्याख्याकार "पायगुण्ड" लिखता है - "पाणिनिना प्रत्यय विशेषानाश्रयेण" "मृजूष शुद्धौ" इति धातुपाठ उपदिष्ट इत्यर्थः ।

अर्थात् पाणिनि ने किसी प्रत्यय विशेष का आश्रयण न करके "मृजूष्शुद्धौ" धातु का धातुपाठ में उपदेश किया है ।

(४) पदमंजरी कार हरदत्त लिखता है कि - "यत्राचार्याः स्मरन्ति तत्रैव सूत्रकारेण तावद्विवक्षिताः सर्वेऽनुनासिकाः पठिताः" "डुलभष्प्राप्तौ" इतिवत् । [१०२] लेखकैस्तु संकीर्ण पठिता ।

अर्थात् जहाँ व्यारव्याता अनुनासिक मानते हैं वहीं सूत्रकारने सारे अनुनासिक "डुलभँष् प्राप्तौ" के समान पढ़े हैं । किन्तु लेखकोने अनुनासिक रहित धातुओं के साथ सानुनासिक धातुओं को भी निरनुनासिक धातु के रूपमें पढ दिया ॥

(५) "भूवादयो धातवः" (१-३-१) सूत्र के विधान द्वारा भी यही अभिप्रेत होता है कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी से पूर्व ऐसे कोई धातुपाठ की रचना की थी जिसमें 'भू,' 'वा' आदि धातुओं का समावेश हुआ हो ।

(६) इसीप्रकार से जिनेन्द्रबुद्धि भी धातुपाठ को पाणिनि का रचा हुआ ही मानते हैं, यथा - "धू विधूनने" तृप प्रीणन इति निपातनादनयोर्नृग्-भवति। [१०३]

(७) काशिका के रचयिता वामन लिखते हैं कि -

"कथमुद्यमोपरमौ ? अड उद्यमे, यम उपरमे इति निपातनादनुगन्तव्यौ" [१०४]

१०१ व्या. महा० १-१-१.

१०२ हरदत्त - पदमंजरी भा १ पृ. २१४.

१०३ जिनेन्द्रबुद्धि - न्यास २. पृ. ७९२

इससे भी स्पष्ट है कि काशिकाकार मानते हैं कि धातुपाठ के रचयिता पाणिनि हैं ।

(८) क्षीरतरंगिणी के रचयिता भी यही बात सिद्ध करते हैं कि धातुपाठ के रचयिता पाणिनि हैं । [१०४]

कुछ अभ्यासीयों ने धातुपाठ के "लघु" एवं "बृहद्" संस्करणों की कल्पना की है । मूल धातुएँ लघुपाठमें एवं अर्थयुक्त धातुएँ बृहद् पाठ में गिनायी जा सकती है । पाणिनि ने धातुपाठ में मूल धातुओं को ही पढ़ा था या अर्थयुक्त धातुओं को इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है । कैयट [१०५], नागेश [१०६], भट्टोजी दीक्षित [१०७] आदि विद्वान मानते हैं कि पाणिनि ने अर्थरहित मूल धातुओं का ही प्ररिगणन किया था । महाभाष्यकार पतञ्जलि भी (महा० ३-१-८, ३-१-११, ३-१-१९) में कहते हैं कि - "न ह्यर्था आदिश्यन्ते क्रियावचनता च गम्यते ।" इससे प्रतीत होता है कि पाणिनि ने धातुओं को मूल रूप में ही पढ़ा था ।

दूसरी ओर काशिका, न्यास, श्रीरंगतरंगिणी काव्यालंकार के लेखक उतनी ही मजबूत दलिल करते हुअे कहते हैं कि पाणिनिने अर्थनिर्देश के साथी ही धातुएँ पढ़ी थी ।

(१) पदमंजरीकार हरदत्त धात्वर्थनिर्देश को पाणिनीय मानते हुअे कहता है - "येषां त्वपाणिनीयोऽर्थ निर्देश इति पक्षः" (भा. २ पृ. ८१३) यहाँ "येषां" पद ये स्पष्ट है कि हरदत्त अपाणिनीय पक्ष से सहमत नहीं है ।

(२) पाणिनीय धातुपाठ में कई धातुएँ दोबार पढ़ी हुई प्राप्त होती है यथा - "किट खिट त्रासे" एवं "किट कटी गतौ" इसी प्रकार से "हुडि संघाते" एवं "हुडि वरणे" यदि पाणिनि धातुएँ मूल रूपमें ही पढी होती तो किट एवं हुडि धातुओं को दो बार पढ़ने का कोई प्रयोजन नहीं था, दो बार पढ़ने का प्रयोजन यही सिद्ध करता है कि पाणिनने सार्थ धातुएँ पढ़ी थी ।

(३) महाभाष्य (१-३-७) में भी पतंजलि अनेक सार्थ धातुओं का ही

---

१०४ क्षीरस्वामी क्षिरतरंगिणी ६.१६. व्यजीकरणे लिंगाद् घञि कुत्वाभावः व्याजः ।

१०५ व्या. महा० कैयट - १.३.१ न चार्थपाठः परिच्छेदकः तस्या पाणिनीयत्वादभियुक्तैरुपलक्षणतयोक्तत्वादिति ।

१०६ अ. व्या महा० नागेश - १.३.१. भीमसेनेनेत्यैतिह्यम् ।

१०६ २.१.१. पचादीनामर्थरहितानामेव पाठात् ।

१०७ अ भट्टोजी दीक्षित - शब्दकौस्तुभ १.३.१ न या प्रापणे इत्याद्यर्थनिर्देशो नियामक तस्यापाणिनियत्वात्

निर्देश करते हैं यथा-"अथवा आचार्य प्रवृत्तिर्ज्ञापयति नैवंजातीय--कानामिदिद्विधिर्भवतीति यदयमिरितः कांश्चिन्नुमनुषक्तान् पठति । उबुन्दिर निशामने स्कन्दिर्गतिशोषनयोः ॥"

इससे स्पष्ट है कि भाष्यकार भी मानते हैं कि पाणिनि ने सार्थधातुओं का ही परिगणन किया हे ।

श्री मीमांसक जी कहते हैं कि - "यद्यपि नागेशभट्ट, भट्टोजीदीक्षित, धातुप्रदीपकार मैत्रेय दीक्षित, सिद्धसेन गणी आदि अर्वाचीन विद्वानों के वचनों से प्रतीत होता है कि धात्वर्थ निर्देश भीमसेन प्रोक्त है तथापि पूर्व है । निर्दिष्ट सुदृढ प्रमाणों से यह भी सिद्ध होता है कि धात्वर्थ निर्देश पाणिनीय है श्री मीमांसक जी का विचार है कि भीमसेन नामक कोई वैयाकरण पाणिनीय धातुपाठ का व्यारव्याता था संभव है इसीकारण से कोई भ्रान्ति हो गई होगी ॥ [१०८]

डॉ. जयदेव शुक्ल भी धातुपाठ को सार्थ स्वीकारने की जगह मूल स्वीकारने के पक्ष में ज्यादा दिख पड़ते हैं । [१०९]

हमारे विचार से पाणिनि ने सार्थ धातुओं का ही परिगणन किया था । अर्थरहित धातुओं का ग्रहण करने का कोई प्रयोजन ही नहीं बनता । अनेक दिक्कतें उपस्थित हो सकती हैं । किस धातुका किस अर्थ में प्रयोग होता है यदि यही पता नहीं चलता तो धातुपाठ अपना मतलब ही नहीं रखता ।

(२) गणपाठ -

पंचांगी व्याकरण परंपरा में सूत्रपाठ तथा धातुपाठ के अनन्तर गणपाठ का भी महत्त्वपूर्णस्थान है । ध्वनिविचार, व्याकरण एवं शब्दार्थ संबंध के विषय में पाणिनि ने व्यवस्थित नियम बनाये हैं । कुछ नियमों को उन्होंने लाघव से प्रदर्शित किया है । इस लाघवता को सिद्ध करने के लिये उन्होंने कुछ सूत्रों में शब्दों के समूह को प्रदर्शित करने हेतु गणों का आयोजन किया है। यथा - "सर्वादीनि सर्वनामानि" (१-१-२७) इस सूत्र द्वारा सर्वादि गणमें सर्व, विश्व, उभय, डतम, डतर, कतर, कतम आदि शब्दों का परिगणन करके सर्वनाम संज्ञा का कार्य सम्पन्न किया है । यदि गणपाठ की रचना न की होती तो इन प्रत्येक शब्दों के लिये अलग अलग सूत्रोंका विधान करना पडता । किन्तु

---

१०७ ब १.२.२७ तितिक्षा ग्रहणं ज्ञापकं भीमसेनादिकृतोर्थनिर्देशः उदाहरणम् ।

१०८ मीमांसक युधिष्ठिर - सं. व्या. शा. इति० भा. २ पृ. ६२.

१०९ Dr. Jaydev Shukla - H.P.S.S.G. p. 138 (गुजराती आवृत्ति)

गणपाठ का आश्रयण करके पाणिनि ने लाघवता का परिचय दिया है ।

व्याकरण शास्त्र में पाणिनि से पूर्व अनेक आचार्यों ने गणपाठोंकी रचनाएँ की थी उनमें भागुरि, शन्तनु, काशकृत्स्न, आपिशलि आदि मुख्य हैं । काशकृत्स्न एवं आपिशलि आचार्यो के गणपाठ के विषय में प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं।

पाणिनीय गणपाठ में कतिपय ऐसे भी अंश हैं जिनसे प्रतीत होता है कि पाणिनि ने उन अंशों को अपने से पूर्ववर्ती किन्हीं गणपाठों से उसी रूपमें ग्रहण किया है । यथा –

वाजासे (४-१-१०५) वस्कयासे (४-१-८६)

राजासे (५-१-१२८) हृदयासे (५-१-१३०)

इन गण शब्दों में 'असे' शब्द से असमासे का निर्देश है । पाणिनीय शब्दानुशासन में कहीं भी असमास के लिये 'असे' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नही होता । असे प्रत्ययान्त शब्द ऋक्तन्त्र की पद्धति पर आधारित है, जिसे पाणिनि ने अविकलरूप में ग्रहण किया है ।

न्यास के रचयिता जिनेन्द्रबुद्धि गणपाठ को अपाणिनीय मानते हैं, वे लिखते हैं कि – अपाणिनीयत्वाद् गणस्य नैवं चाकरणे पाणिनिरूपालम्भमर्हति ।[११०]

आचार्य पावटे भी मानते हैं कि "पाणिनि ने गणपाठ एवं धातुपाठ दोनों को पूर्वाचार्यों से प्राप्त किया था ।" [१११]

जिनेन्द्रबुद्धि को छोड़कर प्रायः सभी आचार्यो का विचार है कि अष्टाध्यायी से सम्बद्ध पाणिनि का अपना गणपाठ था । क्योंकि गणशैली को अपनानेवाला कोई भी वैयाकरण बिना गणपाठ रचे शब्दानुशासन का प्रवचन नहीं कर सकता । पाणिनि ने अष्टाध्यायी में अनेक सूत्रों में गणशैली का आश्रयण लिया है अतः स्पष्ट है कि अष्टाध्यायी की रचना से पूर्व गणसम्बद्ध सूत्रों का विचार उनके मनमें अवश्य था ।

भाष्यकार ने **आचार्यः** एवं **ज्ञापयति** शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर पाणिनि के लिये किया है । गणपाठ से सम्बद्ध अनेक स्थलों पर भी वे **आचार्य** एवं **ज्ञापयति** शब्द का प्रयोग करते हें । [११२] इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे पाणिनि को गणपाठ का प्रवक्ता मानते हैं ।

---

११० जिनेन्द्रबुद्धि - न्यास ४-१-१०६, ५.३.२, ४.४.१०.

१११ Dr. Pavate - The structure of Asthadhyayi p. 91

११२ व्या. महा० २.१.१., १.१.२२., ८.३.११०. आदि

वाजासे, राजासे आदि प्रयोग पाणिनि के न होकर ''ऋक्तन्त्र'' के हैं । इससे यहीं समझना चाहिये कि पाणिनि ने पूर्वाचार्यो के ऋण को स्वीकार करते हुअे कहीं अल्प रूप में कहीं पूर्णरूप में कहीं परिवर्धन करके उचित सामग्री को अपने गणपाठ में अपना ली हैं । इससे यह सिद्‌ध नहीं होता कि पाणिनि ने स्वशब्दानुशासन के अनुरूप गणपाठ नहीं पढ़ा । श्री कपिलदेव शास्त्री एवं युधिष्ठिर मीमांसक पाणिनीय गणपाठ को दो विभाग में बाटते हैं । यथा -

(१) जिनमें शब्द नियमित हैं ऐसे गण यथा सर्वादिगण.....।

(२) दूसरे प्रकार के वे गण हैं जिनमें शब्दों की संख्या नियत नहीं हैं, अन्य शब्दों से भी उक्त गण का कार्य होता है उन्हें आकृति गण कह सकते हैं । गणों में तथा आकृति गणों में भेद हेतु 'वृत्' शब्द का पठन अन्त में आवश्यक है । ''अवृत्करणाद् आकृति गणोऽयम् '' । [११३]

(३) परिभाषासूत्र : -

पाणिनीय व्याकरण परंपरा में पारिभाषिक संज्ञाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के कुछ सूत्र पारिभाषिक के रूप में मानने की परंपरा कात्यायन के समय से प्रचलित है ।

परिभाषा की व्याख्या - (१) परिभाषा की व्याख्या देते हुअे जयादित्य कहते हैं - ''परिभाषेयं स्थानिनियमार्थाः अनियमप्रसंगे नियमो विधीयते''। [११४]

(२) स्वामी दयानंद सरस्वती परिभाषा की व्याख्या देते हुअे कहते हैं - [११५]

''परितो व्यापृतां भाषां परिभाषां प्रचक्षते ।''

(३) भाष्यकार पतंजलि परिभाषा की व्याख्या स्पष्ट करते हुअे कहते हैं - [११६] ''परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत् । तद्यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः एकदेशस्थः सर्वं वेश्माभिज्वलयति ।''

परिभाषाओं के कर्ता के बारे में भी विवाद है । पाणिनि से पूर्व भी परिभाषाएँ विद्यमान थी । श्री गोल्डस्टुकरने [११७] इस विषय में काफी विशद

११३ का० - २.१.४८.

११४ का० - १.१.३.

११५ दयानंद सरस्वती - पारिभाषिक भूमिका

११६ व्या. महा० २.१.१.

११७ Goldstructure - The panini p. 117-130

विचारणा की है । उन्होंने ही सर्वप्रथम संज्ञा सूत्र, परिभाषा सूत्र, परिभाषा एवं ज्ञापक में परस्पर अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । प्राचीन वैयाकरणों के सूत्रपाठों में परिभाषाओं का मूल देखा जा सकता है ।

श्री सीरदेव परिभाषाओं को पाणिनि प्रोक्त न मानते हुअे अनेक आचार्यो द्वारा प्रोक्त मानते हैं ।[११८]

श्री पुरुषोत्तमदेव भी परिभाषाओं को पाणिनीय न मानकर अनेक आचार्यो द्वारा प्रोक्त ही मानते हैं ।

कैयट (६-२-४९), हरदत्त (पद भा. १ पृ. ४०३) तथा सायण भी परिभाषाओं को पूर्वाचार्यों का ही वचन कहता है ।

श्री मीमांसकजी परिभाषाओं का द्विविधरूप स्वीकारते हैं (१) सूत्ररूपमें पठित (२) सूत्र आदि से ज्ञापित ।

नागेश ने "पारिभाषेन्दुशेखर" में परिभाषाओं का त्रिधा विभाजन किया है -

(१) ज्ञापकसिद्ध (२) न्यायसिद्ध (३) वाचनिकी

व्याकरणशास्त्र में परिभाषासूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान होने से कालान्तर में कुछ परिभाषाएँ ऐसी भी संकलित होती गई जिन्हें परंपरागत नहीं कहा जा सकता । चान्द्र, कातन्त्र, हैम, भोज आदि वैयाकरणोंने भी पाणिनि एवं पूर्वाचार्यो की परिभाषाओं के आधारपर ही अपनी परिभाषाएँ बनायी हैं ।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में ऐसे ४६ सूत्र पढ़े हैं जिन्हें हम परिभाषासूत्र कह सकते हैं । जिनके द्वारा पाणिनि ने परिभाषाविषयक कार्य सम्पन्न किया है । श्री जयदेव शुक्ल ने काफी विस्तारपूर्वक विवेचन करके परिभाषासूत्रों को विविध विभागों में बाटने की कोशिश की है ।[११९]

जहाँ तक पाणिनि का परिभाषाओं के साथ सम्बन्ध है महाभाष्य में जितनी भी परिभाषाएँ मिलती है उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि भले ही वे पाणिनि प्रोक्त न हो पाणिनि सम्मत जरूर थी ।

श्री मीमांसक जी परिभाषाओं को पाणिनि प्रोक्त मानने में आपत्ति नहीं देखते । इस विषय में वे प्रमाण देते हैं कि -

---

११८ परिभाषावृत्ति पृ. १८६ परिभाषाहि नाम न साक्षात् पाणिनीय वचनानि किं तर्हि ? नानाचार्याणाम् ।

११९ Dr. Jaydev Shukla - H.P.S.S.G. p. 98-107

"पठिष्यति ह्याचार्य : सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेवेति ।" उनके विचार से यहाँ आचार्य शब्द पाणिनि के लिये प्रयुक्त हुआ है । नागेश का विचार है कि यहाँ आचार्य पद वार्तिककार कात्यायन के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

पाणिनीय परिभाषाओं का मूल आधार "व्याडि" की अपने तन्त्र से सम्बद्ध परिभाषाएँ हैं । क्योकि परिभाषा पाठ के द्वितीय पाठ की अन्तिम पंक्ति - "इति व्याडि विरचिता पाणिनीय परिभाषा: समाप्ता: ।" इससे स्पष्ट है कि मूल परिभाषाओं के प्रवक्ता व्याडि आदि आचार्य रहे होंगे । पाणिनि ने यथासम्बद्ध परिभाषाओं का सूत्ररूपेण, परिभाषारूपेण स्वीकार किया है ।

(४) उणादिकोश :-

पाणिनीय व्याकरण व्यवस्था के लिये उपकारक उणादिसूत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है । "उणादयो बहुलम्" (३-३-१) "ताभ्यामन्यत्रोणादय:" (३-४-७५) आदि सूत्रों में उणादि प्रत्ययों का पाणिनि ने उल्लेख किया है । उणादिसूत्रों की रचना पाणिनीय व्याकरण पर आधारित होते हुअे भी बहुत से विद्वानों का अभिप्राय है कि उणादिसूत्र प्राक्पाणिनीय है, इसके विरुद्ध कुछ विद्वान उणादिसूत्रों को पाणिनि से पश्चादवर्ती मानते हैं ।

उणादि सूत्रों का महत्त्व - अत्यंत प्राचीन काल में संस्कृतभाषा के सभी शब्द यौगिक माने जाते थे । इसीलिये शाकटायन, पाणिनि तथा नैरुक्तों में गार्ग्यसे भिन्न सभी आचार्य शब्दों को धातुज यानी कि यौगिक मानते थे । इसीलिए उणादि प्रत्ययों का कृदन्त प्रकरण के अन्तर्गत ही समावेश होता था ।

शाकटायन के सिवा प्राय: सभी वैयाकरण शब्दों को रूढ मानते थे अत एव उत्तरकाल में शब्दानुशासनमें से उणादिसूत्ररूपी कृदन्तभाग को पृथक् करके उसे खिलपाठ में पढा गया । किन्तु उणादिसूत्रों को खिलपाठ में या परिशिष्ट में पढ़ देने से उसका मूल्य किसी भी प्रकार से कम नहीं हो जाता ।

कोई भी शब्दानुशासन चाहे कितना भी विशाल क्यों न हो वह अनन्त शब्दराशियुक्त शब्दों का संग्राहक नहीं बन सकता । सभी वैयाकरणों के शब्दानुशासन चाहे वे कितने भी विस्तृत क्यों न हो निदर्शक मात्र ही हो सकते हैं । उणादिसूत्रों में भी प्रकृतिप्रत्यय निदर्शन मात्र के ही परिचायक हैं ।

उणादि सूत्रों का महत्त्व समझाते हुए भाष्यकार पतंजलि कहते हैं -

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषां
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढि भवं हि सुसाधु ।
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकं
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥
कार्याद्विद्यादनूबन्धम्...... ॥ [१२०]

अर्थात् – "बहुल" शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि एक तो इन शब्दों की "प्रकृति" ही बहुत कम पता चल पाती है, तथा उणादि प्रत्ययों का प्रयोग भी बहुत ही कम होता है । कहीं कही तो कल्पना का आधार लेना पडता है । सूत्रकार ने इस प्रकार की व्यवस्था का आश्रय इसलिये लिया है कि वेद में पठित रूढ शब्दों का साधुत्व ज्ञात हो जाए । नैरुक्तों में गार्ग्यको छोडकर सभी ने नाम शब्दों को यौगिक कहा है ऐसा वैयाकरणों में शाकटायन का मत है । अतः जहाँ प्रकृति का पता नहीं चलता वहाँ प्रत्यय के आधार पर प्रकृति की कल्पना करनी चाहिये एवं प्रकृति के आधार पर प्रत्यय की। अतः यह सिद्ध है कि-

अर्थका परिज्ञान करने के लिये सामान्य नियमों को असमर्थ पाकर ही प्रकृति की कल्पना के लिये ही उणादिसूत्रों की प्रारंभ में रचना की गई ।

पंचपादी या दशपादी :-

वर्तमान समय में जितने भी उणादि सूत्र उपलब्ध होते हैं उनमें पंचापादी या दशपादी उणादि सूत्र ही प्राचीन है । इन दोनों उणादि सूत्रों में कौनसा उणादि सूत्र पाणिनीय सम्मत है इस विषय में विद्वानों में अलग अलग मत हैं ।

भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी के अन्तर्गत पंचपादी उणादि सूत्रों की संक्षिप्त व्याख्या की है । तथा सिद्धधान्त कौमुदी के टीकाकारों में नागेश भट्ट, ज्ञानेन्द्रसरस्वती, रंगनाथ यज्वा आदि ने भी प्रसंगवश भट्टोजि दीक्षित का ही अनुसरण किया है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी पंचपादी उणादिपाठ पर ही व्याख्या लिखी है । जो उणादिकोश के नाम से "वैदिक यन्त्रणालय अजमेर" से प्रकाशित हुई है । इसीप्रकार से दशपादी उणादि पाठ भी पाणिनि प्रोक्त है उसे माननेवालों की संख्या भी कम नहीं है । विठ्ठल, वामन, हरदत्त,

---

१२० व्या. महा० ३-३-१.

क्षीरस्वामी, देवराज यज्वा आदि वैयाकरणों ने दशपादी उणादि सूत्रों का ही आश्रयण लिया है अतः उनकी दृष्टि से दशपादी उणादिपाठ ही पाणिनि सम्मत है ।

पाणिनि से पूर्व काशकृत्स्न, शन्तनु, आपिशलि आदि आचार्यों के भी उणादि पाठों के विषय में सामान्य माहिती मिलती है ।

श्री मीमांसकजी दशपादी उणादिपाठ को ही पाणिनि सम्मत मानते है । इस विषय में उन्होंने निम्नप्रमाण दिये है –

(१) महाभाष्य में "हयवरट्" सूत्र के विचार प्रसंग में एक प्राचीन सूत्र "जीवेरदानुक्" [१२१] जीरदानु दशपादी उणादि पाठ में ही उपलब्ध होता है । यह सूत्र पंचपादी पाठ में नहीं है ।

(२) वामनने "चतुर्थीतदर्थे" [१२२] सूत्र में यूप शब्द की सिद्धि के लिए "कुसुयुभ्यश्च" [१२३] सूत्र का आश्रयण लिया है जो दशपादी उणादि पाठ में मिलता है । पंचपादी में पाठभेद है ।

(३) काशिका (७-४-४८) में वार्तिक के "उषस्" शब्द की सिद्धि के लिये हरदत ने "वसेः कित्" (९-९४) सूत्र का आधार लिया है । पंचपादी में "उषः कित् सूत्र मिलता है ।"

(४) पाणिनीय अष्टाध्यायी में जहाँ पाणिनि को धातुमात्र से प्रत्यय इष्ट हो वहाँ वे प्रत्यय का ही निर्देश करते दिखाई देते हैं । "सर्वधातुभ्यः" ऐसा शब्दनिर्देश करते हुअे दिखाई नहीं देते । यथा अष्टाध्यामी में

ण्वुलतृचौ (३-१-१३३)	लुङ् (३-२-११०)
तृन् (३-२-१३५)	वर्तमाने लट् (३-२-१३३)

इसीप्रकार से दशपादी उणादि पाठ में भी 'सर्वधातु' आदि का प्रयोग किये बिना ही प्रत्यय मात्र का ही निर्देश किया गया हैं । यथा –

इन् (१-४६)	ष्ट्रन (८-७९)
असन् (९-४९)	मनिन् (६-७३)

जब कि पंचपादी उणादिपाठ में ये सूत्र निम्नप्रकार से प्राप्त हैं । यथा–

---

१२१ उ. पा. १-१६३.

१२२ का० वृ. ६-२-४३

१२३ उ. पा. ७-५.

'सर्वधातुभ्य इन्' (४-११७) सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् (४-१५८)
सर्वधातुभ्योऽसुन् (४-१८८) सर्वधातुभ्यो मनिन् (४-१४४)

इन प्रमाणों से स्पष्ट हैं कि दशपादी उणादिपाठ ही पाणिनि सम्मत है न कि पंचपादी ।

दशपादी उणादि पाठ को पाणिनि सम्मत न मानने में एक दलिल जरूर दी जा सकती है कि पाणिनि ने "उणादयो बहुलम्" [१२४] सूत्र में 'उण्' प्रत्ययका विधान किया है जब कि दशपादि उणादिसूत्र में "इन्" प्रत्यय से आरंभ होता है । दूसरी ओर पंचपादी उणादि का आरंभ "उण्" प्रत्यय से होता है जो "उणादयो बहुलम्" सूत्र से अधिक मेल खाता है ।

श्री मीमांसक जी तथा वर्माजी इसका सन्तोषकारक उत्तर नहीं दे पाते। मीमांसक जी का मन्तव्य इस विषय में वदतोव्याघात जैसा लगता है । वैसे वे पंचपादी उणादिकोष को आपिशलि प्रोक्त मानते हैं तथा दशपादी को पाणिनि प्रोक्त । तथापि आगे चलकर वे कहते हैं कि - "इसलिये यदि पंचपादी सूत्र आपिशलि प्रोक्त नहीं हो तो निश्चय ही ये प्राणिनि प्रोक्त होंगे ।" [१२५]

लिंगानुशासन : - "लिंगानुशासन" व्याकरण शास्त्र का एक अभिन्न अंग है । स्त्रीत्व, पुंस्त्व सम्बन्धी लिंग जिसप्रकार से प्राणिमात्र के साथ जुड़े हुए हैं, उसीप्रकार से स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि लिंग शब्दानुशासन का अविभाज्य अंग है । बिना उसके शब्दानुशासन अधूरा है ।

वैसे जितने भी प्राचीन वैयाकरणों ने शब्दानुशासन की रचना की होगी उनका अपना लिंगानुशासन किसी न किसी रूप में रहा होगा ही । किन्तु जब तक पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता ।

पाणिनि से पूर्व शन्तनु एवं व्याडि ने लिंगानुशासन का प्रवचन किया होगा। शन्तनु के लिंगानुशासन के विषय में हर्षवर्धनीय लिंगानुशासन के संपादक "वेंकटराम शर्मा" के (पृ.३४) के उल्लेखसे पुष्टि होती है । इससे ज्यादा इस विषय में कुछ भी प्राप्त नहीं होता ।

व्याडि - श्री हेमचन्द्राचार्य मानते हैं कि व्याडि का अपना लिंगानुशासन था । यथा -

(१) (शङ्कुः) प्रयोग - पुंसि व्याडिः, स्त्रियां वामनः, पुन्नपुंसकोऽयं इति बुद्धि सागरः । [१२६]

---

१२४ पा. अ. ३-३-१.

१२५ श्री मीमांसक युधिष्ठिरं - सं. व्या. शा. इति भा. २ पृ. १९५.

१२६ श्री हेमचन्द्राचार्य स्वोपज्ञ लिंगानुशासन विवरण पृ. १०३ पं. १४-१५.

(२) वामन अपने लिङ्गानुशासन के ३९ वें श्लोक में लिखता है -
"व्याडिप्रणीतमथ वाररुचं सचान्द्रं".....

(३) हर्षवर्धन भी अपने लिंगानुशासन के अन्त में पूर्वाचार्यों का निर्देश करते हुअे लिखता है -

"व्याडेः शंकरचन्द्रयोर्वररुचेर्विद्यानिधेः पाणिनेः" ॥ श्लो. ८७ ॥ इन प्रमाणों से सिद्ध है कि व्याडि ने किसी लिंगानुशासन का प्रवचन अवश्य किया था । व्याडि का लिंगानुशासन सूत्रबद्ध एवं अतिविस्तृत था । इससे अधिक उसके लिंगानुशासन के बारे में कुछ भी माहिती ज्ञात नहीं होती ।

पाणिनीय लिंगानुशासन - पाणिनि ने अपने व्याकरण से सम्बद्ध किसी लिंगानुशासन की रचना की थी, यह बात निर्विवाद साबित होती है । उनका लिंगानुशासन सूत्रात्मक था । किन्तु डॉ. कीथ का कहना है कि सम्प्रति पाणिनि के नाम से जो लिंगानुशासन प्राप्त होता है वह पाणिनि का नहीं है किन्तु किसी अर्वाचीन वैयाकरण का है और उसके साथ पाणिनि का नाम जोड दिया गया है ।[१२७] किन्तु कीथ का उक्त मन्तव्य हमें भ्रान्तिपूर्ण लगता है, सच तो यह है कि सभी अर्वाचीन वैयाकरण सम्प्रति उपलब्ध लिंगानुशासन को पाणिनि का ही मानते हैं ।

इस विषय में प्रमाण देते हुअे हरदत्त लिखता है कि -[१२८]

"अप्सुमनस्समासिकता वर्षाणां बहुत्वं चेति पाणिनीये सूत्रम् ।" कात्यायन तथा पतंजलि भी - "युष्मदस्मद्" के सम्बन्ध में "अलिङ्गे युष्मदस्मदी" अवशिष्टं लिङ्गं, अव्ययं कतियुष्मदस्मदः इन वचनों से तुलना करने से ज्ञात होता है कि ये दोनों आचार्य पाणिनीय लिंगानुशासन से परिचित थे।

इतः स्पष्ट है कि वर्तमान समय में जो लिंगानुशासन उपलब्ध है वह पाणिनि का है अन्य किसी का नहीं ।

२. शान्तनव

आचार्य शान्तनव के विषय में विशेष माहिती प्राप्त नहीं होती । उनका प्रवचन किया हुआ शब्दानुशासन सम्प्रति अनुपलब्ध है, फिर भी उनके द्वारा रचित "फिट् सूत्र" उसी व्याकरण शास्त्र के एकदेश के रूप में उपलब्ध होते हैं । अतएव ये सूत्र शान्तनव सूत्र कहाते हैं । श्री मीमांसक जी इस शान्तनव

---

१२७ Dr. Kieth AB - The Panini (हिन्दी अनु० पृ. ५१३)
१२८ हरदत्त - पदमंजरी - भा. २ पृ. २२.

आचार्य को भीष्मपितामह के पिता शन्तनु से अभिन्न मानते हैं ।[१२९] किन्तु इस विषय में ठौस प्रमाण न मिले तब तक नाम सादृश्य से कल्पना कर लेना अनुचित होगा ऐसा हमारा विचार है ।

फिट् सूत्र के रचयिता शन्तनु ही है इस विषय में हरदत्त कहते हैं कि – "स पुनः शन्तनुप्रणीतः फिष् इत्यादिकम्" [१३०]

आचार्य नागेश भट्ट भी लिखते हैं – "शन्तनुराचार्यः प्रणेतेति द्वारादीनां चेति सूत्रे हरदत्तः ।"

इससे स्पष्ट है कि शन्तनु आचार्य के फिट् सूत्र पाणिनि द्वारा समादृत थे ।

फिट्सूत्रों की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुअे देवस्थली कहते हैं कि – स्वर भार का वैदिक संस्कृत में ही नहीं अपितु लौकिक संस्कृत में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था । पाणिनि के समय में भी वैदिक उदाहरण हेतु 'छन्दसि' एवं लौकिक उदाहरण हेतु 'भाषायाम्' पद का प्रयोग होता था, किन्तु जहाँ पर कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया गया वहाँ वेद में एवं लोक में सूत्र द्वारा समान नियम लागू होते थे । शान्तनव के फिट् सूत्रों में भी स्वर हेतु 'छन्दसि' तथा 'भाषायाम्' आदि शब्द प्रयोग पाये जाते हैं ।[१३१]

"सर्वानि नामान्यारव्यातजानीति शाकाटायनो नैरुक्तसमयश्च । न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके ।[१३२]

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल से शब्दों को धातुज एवं अव्युत्पन्न माननेवालों की परंपरा विद्यमान थी । शान्तनवाचार्य ने अव्युत्पन्न अर्थात् रूढ शब्दों में स्वरविधान करने हेतु फिटसूत्रों की रचना की थी ।

आचार्य शान्तनव ने प्रातिपदिक हेतु 'फिष्' संज्ञा का निर्देश किया है । फिष् संज्ञा काफी व्यापक संज्ञा है । इसमें धूमजानु, मुंजकेश, स्थालीपाक कपिकेश,, हरिकेश जैसे सामासिक शब्द, 'मातृ' जैसे ऋकारान्त शब्द, कृदन्त, बंहिष्ठ जैसे शब्दों का समावेश हो जाता है । शान्तनवाचार्य ने ८८ सूत्रों में इस हेतु स्वर भार विषयक नियमों को आबद्ध किया है ।

---

१२९ श्री मीमांसक युधिष्ठिर - सं. व्या. शा. इति०

१३० हरदत्त - प. मं. भा. २ पृ. ८०४.

१३१. Devsthali G.V. - pht. s. Intro p. I to V.

१३२ यास्क - निरुक्त १-१२

इस ग्रन्थ में सूत्र संख्या अत्यल्प होने से सभी नियमों का समावेश होना असंभव है अत: पाणिनीय शास्त्र की अपेक्षा उक्त शास्त्र न्यून उतरता है तथापि अपने समय में इसका काफी महत्त्व था इसमें शक नहीं । कहीं कहीं तो पाणिनि की अपेक्षा भी इसका महत्त्व अधिक सिद्ध होता है । यथा- "यतोऽनाव:" [१३३] सूत्र द्वारा यत्प्रत्ययान्त द्वयच् शब्द आद्युदात होता है, इस नियमानुसार "अर्य: स्वामीवैश्ययो:" (३-१-१०३) सूत्र द्वारा "ऋ" धातु को यत् प्रत्यय लगने से अर्य, निपातनयुक्त शब्द आद्युदात् बनेगा परन्तु 'स्वामी' के अर्थ में 'अर्य' शब्द अन्तोदात इष्ट है । पाणिनि की इस न्यूनता के पूर्त्यर्थ कात्यायन ने उक्त सूत्र पर "स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च" वार्तिक पढकर अन्तोदात्त स्वर सिद्ध किया है । जब कि शान्तनवाचार्य "फिट सूत्र" में "अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्" [१३४] सूत्र द्वारा अन्तोदात्त स्वर सिद्ध कर चुके हैं । इसी तरह "ज्येष्ठ" एवं "कनिष्ठ" शब्द "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" (६-१-१९७) सूत्र द्वारा आद्युदात्त होता है परन्तु वयस के गम्यमान होने पर अन्तो दात्त होना चाहिये कात्यायन वार्तिक द्वारा अन्तोदात स्वर सिद्ध करते हैं, जब कि शान्तनवाचार्य ने "ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि" [१३५] सूत्र द्वारा अन्तोदात स्वर सिद्ध किया है । इस प्रकार से भले हीं "फिट सूत्र" शान्तनवाचार्य का लघुकाय ग्रन्थ हो तथापि स्वरविधानहेतु यह ग्रन्थ काफी महत्त्वपूर्ण साबित हुआ है । [१३६]

शान्तनवाचार्य ने फिट् सूत्र में कुछ ऐसी संज्ञाओं का निर्देश किया है जो उन्हें प्राचीन सिद्ध करती है । यथा - प्रातिपदिक के लिए - 'फिष्' अच् के लिये 'अष्,' नपुंसक के लिये 'नप्,' वृद्ध संज्ञा के लिये यमन्वन् सर्वनाम संज्ञा के लिये 'शित्' लुक् संज्ञा के लिये 'स्फिक्' एवं हल् संज्ञा के लिये 'हय'संज्ञाओं का निर्देश किया है । उन्होंने अनुबन्धों का निर्देश नहीं किया क्योंकि पाणिनि से उनकी कार्यपद्धति भिन्न थी ।

इस ग्रन्थ में चार पाद हैं । प्रथम पाद में २३ या २४ सूत्र हैं, द्वितीय पाद में २६, तृतीय पाद में १९, तथा चतुर्थ पाद में १९ सूत्र हैं । श्री देवस्थलीने चार पादों में सूत्रों का विभाजित किया है, जब कि भट्टोजिदीक्षित का अनुसरण

---

१३३ पा. अ. ६-१-२१३.

१३४ फि. सू. १-१८.

१३५ वहीं १-२३

१३६ Devsthali G.V. - pht. s. p. VII to X

करके श्रीनिवास यज्वा ने पादों का विभाजन स्वीकारते हुअे भी सूत्रक्रमांक अविभक्त रखे हैं ।

प्रथम पाद के दो-तीन सूत्रों को छोडकर प्रथम पाद में अन्तोदात्त का विधान किया गया है, अतः प्रथम पाद "अन्तोदात्ताधिकार" कहाता है । द्वितीय पाद का आरंभ आद्युदात्त स्वर से होता है, जो तृतीय पाद के अन्ततक प्रवृत्त होता है, बीच बीच में अपवादरूपेण मध्योदात्त का भी विधान किया गया है। चतुर्थ पाद में अनियतस्वर द्वि उदात्त स्वर, नित्य स्वर एवं अन्तोदात्त स्वर आदि की चर्चा की गई है ।

निष्कर्ष यही निकलता है कि शान्तनवाचार्य के फिट् सूत्र सिर्फ वैदिक प्रयोगों के विधान हेतु ही प्रयुक्त नहीं हुअे अपितु लौकिक एवं वैदिक प्रयोगों के स्वर विधान हेतु रचे गये हैं । शान्तनवाचार्य ने लौकिक एवं वैदिक, दोनों भाषाओं को अपनी नजर समक्ष रखा था ।

फिट सूत्र - फिट सूत्रों का रचयिता पाणिनि नहीं है किन्तु आचार्य शन्तनु है । अतः ये सूत्र शान्तनव कहाते हैं ।

इस विषय में हरदत्त कहता है कि - "स पुनः शन्तनुप्रणीतः फिष् इत्यादिकम्" [१३७]

आचार्य नागेश भी हरदत का अनुकरण करते हुअे कहता है - "शन्तनुराचार्यः प्रणेतेति द्वारादीनां चेति सूत्रे हरदतः"। [१३८] इससे सिद्ध है कि फिटसूत्रों का रचयिता आचार्य शन्तनु है ।

कीलहार्न तथा कीथ भी फिटसूत्रो को शान्तवप्रणीत मानते है । मैक्समूलरने इसे प्राच्य शान्तनु की कृति माना है । गोल्डस्टुकर भी मैक्समूलर के मत को काटते हुअे भी प्राच्य शान्तनु प्रणीत ही बताते हैं । श्री युधिष्ठिर मीमांसक इस शन्तनु को भीष्मपितामह के पिता से अभिन्न मानते हैं । परन्तु उनका यह विचार किसी ठोस प्रमाणपर आधारित नहीं दिख पडता ।

फिट सूत्रों की आवश्यकता -

अति प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा के सभी शब्द यौगिक माने जाते थे। अतः स्वरों का परिज्ञान प्रकृति प्रत्यय के विभागानुसार सम्पन्न हो जाता था। किन्तु आनेवाले उत्तरकाल में शब्दराशि रुढ मानी जाने लगी । किन्तु जो आचार्य

---

१३७ हरदत्त - पं. मं. भा. २ पृ. ४०८

१३८ लघु - बृहच्छब्देन्दुशेखर

शब्दराशि को व्युत्पन्न मानते थे वे स्वरज्ञान के लिये उणादि सूत्रों से कार्य चला लेते थे । किन्तु जिनके मतमें औणादिक शब्द अव्युत्पन्न (रुढ) है उनके मत में शब्दों के स्वर ज्ञान के लिये किसी ऐसे शास्त्र की आवश्यकता प्रतीत हुई जो प्रकृति-प्रत्यय के बिना ही स्वरज्ञान कराता हो ।

नागेश भट्ट लिखता है -

''प्रकृतिप्रत्ययविभागशून्येष्वेव फिट्सूत्रप्रवृत्तेश्च'' [१३९] अर्थात् फिट् सूत्रों की प्रवृत्ति अव्युत्पत्ति पक्ष में जहाँ प्रकृति एवं प्रत्यय का विभाग स्वीकारा नहीं गया वहीं होती है । सार यह है कि फिट् सूत्र एक संक्षिप्त स्वरविधायक शास्त्र है, जो शब्दो के रूढ अर्थात् अव्युत्पन्न पक्ष के लिये आवश्यक है ।

फिटसूत्र में ८८ सूत्र हैं । इसमें चार पाद हैं । इसका प्रथम सूत्र ''फिष्''है । पाणिनीय शब्दानुशासन में जिन अर्थवान शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है उन्हीं की 'फिटसूत्र' में 'फिष्' संज्ञा होती है । फिष् शब्द का प्रथमैकवचन में फिटरूप बनता है । इसी कारण से इस शास्त्र का नाम ''फिट्सूत्र'' रखा गया है ।

'फिटसूत्र' पाणिनि से अर्वाचीन है इस विषय में नागेश कहता है कि- ''यद्वा फिटसूत्राणि पाणिन्यपेक्षया आधुनिक कर्तृकाणीति'' ।[१४०] परन्तु नागेश का उक्त वचन चिन्त्य है । आचार्य चन्द्रगोमी फिटसूत्रों को पाणिनि से प्राचीन मानते हैं -

''एष प्रत्याहारः पूर्वव्याकरणेष्वपि स्थित एव । अयंतु विशेषः - ऐऔष् यदासीत् तद् ऐऔच् इति कृतम् । तथाहि - लघावन्ते द्वयोश्च बह्वश्च बह्वषो गुरुः (फिट्. २९), तृणधान्यानां च द्वयषाम् (फिट् २-४) इति पठयते । अर्थात् यह प्रत्याहार पूर्व व्याकरणों में विद्यमान था । केवल इतना ही विशेष है कि ऐऔष् सूत्र था ऐऔच् कर दिया । इसीलिये ''लघावन्ते'' तथा ''तृणधान्यानां''० फिट् सूत्रों में अच् के स्थान पर अष् का निर्देश उलब्ध होता है ।

इससे सिद्ध है कि फिट् सूत्र का रचयिता शन्तनु पाणिनि से प्राचीन है।

आपिशल व्याकरण में भी अच् प्रत्याहार तथा ऐऔच् सूत्र उपलब्ध होता है अतःअष् प्रत्याहार का निर्देश करनेवाला फिट्सूत्रकार आपिशलि से पूर्ववर्ती था ।

---

१३९ नागेश भट्ट - महा. प्र. उ. १-२-४५ पृ. ५२.

१४० नागेश व्या - महा, प्रदी. उ. ६-१-१५८.

फिट सूत्रों में कतिपय ऐसी संज्ञाएँ प्रयुक्त हैं जिनको देखकर भी उन्हें पाणिनि एवं आपिशलि से प्राचीन कहा जायगा यथा -

	शन्तनु	पाणिनि
१	फिष (सूत्र १)-	प्रातिपदिक
२	नप् (सूत्र २६-६१)	नपुंसक
३	शिट् (सूत्र २९)-	सर्वनाम

इन सभी प्रमाणों से सिद्ध है कि फिट् सूत्र प्राचीन है एवं अव्युत्पन्न पक्ष का आश्रयण करके अखण्ड प्रतिपादिकों के स्वरज्ञान के लिये आचार्य शन्तनु ने इन सूत्रों की रचना की थी ।

३. कात्यायन

अष्टाध्यायी की रचना के पश्चात् पाणिनि एवं उनकी कृति अष्टाध्यायी की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गई, अतः स्वाभाविक है कि अनेक आचार्यो ने अष्टाध्यायी पर अपनी लेखनी चलाई हो ।

पाणिनि के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी । कोई भी ऐसा लेखक नहीं है जिसपर समय का प्रभाव न पडता हो ।

भाषा गतिशील होने से उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया होना स्वाभाविक है । यही अष्टाध्यायी के साथ भी हुआ । व्याकरणशास्त्र में अष्टाध्यायी ग्रन्थ सर्वांग सम्पूर्ण होने पर भी समय के साथ साथ उसमें कुछ शब्दों का संशोधन एवं परिवर्धन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गया । इस पूर्तिको कात्यायन ने पाणिनीय शब्दानुशासन को अक्षुण्ण बनाये रखते हुअे बड़े कौशलपूर्ण ढंग से किया, इसमें कोई संदेह नहीं ।

अनेक नाम - कात्यायान के वार्तिककार, कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित् एवं वररुचि आदि अनेक नाम प्राप्त होते है । किन्तु वार्तिककार, कात्यायन एवं वररुचि नाम सबसे अधिक ज्ञात है ।

कात्यायन नामका उल्लेख (महा० ३-२-११८) में मिलता है [१] इसी प्रकार वररुचि के लिये महा०.४-३-१०१ में वाररुच श्लोकों का उल्लेख प्राप्त होता है । हमने यहाँ प्रसिद्ध नामों का ही उल्लेख करना उचित समझा है । कात्यायन नाम के अनेक व्यक्ति हो गये हैं यथा याज्ञवल्क्य पुत्र कात्यायन[१४२], कौशिक कात्यायन[१४३], आंगिरस कात्यायन, भार्गव कात्यायन आदि ।

१४१ Devsthali G.U. pht. S.p. 34-37

१४२ स्कन्दपुराण नागर खण्ड अ. १३० श्लो. ७१.

१४३ अण्णाशास्त्री द्वारा प्रकाशित - प्रतिज्ञापरिशिष्टक ३१ सू. ५.

भाष्यकार ने इनके लिये कात्य और कात्यायन नामों का उल्लेख किया है, इसके सिवा आचार्य और भगवान् शब्द का प्रयोग भी कात्यायन के प्रति आदरार्थ किया गया है । संभव है कि कात्यायन नाम वंशानुक्रम के कारण रहा हो एवं वार्तिक सूत्रों के रचयिता के रूप में यह नाम अधिक प्रसिद्धि पाया हो । वररुचि नाम व्यक्तिवाचक रहा हो जो काव्यके लेखक के रुपमें प्रसिद्ध रहा हो । इसी प्रकार से विशेषणात्मक नाम के रूप में कात्यायन के लिये 'वातिकार' एवं 'वाक्यकार' नाम भी प्राप्त होता है । वार्तिककार नाम की तुलना वृत्तिकार तथा भाष्यकार नाम सादृश्य के साथ की जा सकती है, एवं वाक्यकार को सूत्रकार एवं पदकार शब्द के समकक्ष माना जा सकता है ।

कात्यायन के जीवन एवं जन्मस्थल के विषय में भी प्रमाणभूत परिचय का अभाव रहा हैं । उनके गुरु का नाम 'वर्ष' था और वह पाणिनि का सहाध्यायी था । 'वर्ष' गुरु की लावण्यवती कन्या उपकोषा से उनका विवाह हुआ था। श्री मीमांसक जी कात्यायन को पाणिनि का शिष्य बताते हैं । जब तक ठौस प्रमाण प्राप्त नहीं होते तब तक हम इतिहास की आरसी पर इन दन्तकथाओं को सही नहीं ठहरा सकते । "प्रियतध्दिता दाक्षिणात्या:" इस उदाहरण के आधार पर पतंजलि उन्हें दाक्षिणात्य बताने की कोशिश करते हैं, किन्तु किलहर्न उन वचनों को विनोदपूर्ण बताते हैं [१४४] । श्री मीमांसक जी भी कात्यायन को दाक्षिणात्य मानने में कोई आपत्ति नहीं देखते । कात्यायन याज्ञवल्क्य पुत्र होने से याज्ञवल्क्य का सम्बन्ध आनर्तप्रदेश (गुजरात) से था [१४५] । वहाँ से वे महाराष्ट्र गये हो क्योंकि शुक्लयजुर्वेद की कात्यायन शाखाका महाराष्ट्र में अधिक प्रचार है किंच विंध्य के दक्षिण में होने से महाराष्ट्र दक्षिणप्रदेश कहलायगा अत: कात्यायन दक्षिण में रहा होगा ऐसा मत श्री मीमांसक जी का है [१४६] । किन्तु जब तक ठौस प्रमाण प्राप्त न हो तब तक अनुमानाधारित ही स्वीकारना उचित होगा । पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्राच्य, औदीच्य एवं दाक्षिणात्य तीन पाठ मिलते हैं, इनमें से दाक्षिणात्य एवं औदीच्य लघुपाठ है, कात्यायनने लघुपाठ पर ही वार्तिक सूत्र रचे थे अतः दाक्षिणात्य पाठ पर ही कात्यायनने वार्तिक सूत्र रचे

---

१४४ किलहर्न पृ. ४ पं. ८-९.

१४५ नागरखण्ड १७४-७५

१४६ श्री मीमांसक युधिष्ठिर - सं. व्या. शा. इति. १ भा. पृ. ३०५

१४७ वहीं पृ. सं. ३०६

होंगे, इससे सिद्‌ध है कि कात्यायन दाक्षिणात्य ही होगा [१४७] ।

प्राग्देशीय या प्राच्य मानने के लिये जब तक आधारभूत प्रमाण नहीं मिलते तब तक कात्यायन को दाक्षिणात्य ही मानता उचित रहेगा ऐसा हमारा विचार है ।

कात्यायन ने स्वतन्त्र वार्तिक ग्रन्थ लिखा हो ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध होता नहीं है । हाँ पाणिनीय सूत्रों पर भाष्यकार ने यत्र तत्र उनके वार्तिक तथा वचनों को उद्‌घृत किया है यही उनकी प्रतिभा का परिचायक है । हाँ वार्तिक पाठ के नाम से कुछ हस्तप्रत ग्रन्थ मिलते हैं किन्तु उनका आधार महाभाष्य न होकर सिद्‌धान्तकौमुदी तथा प्रक्रियाकौमुदी है । काशिका जैसे वृत्ति ग्रन्थ में भी कात्यायन के सभी वार्तिकों का मिलना असंभव है । आचार्य भोजदेव ने "सरस्वतीकण्ठाभरण"में कात्यायन के अनेक वार्तिकों का सूत्र के रूपमें स्वीकार किया है ।

वार्तिक क्या है – पराशर उपपुराण में वार्तिक की व्याख्या देते हुओ लिखा है –

"उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वातिकज्ञा मनीषिणः ॥

अर्थात् उक्त, अनुक्त एवं दुरुक्त विषयों की चर्चा करना ही वार्तिक का कार्य है । काव्यमीमांसा के लेखक कहते हैं –

"उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम् " (पृ.५)

इस विषय में कैयट लिखता है कि– "वृत्तेर्व्याख्यानं वार्तिकम्" वृति का अर्थ करते हुओ कैयट कहता है कि – "वृत्तिः शास्त्रस्य लक्ष्ये प्रवृत्तिः तदनुगतो निर्देशोऽनुवृत्तिनिर्देशः " [१४९]

वार्तिक सूत्रों के लिये तीन नाम प्रयुक्त होते हुओ पाये जाते हैं – (१) अनुतन्त्र (२) अनुस्मृति (३) भाष्यसूत्र । अनुतन्त्र का प्रयोग भर्तृहरि ने 'भाष्य' और 'सूत्र' के लिये किया है [१५०] । अनुस्मृतिका निर्देश सायण करते हैं [१५१]। भाष्यसूत्र का प्रयोग पतंजलि ने महाभाष्यके लिये रचित या पूर्वभाष्यों में से

---

१४८ The Gold Stucker - The Panini p. 236

१४९ व्या. महा. १-१ के अन्त में ।

१५० भर्तृहरि - वा. प. १-२३

१५१ सायण - मा. धातु० पृ. ३०

उद्धृत वार्तिक सूत्रों के लिये किया है ।

पातंजल महाभाष्य स्थित जो वार्तिक पाये जाते हैं उसमें से कात्यायन के वार्तिकों को अलग से निर्देश करना मुश्किल है । भाष्यकार ने आचार्याः, अन्ये वैयाकरणाः, अपरे वैयाकरणाः, कश्चिद् वैयाकरणः, केचित, अपरे, अपर आह, कोष्ट्रीयाः, सौनागाः, भारद्वाजीयाः, आदि शब्दों से प्रतीत होता है कि उक्त वार्तिक या श्लोक वार्तिक कात्यायन के सिवा अन्य आचार्यो ने भी पढ़े हैं।

भारद्वाजीयाः, सौनागाः, गौतमीयाः आदि उल्लेखों द्वारा स्पष्ट है कि कात्यायन और पतंजलि के बीच मे आचार्य हुअे होंगे जिन्होंने अपने अपने ढंग से पाणिनीय व्याकरण की व्याख्या की होगी ऐसा करते हुअे उन्होंने कात्यायन के वार्तिकों में कुछ हेरफेर सुझाया है,

यथा–

(१) कात्यायन का एक वार्तिक है – "घु संज्ञायां प्रकृतिग्ग्रहणं शिदर्थम्" [१५२] पतंजलि के अनुसार भारद्वाजीय इसे "घु संज्ञायां प्रकृतिग्रहणं शिद्विकृतार्थम्" के रूप में पढ़ते हैं ।

(२) कात्यायन ने एक अन्यवार्तिक "यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिच् श्रिब्रूञामुपंख्यानम्" [१५३] पढा है । इसे ही भारद्वाजीय "यक्चिणोः प्रतिषेधे णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञामात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम्" वार्तिकरूपेण पढ़ते हैं । इससे स्पष्ट है कि भरद्वाज सौनाग आदि आचार्य कात्यायन के वार्तिकों में यथेष्ट परिवर्तन को लेकर चले हैं ।

कुछ विद्वानों का अभिप्राय है कि कात्यायनने जगह–जगह पाणिनीय सूत्रों का खण्डन किया है परन्तु उक्त धारणा भ्रान्तविचारसरणी पर आधारित है । वस्तुतः कात्यायन पाणिनि के आलोचक नहीं है अपितु उनके समय में और पाणिनि के समय के बीच भाषामें जो परिवर्तन आया था पाणिनि उसे अपना नहीं सके थे ऐसे प्रयोगों की पूर्ति के लिये ही उन्होंने वार्तिक सूत्रों का प्रणयन किया । यदि कात्यायन पाणिनि के विरोधी होते तो जगह जगह पाणिनि के लिए उन्होंने जो आदरवाचक शब्दों का प्रयोग किया है, वे न करते।

(१) "अकथितं च" सूत्र पर वे पाणिनि के लिये "कवि" शब्द का प्रयोग करते हैं यथा –

(१) "दुहि याचि.....तदकीर्तितमाचरितं कविना" [१५४]

---

१५२ व्या. महा० २-२-१८.

१५३ व्या महा. ३-१-८९.

१५४ व्या महा. ३-४-५१ श्लोक वार्तिक

(२) उसी सूत्र में अन्यत्र कात्यायन ने पाणिनि को अनल्पमति कहा था ।[१५५]

(३) पाणिनि के लिये 'भगवान्' शब्द का प्रयोग करते हुअे वे कहते हैं "एकशेषनिर्देशाद् वा स्वरभिन्नानां भगवतः पाणिनेः सिद्धम् ।"[१५६]

इससे स्पष्ट है कि कात्यायन पाणिनि के विरोधी नहीं अपितु समर्थक थे । सिद्धान्त कौमुदी के सम्पादनानुसार कात्यायन के वार्तिकों की संख्या ५००० के करीब रही होगी ।

किलहर्न के संपादनानुसार ४३९३ वार्तिकोंकी तालिका उपलब्ध होती है।

जैसा कि हमने निर्देश किया है कि कात्यायन पाणिनि के आलोचक नहीं अपितु समर्थक थे । जहाँ जहाँ उन्हें न्यूनता अथवा तो कुछ परिष्कृत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई वहाँ पाणिनि के समर्थन में ही उन्होंने परिवर्तन किया है यथा – तृतीय अध्याय में पाणिनि ने १२८ "कृत् प्रत्ययों" का विधान किया है कात्यायन ने उन कृतप्रत्ययों में चौदह प्रत्यय और जोड़ दिये ।[१५७]

यथा – छ, इक्, इफ्, कार, स्तिप्, आदि प्रत्ययों की वृद्धि (३/३/१०८) सूत्रस्थ वार्तिकों में, (७) उर, इक्, इकवक आदि प्रत्ययों का विधान (३/३/१२५) सूत्रस्थ वार्तिकों में, केलिमर् प्रत्यय का विधान (३/२/९६) उस् प्रत्यय का परिगणन (३/२/७१) 'कृकन्' प्रत्यय का विधान (३/२/१७४) 'नि' प्रत्यय (३/३/९४) क्स प्रत्यय का विधान (३/२/६०) में किया गया है।

कात्यायन ने भी वार्तिक सूत्रों में यत्र तत्र 'छन्दसि' शब्द का निर्देश करके वेदविषयक अपनी जानकारीका परिचय दिया है । यथा –

(१) 'तृन्' ३/२/१३५ सूत्र पर "छन्दसि तृच्च" वार्तिक पढ़ा है । इसको समझाते हुअे भाष्यकार कहते हैं कि छन्दसि तृच्च तृञ् च वक्तव्यः । इससे क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यः आदि उदाहरण तृच् एवं तृञ् प्रत्यय से निष्पन्न होते हैं। तृच् प्रत्यय का उदाहरण– "क्षतृभ्यः" संगृहीतृभ्यश्च वो नमो नमः" उदाहरण (तै.सं. ४.५.४.२) शतरुद्रीय सूक्त में प्राप्त होता है, यही उदाहरण मैत्रायणि संहिता (२.९.४) काठक संहिता (१७.१३) कपिष्ठल कठ संहिता (२७.३) वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता (१६.२६) तथा काण्वसंहिता (१७.३.५) में प्राप्त होता है । इससे स्पष्ट है कि कात्यायन का वैदिक स्वर विषयक ज्ञान काफी

---

१५५ वहीं १-४-५१ श्लोक, वा० कथिते ऽ भिहिते.....तदनल्पमतेवचनंस्मरत।"

१५६ वहीं ८-४-६८ वा. ४.

१५७ Dr. Balasubrahmanyam M.D. SKAPVP XI

समृद्ध था ।

(२) पा.अ. (३/२/१३९) सूत्र में कात्यायन ने "स्थादंशिभ्यां स्नुश्छन्दसि" वार्तिक के आधार पर स्थास्नु जंगमम् । दङ्क्ष्णवः पशवः । नित् प्रत्ययान्त होने से आद्युदात्त स्वर होता है । "तथा त्वया युजा वयं निकृण्म स्थास्नु जङ्गमम्।" (ऋ.सं. १०/१२८/३२) यहाँ स्थास्नु पद आद्युदात्त है । सातवलेकर की आवृत्ति में सर्वानुदात्त है । "दङ्क्ष्णवः पशवः" उदाहरण वैदिक ग्रन्थोमें दंक्ष्णवः पशवो हेतिः (तै.सं. ४.४.३.२) मैत्रायणि संहिता (२.८.१०) काठक संहिता (१७.९) कपिष्ठल कठ संहिता (२६.८). वा. भा. सं. (१५.५), काण्वसंहिता (१६.४.१), एवं शतपथ ब्राह्मण (८.६.१.६) में प्राप्त होता है।

(३) "राजसूयसूर्य०" (पा.अ. ३/१/११४) सूत्र में पाणिनि ने उक्त शब्दों को क्यप् प्रत्यान्त निपातित किया है । इस पर कात्यायन ने निम्नवार्तिक पढ़ा है - "कृष्टपच्यस्यन्तोदात्तत्वं च कर्मकर्त्तरि" यहाँ "कृष्टपच्याश्च मे" "अकृष्टपच्याश्चमे" अन्तोदात्तयुक्त वैदिक उदाहरण (मैं. सं. २.११.५.) (माध्य० सं. १८.१४) काण्वसंहिता (१९.५.२) मिलता है इस से स्पष्ट है कि कात्यायन को अन्तोदात्तयुक्त वैदिक उदाहरणों की जानकारी थी । [१५८]

(४) "चित्याग्निचित्ये च" (पा.अ. ३.१.१३२) सूत्र द्वारा चित्य एवं अग्निचित्य शब्दों को निपातन युक्त सिद्ध किया है । इस सूत्र पर कात्यायन ने "अग्निचित्येत्यन्तोदात्तोभावे" वार्तिक पढ़ा है । "अग्निचित्या" पद श.ब्रा. (६.६.१.१) शां.ब्रा. (१९.५.७) में प्राप्त होता है इससे स्पष्ट है कि कात्यायन को वैदिक स्वर विषयक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में था । कात्यायन उक्त सभी वैदिक ग्रन्थों से सुपरिचित थे ।

काल - पाणिनि की तरह ही कात्यायन के समय के बारे में भी मतभेद रहा है ।

(१) 'कथासरित्सागर' के अनुसार कात्यायन महापद्म नन्दका समकालिक था । महापद्म नन्द का समय ई.स. पूर्व ४०० के आसपास का रहा होगा । किन्तु श्री मीमांसकजी उक्त कात्यायन श्रुतधर कात्यायन है जो वार्तिककार कात्यायन से भिन्न है ऐसा मानते हैं । [१५९]

(२) श्री नागेश भट्ट कात्यायन को पाणिनि का शिष्य मानते हैं। [१६०]

158 Dr. Balasubrahmanyam M.D. SKAPVP. XIV-XV

१५९ श्री मीमांसक युधिष्ठिर - सं.व्या.शा.इति. भा. १ पृ. ३०८.

१६० श्री नागेशभट्ट - लघुशब्देन्दुशेखर

इससे स्पष्ट है कि कात्यायन पाणिनि का समकालिन था ।

(३) आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् (पा.अ. ७/३/१) सूत्र पर "वहिनरस्येद्वचनम्" वार्तिक के आधार पर वार्तिककार को उदयपुत्र बहीनर से अर्वाचीन मानते हैं । किन्तु श्री मीमांसक जी ने युक्तिपुरःसर इसका खण्डन करते हुअे वहीनर को पतंजलि से प्राचीन ठहराया है, [१६१] अतः स्पष्ट है कि वार्तिककार कात्यायन भी प्राचीन ठहरते हैं ।

(४) श्री युधिष्ठिर मीमांसक भारतीय परंपरा का आश्रयण लेकर कात्यायन को वि. स. पूर्व २९००, ३००० के आसपास का मानते हैं । [१६२] इस विषय में उन्होंने युक्तसंगत दलिलेभी दी है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों का अनुसरण करनेवाले मीमांसक जी के उक्त मत से सहमत नहीं होते । वास्तव में अब समय ऐसा आ गया है कि हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही रहकर इसका सही मूल्यांकन करे तो संभव है कि मीमांसक जी का मत हमें युक्तिसंगत प्रतीत हो ।

(५) श्री वर्माजी कात्यायन को ई. स. पूर्व ४००-५०० के बीच मानने के लिये बाध्य हुअे हैं । [१६३]

अन्यग्रंथ - (१) स्वर्गारोहण काव्य - महाकाव्य (४-३-१०१) में वाररुच काव्य का उल्लेख प्राप्त होता है । वाररुच कात्यायन का ही नाम है, यह हम उपर देख चुके हैं । महाराज समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित में लिखा हैं -

"यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि ।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः ॥
न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः ।
काव्येऽपि भूयोनुचकार तं वै कात्यायनो ऽ सौ कविकर्मदक्षः"॥

इससे स्पष्ट है कि वार्तिककार कात्यायन ने "स्वर्गारोहण काव्य" लिखा था ।[१६४]

सूक्तिमुक्तावली में निम्न श्लोक प्राप्त होता हैं -

---

१६१ श्री मीमांसक युधिष्ठिर सं.व्या.शा. इति० भा. १ पृ. ३०८

१६२ वहीं पृ. ३०८ - ३०९.

१६३ श्री सत्यकाम वर्मा - सं.व्या.उ.वि० पृ. १८७

१६४ जल्हन कृत - सूक्तिमुक्तावली

यथार्थतां कथं नाम्नि सा भूद् वररुचेरिह ।
व्यधत्त कण्ठाभरणं यः स्वर्गारोहणप्रियः ॥

इससे स्पष्ट है कि कात्यायन ने "स्वर्गारोहण काव्य" लिखा था ।

(२) भ्राजसंज्ञक श्लोक : - (महा० १-१-१) में भ्राजसंज्ञक श्लोकों का उल्लेख मिलता है....यथा - क्व पुनरिदं पठितम् ? भ्राजा नाम श्लोकाः । कैयंट ने भ्राजसंज्ञक श्लोकों का उल्लेख किया है ।[१६५] यथा -

"कात्यायनोपनिबद्ध भ्राजाश्लोकमध्य पठितस्य ।" इससे स्पष्ट है कि कात्यायन ने भ्राजसंज्ञक श्लोक रचे थे ।

पदमंजरीकार हरदत्त भी भ्राजसंज्ञक श्लोकों को कात्यायन प्रणीत मानते हैं -[१६६]

"कात्यायन प्रणीतेषु भ्राजाख्य श्लोकेषु मध्ये पठितो ऽ यं श्लोकः" ।

इसके सिवा प्रतिज्ञासूत्र, भाषिकसूत्र, वाजसनेय प्रातिशाख्य आदि कृतियाँ कात्यायन ने रची है । किन्तु श्री गोल्डस्टुकर किसी पूर्ववर्ती कात्यायन की ये कृतियाँ हैं ऐसा मानते हैं । श्री वर्माजी भी ऐसा ही मानते हैं ।[१६७]

निष्कर्ष-कात्यायन के वार्तिकों में चतुर्धा प्रवृत्ति पायी जाती है, यथा

(१) पूरक वार्तिक, (२) परिश्कृत वार्तिक, (३) विवेचनात्मक वार्तिक तथा (४) खण्डनात्मक वार्तिक ।[१६८] तथापि अधिकांश वार्तिक पूरक एवं विवेचन के रूपमें ही पाये जाते हैं । खण्डात्मक वार्तिकों की संख्या बहुत ही कम है । यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम् "व्याकरणस्य त्रिमुनिः" आदि प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है कि व्याकरणशास्त्र में पाणिनि की तरह कात्यायन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । जो पाणिनि, भरद्वाज, सौनाग आदि आचार्यों से काफी प्रभावित था । जिसने वार्तिक सूत्रों का पठन करके व्याकरणशास्त्र में रही हुई कमी को दूर करने का सफल प्रयास किया था ।

४. पतंजलि

'त्रिमुनिर्व्याकरणम्' इस उक्ति को यथार्थ सिद्ध करने वाले अन्तिम आचार्य

---

१६५ कैयट - (महा० प्रदीप १-१-१ पृ. ३४)

१६६ हरदत्त - पद. म. भा. १ पृ १०.

१६७ श्री सत्यकाम वर्मा - सं. व्या. उ. वि. पृ. १८७.

१६८ K. Madhav Sharma - PKP p 54

भगवान् पतंजलि है, जिन्हों ने अष्टाध्यायी के सूत्र एवं कात्यायन के वार्तिकों पर विवेचनात्मक भाष्य लिखकर के "महाभाष्य" का स्वरूप प्रदान किया । जिन्होंने उक्त, अनुक्त, एवं दुरुक्त सूत्रों में समन्वयकारी एवं प्रसादमयी शैली को अपनाकर सचमुच एक महान कार्य किया है । जहाँ पतंजलि ने पाणिनि और कात्यायन के सूत्रों का विवेचन किया है वहाँ भर्तृहरि और पुण्यराज के अनुसार व्याडि द्वारा उल्लिखित न्याय बीजों को व्याकरण का अभिन्न अंग बनाकर प्रयोग किया । [१६८-ब]

व्याकरण, दर्शन, आयुर्वेद, काव्य तथा योगदर्शन का रचयिता पतंजलि सचमुच बहुश्रुत विद्वान महामानव था ।

आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे महान आचार्य ने अपने विषय में कहीं भी कुछ भी उल्लेख नहीं किया । पतंजलि के पश्चाद्वर्ती लेखकों में से भी किसी ने इस विषय में कोई परिचय नहीं दिया । भर्तृहरि तथा चंद्राचार्य ने पतंजलि की कृतियों का यत्र तत्र उदाहरण स्वरूप उल्लेख किया है तथापि परिचय देने की उन्होंने भी परवाह नहीं की हा महाराज समुद्र गुप्त ने यत्किंचित् परिचय दिया है उसी के आधार पर पतंजलि के विषय में हम कुछ जान पाते हैं ।

परिचय और नाम : – भारतीय परंपरा और किंवदन्ती के अनुसार पतंजलि शेषनाग के अवतार माने जाते हैं यही कारण है कि उनके अनेक नामों में नागनाथ, वासुकी, अहिपति, फणी, फणीभृत, शेषराज आदि नामों का प्रयोग नागेश, कैयट, चक्रपाणि, अमरचंद्र सूरि, वल्लभदेव तथा भोजराज [१६९] आदि विद्वानों ने अपनी अपनी कृतियों में किया है । तथापि गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, चूर्णिकार तथा पदकार आदि नामों से भी पतंजलि को संबोधित किया गया है । गोनर्दीय एवं गोणिकापुत्र के नाम से पतंजलि अधिक प्रसिद्ध हैं ।

भर्तृहरि [१७०] कैयट [१७१] तथा राजशेखर[१७२] गोनर्दीय शब्द को पतंजलि का नामान्तर ही मानते हैं ।

वैजयन्तीकोशकार भी "गोनर्दीयः पतंजलि" (पृ. ९६ श्लोक. १५७)

१६८-ब वा. प. २ ४७९ से ४८३ तथा पुण्यराजकृत श्लोक ५० से ५३

१६९ भोजराज - यो. सू. वृ. - वाक्चेतोवपुषांमलः फणिभृता भर्त्रेव येनोदूधृतः ।

१७० भा. टी. - १.१.१२१. गोनर्दीयस्त्वाह तस्माद् भाष्यकारो व्याचष्टे सूत्रमिति ।

१७१ महा प्रदीप १.१.१२१ गोनर्दीय पदं व्याचष्टे...भाष्यकार इति ।

१७२ काव्यमीमांसा पृ. २६ - यस्तु प्रयुक्ते कुशलो....गोनर्दीयः ।

श्लोक द्वारा गोनर्दीय शब्द को पतंजलि का पर्यायवाची मानते हैं । दुर्गा प्रिन्टिंग प्रेस अजमेर द्वारा प्रकाशित "वात्स्यायन काम सूत्र" (१.१.१५. १.५.२५, ४-२-२५) में किसी गोनर्दीय आचार्य का मत प्राप्त होता है ।

आचार्य भर्तृहरि ने 'त्रिकाण्डशेष' १.१.५.२१ में पतंजलि के लिये गोनर्दीय शब्द का प्रयोग किया है, यथा - "गोनर्दीयस्त्वाह । किमस्याचार्यस्य दर्शनम्? तस्मादेतद् भाष्यकारो व्याचक्षति सूत्रमिति" ।

बेबर, गोल्डस्टुकर, कैयट आदि सभी आचार्यो एवं विद्वानों ने पतंजलि के लिये गोनर्दीय शब्द का प्रयोग किया है । डॉ. सत्काम वर्मा भी [१७३] पतंजलि ही गोनर्दीय थे ऐसा मानते हैं ।

किन्तु श्री मीमांसक जी ने इस पर आपत्ति उठायी है उनका कहना है कि गोनर्द देशवाचक नाम है । उत्तर प्रान्त का वर्तमान "गौंडा" संभवतः गोनर्द देश है । काशिका में इसे प्राच्य कहा है । [१७४]

कईं ऐतिहासिक विद्वान गानर्द प्रदेश को काश्मीर देश मानते हैं । उनका विचार है कि नाम सादृश्य से कैयट को भ्रम हो गया लगता है ।

गोणिका पुत्र - इस नामका उल्लेख (पा. अ. १-४-५१) में "उभयथा गोणिका पुत्र इति" इस पर नागेश लिखता है कि "गोणिकापुत्रो भाष्यकार इत्याहुः" इससे स्पष्ट है कि प्राचीन टीकाकार पतंजलि के लिये ही गोणिकापुत्र शब्द व्यवहृत करते थे । श्री मीमांसक जी "आहुः" शब्द द्वारा सिद्ध करते हैं कि यह नाम नागेश को भी इष्ट नहीं हैं । [१७५] जबकि श्री वर्मा जी पतंजलि का ही अपरनाम स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं देखते ।

चूर्णिकार : - महाभाष्यदीपिकामें चूर्णिकार शब्द का प्रयोग भर्तृहरि ने तीन बार किया है । सांख्यकारिकाकी युक्ति दीपिका टीका में चूर्णिकार शब्द का प्रयोग पाया जाता है । इसी प्रकार स्कन्द स्वामी, शबर आदि ने भी पतंजलि को चूर्णिकार कहा है । चीनी यात्री इत्सिंगने भी महाभाष्यका "चूर्णि" के नाम से प्रयोग किया है । [१७६]

---

१७३ सं. व्या. उ. वि. पृ. १९३.

१७४ जयादित्य - एङ्प्राचां दे शे: १-१-७५ में गोनर्द शब्द पढा है ।

१७५ श्री युधिष्ठिर मीमांसक - सं. व्या. शा. इति. भा. १ पृ. ३२२

१७६ इत्सिंग की भारतयात्रा पृ. २७२.

पदकार : - इस नाम का प्रयोग स्कन्द स्वामी ने निरुक्त टीका (१-३) में, उवट ने ऋक्प्रातिशाख्य (१३-१९) की टीका में, आत्मानन्द ने अस्यवामीय सूक्त के भाष्य में पदकार के नाम से पतंजलि की ओर संकेत किया है । भामह ने अलंकार ग्रंथ में (४-२-२) ''सूत्रकृत्पदकारेष्टप्रयोगाद् यो ऽन्यथा भवेत्'' श्लोक का प्रयोग करके महाभाष्य की ओर संकेत किया है । न्यास के रचयिता जिनेन्द्रबुद्धिने (३-२-२१) में पदकार शब्द का प्रयोग भाष्यकार के लिये किया है, इससे स्पष्ट है कि पतंजलि का अपर नाम पदकार भी था ।

रचनाएँ :-

महाराज समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित की प्रस्तावना में निम्न तीन श्लोक दिये हैं-

विद्ययोद्रिगुणतया भूमावमरतां गतः ।
पतंजलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा ॥
कृतं येन व्याकरण भाष्यं वचनशोधनम् ।
धर्मावियुक्ताश्चरके योगा रोगमुषः कृताः ॥
महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम् ।
योगव्याख्यानभूतं च तद्रचितं चित्तदोषहम् ॥

इससे स्पष्ट है कि पतंजलि ने महाभाष्य की रचना, चरकका प्रतिसंस्कार,[१७७] महानन्द काव्य, योगदर्शन आदि कृतियाँ रची थी । इसके सिवा भी निदानसूत्र, सामवेदीय पातंजलशाखा,[१७८] सेश्वरसांख्य[१७९], (सेश्वर सांख्य का अपर नाम आर्या पंचाशीति है जिस में सांख्यविषयक अनेक मत उल्लेख किये गये हैं) कोशग्रंथ[१८०], लोहशास्त्र[१८१] एवं रसशास्त्र आदि भी पतंजलि की कृतियां मानी जाती हैं ।

पतंजलि के मुख्य तीन ग्रंथों के विषय में भी मतभेद बना हुआ है । पातंजल महाभाष्य, योगसूत्र तथा चरकसंहिता ये तीनों कृतियाँ एक ही पतंजलि

---

१७७ पं गुरुपद हालदार - वृद्धत्रयी पृ. २९-३१.
१७८ पं. भगवद्दत - वै वा इति० भा. १ पृ २०७.
१७९ सांख्याकारिका की युक्तिदीपिका टीका
१८० हेमचन्द्र - अभिधान चिन्तामणि कोश की टीका
१८१ पं. गुरुपद हालदर - वृद्धत्रयी पृ. २९

की है या अनेक ? वैसैभी पतंजलि शब्द काफी प्राचीन नाम है । पाणिनि ने "उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे" (२-४-६९) सूत्रस्थ उपकादि गण में पतंजलि शब्द पढा है । आंगिरस पतंजलि का [१८२] का उल्लेख मत्स्यपुराण में मिलता है । योगदर्शन के व्यासभाष्य (३-४४) में "अयुतसिद्धावयभेदानुगतः समूहो द्रव्यमिति पतंजलिः" भी पतंजलि का उल्लेख मिलता है । उद्योतकार नागेश ने भी पतंजलि का उल्लेख इस प्रसंग में किया है । इन विविध उल्लेखों के आधार पर पतंजलि अनेक थे ऐसी धारणा होती है ।

चक्रपाणि, पुण्यराज और भोजदेव मानते हैं कि महाभाष्य चरकसंहिता और योगसूत्र किसी एक ही लेखक (पतंजलि) की कृति है । [१८३] मैक्समूलर ने योगसूत्र और निदानसूत्र का कर्ता एक ही व्यक्ति माना है । [१८४]

भारतीय साहित्यक दन्तकथा में एक श्लोक मिलता है जो इन तीनों कृतियों के कर्ता के रूप में एक ही पतंजलि को सिद्ध करता है -

"योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनिनां पतंजलिं प्रांजलिरानतो ऽस्मि ॥

संभवतः इस श्लोक का आधार भर्तृहरि रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है-

कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः समुपस्थिता : ।
चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः (वा. १-१-४८)

चरक का अर्थ भ्रमणशील अर्थात् यायावर है । यायावर गोत्र के ऋषि मंत्र विद्या एवं आयुर्वेद में पारंगत थे । किसी चरकगोत्रीय यायावर ने अग्निवेश संहिता का प्रति संस्करण किया जो चरक के नाम से प्रसिद्ध है । यायावर चरक ने पूर्वभारत के नागलोकोंमें भ्रमण किया होगा इसी कारण पतंजलि को नाग (शेष) का अवतार कहा जाता है ऐसा प्रा. के. वी. अभ्यंकर का मत है । [१८५]

प्रो. लुई रेनु (Louies Renue) मानते. हैं कि योगसूत्र एवं महाभाष्य के लेखक एक नहीं हैं । [१८६]

---

१८२ मत्स्यपुराण अ. १९५ श्लोक० २५

१८३ देखें - श्री युधिष्ठिर मीमांसक - सं. व्या. शा. इति० भा. १ पृ. ३३६

१८४ षड्गुरुशिष्य का पाठ - योगाचार्यः स्वयं कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः ।

१८५ महा प्र ख. ७ पृ. ३५२. A.S.L. पृष्ठ २३९ में उद्धृत ।

१८६ Louies Renue - I. H. XVI p. 586

इस प्रकार से विभिन्न विद्वानों के विभिन्न अभिप्राय पतंजलि के विषय में प्रश्नार्थ खडा करते हैं ।

जन्मस्थान और समय : -

पतंजलि के जन्मस्थान और समय के बारे में भी विद्वानों में एकमति नहीं है । योगदर्शन, चरक और महाभाष्य जैसै ग्रंथ का रचयिता पतंजलि वैदिक धर्म का चुस्त अनुयायी था, इसमें कोई शक नहीं है । यथार्थ प्रमाण के अभाव में अनुमान के आधार पर ही पतंजलि का जन्मस्थल, शिक्षण, अध्ययन, कार्यप्रदेश आदि के विषय में जाना जा सकता है ।

अभिजानासि देवदत्त । काश्मीरान् गमिष्यामः । तत्र सक्तून् पास्याम : । [१८७] इत्यादि उदाहरणों द्वारा पतंजलि की काश्मीर के प्रति आसक्ति देखी जा सकती है, इसके आधार पर कुछ विद्वान पतंजलि की जन्मभूमि कश्मीर मानते हैं ।

पतंजलि ने महाभाष्य के अनेक स्थानों पर पाटलिपुत्र [१८८] साकेत [१८९], कौशाम्बी, मथुरा आदि का बार बार उल्लेख किया है । इससे स्पष्ट है कि पतंजलि इन स्थानों से सुपरिचित था । संभवतः पाटलिपुत्र उनका कार्यक्षेत्र रहा हो जहाँ उन्होंने अपने जीवनका अधिकतम समय बीताया हो ।

श्री मीमांसक के कथनानुसार पाटलिपुत्र नामक अनेक नगर थे । उनके विचार से चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का कुसुमपुर और पाटलिपुत्र एक ही नगर था । वायुपुराण के अनुसार अजातशत्रु के पुत्र ''उदयी'' ने कुसुमपुर बसाया था न कि पाटलिपुत्र । [१९०]

पं. सत्यव्रत सामश्रमी के अनुसार अजातशत्रु ने शोण के तटपर 'पाटली' ग्राम में दुर्ग निर्माण कराया था, वही आगे जाकर पाटलिपुत्र बना । क्या शोण नदी के किनारे पाटलिपुत्र और कुसुमपुर अलग अलग व्यक्तियों द्वारा एक साथ नहीं बस सकते ? अतः यह सिद्ध होता है कि पाटलिपुत्र और कुसुमपुर अलग अलग नगर थे ।

---

१८७ व्या. महा. ३-२-११४

१८८ व्या. महा. २-१-१ कुतो भवान् ? पाटलिपुत्रात्
व्या. महा. २-१-१५ अनुशोणं पाटलिपुत्रम् ।

१८९ व्या. महा. ३-२-१११ अरुणद् यवनः साकेतम् ।

१९० वायुपुराण ११-३१८.

काल - पतंजलि के समय के बारे में भी विद्वानो में काफी विवाद रहा है ।

(१) पुष्यमित्रं याजयामः (महा, ३-२-१२३)

(२) पुष्यमित्रो यजते, याजका याजयन्ति (३-१-२६)

(३) पुष्यमित्र सभा, चन्द्रगुप्त सभा (१-१-६८)

आदि उदाहरणों के आधार पर श्री मीमांसक जी ने पतंजलि को श्रृंगवंशी महाराज पुष्यमित्र का समकालीन माना है । मीमांसक जी ने अनेक युक्ति पुरःसर पुष्यमित्र का काल वि. सं. १२०० वर्ष पूर्व निर्धारित करते हैं । इस विषय में उन्होंने चन्द्राचार्य को आधार बनाया है । आचार्य चन्द्र ने लुप्तप्राय महाभाष्य का पुनरुद्धार किया ।[१९१] (चा. व्या. १-२-८१) में "अजयद् जर्तोहूणान्" इस उदाहरण द्वारा जर्तराजा की हूणों पर विजय बतायी है ।, यह राजा काफी प्राचीन है । प्रो. रमेशचन्द्र मजमुदार ने इस उदाहरण को बदलकर "अजयद् गुप्तो हूणान्" पाठ बदल दिया है ।[१९२] डॉ. बेल्वेल्कर तथा विश्वेश्वरनाथ रेउ ने भी यही भूल की है ।[१९३] परन्तु उन्होंने चन्द्रगोमि के आश्रयदाता अभिमन्यु का काल वि. सं. ५०० पूर्व माना है ।[१९४] श्री मीमांसकजी मजमुदार के विचार से असहमति व्यक्त करते हुअे अपने विचार पर दृढ हैं ।

श्री गोल्डस्टुकर, भांडारकर, बोथलिंग मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वान एवं तदनुयायी ऐतिहासिक पुष्यमित्र का समय वि. सं. १५० पूर्व मानते हैं ।

हमारे विचार से "गतानुगतिको लोकः" का अनुसरण करनेवाले हमें पाश्चत्यविचारसरणी यदि समीचीन न लगे तो अपना स्वतंत्र अभिप्राय व्यक्त करने में संकोच कैसा ?

व्याकरण शास्त्र में पतंजलि का प्रदान :

पतंजलि का महाभाष्य केवल शब्दविचार का ही ग्रंथ नहीं है । उस में सिर्फ पाणिनि के सूत्र तथा कात्यायन के वार्तिकों का ही अर्थघटन नही किया गया अपि तु उसमें न्याय के बीज भी पाये जाते हैं । "सर्वेषां न्यायबीजानां

---

१९१ भर्तृहरि - वा. प. २-४८९, कल्हण - राजतरङ्गिगी त. १ श्लोक. १७६.

१९२ A.N.H.I.P. VI. p. 197

१९३ S.S.G. p. 58 भा. प्रा. रा. पृ. २८८

१९४ प्रो. मजमुदार रमेशचंन्द्र गु. सा. का. इति. भा. २ पृ. १५९.

महाभाष्ये निबन्धने'' के अनुसार महाभाष्य में दार्शनिक पक्ष की पर्याप्त चर्चा उपलब्ध है, ज्ञापक और न्याय वार्तिकों की चर्चा उपलब्ध है । इस प्रकार से दर्शन और व्याकरण का घनिष्ट सम्बन्ध सिद्ध करनेका श्रेय पतंजलि को है । उन्होंने व्याकरण को धरातल से उठाकर दर्शन की सीमासे जोड दिया । द्रव्य, गुण, जाति, आकृति, व्यक्ति आदि दार्शनिक विषयों की पर्याप्त चर्चा उपलब्ध होती है । ध्वनि, स्फोट, वर्ण, शब्दका नित्यत्व, शब्द की व्याख्या यथा - ''येनोच्चारितेनेह सास्नालांगूलखुरविषाणादिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः ।[१९५] महाभाष्य में लिंग काल, पुरुष, उपग्रह, क्रिया, साधन समास आदि असंख्य विचार प्राप्त होते हैं। इन्हीं विचारों ने व्याकरण शास्त्र में भर्तृहरि और भट्टोजि दीक्षित जैसे महान दार्शनिकोंको जन्म दिया ।

भगवान् पतंजलि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के ३९७२ ? (३९९६) सूत्रों में से १२२८ सूत्रों पर ८५ आह्निकों में महाभाष्य की रचना की है । भाष्यकार पतंजलि ने कात्यायन के एवं अन्य आचार्यो के ५००० वार्तिक सूत्रों को महाभाष्य में स्थान दिया है । पतंजलि का महाभाष्य एवं शबर तथा शंकर के भाष्यों के आधार पर विद्वानों ने भाष्य की व्याख्या देने की कोशिष की है ।

विष्णुधर्मोत्तर के तृ. खं. अ. ४ में भाष्य की व्याख्या इस प्रकार से दी गई है -

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानिच वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

अर्थात् जिस ग्रंथ में सूत्रार्थ, सूत्रानुसारी वाक्य (वार्तिक) तथा अनेक पदों का व्याख्यान किया जाता है उसे भाष्यविद् भाष्य कहते हैं ।

श्री मीमांसक जी का कहना है कि पतंजलि से पूर्व भी भाष्य ग्रंथ रचे गये थे । आकार में तथा सामग्री की दृष्टि से महान होने के कारण इसे महाभाष्य कहा जा सकता है, यथा भारत - महाभारत, कौषीतक - महाकौषीतक, ऐतरेय - महाऐतरेय आदि ।[१९६]

डॉ. सत्यकाम वर्मा नै महाभाष्य हेतु बडी सुन्दर युक्तियाँ प्रदान की है। पतंजलि के भाष्य को महा भाष्य इसलिये कहा जाता है कि -

(१) अपने महत्व के कारण ।

(२) भर्तृहरि आदि द्वारा महाभाष्य के रूप में स्वीकृत होने के कारण।

१९५ व्या. महा. १।१।१

(३) भाष्य की सीमा से आगे बढकर न्याय बीजों के समावेश के कारण इसको महाभाष्य कहा जाता है ।[१९७]

दुर्भाग्य से महाभाष्य जैसे महान ग्रंथ को दो तीन बार झंझावातों का सामना करना पडा । भर्तृहरि [१९८] के अनुसार बैजि, सौभव तथा हर्यक्ष आदि आचार्यो ने व्याकरण की उपेक्षा करके न्यायविषयक तर्कों को ही प्राधान्य दिया परिणामतः व्याकरण विषयक महाभाष्य की विषयवस्तु नष्ट हो गई, जिसका उद्धार चन्द्राचार्य ने किया ।

दूसरी बार कल्हण के अनुसार काश्मीर आदि देशों में महाभाष्य का प्रचार, प्रसार नष्ट हो गया था ।[१९९] महाराज जयापीड ने "क्षीर" नामक विद्योपाध्याय को बुलाकर महाभाष्य का पुनरुद्धार करवाया ।

श्री मीमांसक जी का मानना है कि १८वीं १९वीं शताब्दी में सिद्धांत कौमुदी लघुशब्देन्दुशेखर आदि ग्रंथों के अत्यधिक प्रचार से महाभाष्य का प्रसार प्रचार लुप्त हो गया और कौमुदी के बारे में माना जाने लगा

"कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः ।"

हमारा मानना है कि इसके पीछे मनो वैज्ञानिक कारण एवं छात्रों द्वारा परिश्रम से भागने की वृत्ति ही कारणभूत रही होगी । अन्यथा ऋषिओंकी आर्षवाणी में जो आनन्द है वह पंडितों की पांडित्यपूर्ण वाणी में कहाँ ?

पातंजल महाकाव्य की विशेषता - कात्यायन से लेकर आजतक के सभी वैयाकरणी पाणिनि को श्रद्धावनत होकर मस्तक नमाते आये हैं । हम पहले भी बता चुके हैं कि कात्यायन के अधिकांश वार्तिक खण्डनार्थ न होकर पूर्त्यर्थ हैं । जहाँ कहीं भी कात्यायन ने पाणिनि का विरोध किया है, वहाँ कात्यायन के समय में अप्राप्य प्रयोगों को बताने के लिये ही विरोध किया है । किन्तु पतंजलि इस विषय में स्वतंत्र दृष्टिकोण लेकर ही चले हैं।

वे जगह जगह पूर्व पक्ष में प्रश्न करते हैं यथा - "अयं योगः शक्योऽवक्तुम्" उत्तर पक्ष में जवाब देते हैं "एतानि अस्य प्रयोजनानि यदर्थं ग्रहणं कर्तव्यम् ।" यदि

---

१९६ सं. व्या. शा. इति भा. १ पृ. ३२७.

१९७ सं. व्यो, ड. वि. पृ. १९९

१९८ वा. प. २।४८७ २।४८८, २।४८९

१९९ रा. त.० १।४८८, ४८९

२०० सं. व्या. शा. इति. भा. १ पृ. ३५२.

पाणिनि के सूत्र को स्वीकारने में दोष दिखाई देता है तो नम्रता से बचाव करते हुअे कहते हैं – "दोषा: साकल्येन परिगणिता:," प्रतिविधेयंदोषेषु । दोष परिहार करने हेतु प्रयत्न करना चाहिये । कर्तव्योऽत्रयत्न: । इदमिह सम्प्रधार्यम् । किं वक्तव्यमेतत् । तत्तर्हि वक्तव्यम् ? न वक्तव्यम् । अस्ति प्रयोजन मेतत् । यथा न दोषास्तथास्तु । आदि शब्दों को यत्र तत्र प्रयोग करके पतंजलि पाणिनीय सूत्र का युक्तिपूर्वक स्वीकार करते हैं तथा करवाते हैं । यथा– "भूवादयो धातव:" (१-३-१) तथा "प्राग्रीश्वरान्निपाता:" (१-४-५१) सूत्र में वकार तथा रीश्वर शब्द का बडी कुशलता पूर्वक बचाव किया है । भ्वादय: शब्द की जगह भूवादय: शब्द में वकार मंगलार्थ प्रयुक्त किया गया है। "मांगलिक : आचार्य:.....मंगलार्थं: प्रर्युक्ते ।" प्रसिद्ध विद्वान गोल्डस्टुकर का मत है कि पतंजलि का महाभाष्य अन्वाख्यान ग्रंथ है । क्योंकि जहाँ कात्यायन ने सूत्र का खण्डन किया पतंजलि उस खण्डन का खण्डन करते हैं । अत: पतंजलि ने कात्यायन के आख्यान का प्रत्याख्यान तथा वार्तिक सूत्र को समझाया है अत: अन्वाख्यान कहा जा सकता है । पतंजलि ने सूत्रों के अन्वाख्यान के लिये अधिकार सूत्र, परिभाषा सूत्र, मण्डुकप्लुतिसूत्र, गोयूथ सूत्र (जो परस्पर एक दूसरे का ध्यान रखते हैं) सिंहनिष्क्रिडित सूत्र आदि विभागों में विभाजित किया है । बाहुलम्, अन्यतरस्याम् आदि का प्रयोग करके अवांछित प्रयोगो को निवारा है यथा–

सुपृतिङ्ङुपग्रहलिंगनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयडां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सो ऽपिच सिद्ध्यति बाहुलकेन ॥

महाभाष्य में लोकप्रसिद्ध न्याय विपुलसंख्या में प्राप्त होते हैं, यथा – अग्नौकरवाणिन्याय, प्रासादवासिन्याय, इतरेतराश्रय, कूपखानकन्याय, कुम्भीधान्यन्याय, एकदेशविकृतन्याय, ब्राह्मणकौण्डिन्यन्याय आदि ।

अव्यय की व्याख्या देते हुअे भाष्यकार कहते हैं –

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्" ॥ [२०१]

ध्वनि और स्फोट के विषय में पतंजलि कहते हैं –

"ध्वनि: स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते ।
अल्पो महांश्च केषांचिदुभयं तत्स्वभावत: ॥ [२०२]

इन कारिकाओं को देखकर प्रो. किलहर्न का कहना है कि आर्या, गीति,

---

२०१ व्या. महा. १।१।३९.
२०२ वहीं १।१।७०.

श्लोक, वक्त्र, विद्युन्माला, इन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, वंशस्थ आदि छंदो में बद्ध श्लोक कारिकाओं को पतंजलिने स्वयं भी रचा था, कहीं कात्यायन व्याघ्रभूति आदि की कारिकाओं को स्वसिद्धान्त की पुष्टि के लिये संग्रहित किया था एवं कहीं कहीं श्लोकों को अपने समय के विद्यमान प्रचलित साहित्य में से पतंजलि ने लिया होगा ।

पतंजलि और वैदिक व्याकरण

जैसा कि हम उपर बता चुके हैं पतंजलि का महाभाष्य एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रंथ है । "शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम् । केषां शब्दनाम् ? लौकिकानां वैदिकानां च ।" [२०३] इससे स्पष्ट है कि पाणिनीय तन्त्र में लौकिक शब्दों के साथ साथ वैदिक शब्दों का भी व्याख्यान प्रस्तुत है । शब्दानुशासन के प्रयोग को दर्शाते हुअे भाष्यकार कहते हैं – "रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्" रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्

इससे स्पष्ट है कि वेदों की, वैदिक ग्रंथो की रक्षार्थ व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है । आगे चलकर शब्द के क्षेत्र के बारे में "सर्वे देशान्तरे" वार्तिक को समझाते हुअे भाष्यकार कहते हैं कि –

"महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः । सप्तद्वीपा वसुमंती, त्रयो लोकाः, चत्वारो वेदाः, सांगाः, सरहस्या बहुधा भिन्नाः । एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशधा बाह्वृच्यं नवधा ऽऽथर्वणो वेदः । वाकोनुवाक्यम्, इतिहासं, पुराणं, वैद्यकं इत्येतावान् शब्दस्य विषयः" । ऋग्वेद की २१, अर्थवेद की नौ, यजुर्वेद की १०१, तथा सामदेव की १००८ समग्रतया ११३१ वैदिक शाखाओं का पतंजलि ने निर्देश किया है इससे स्पष्ट है कि भाष्यकार पतंजलि इन सभी वैदिक शाखाओं से सुपरिचित थे । [२०४]

पस्पशाह्निक में वैदिक मंत्रो के शुद्ध उच्चारण का महत्व दर्शाते हुअे कहते हैं – "दुष्टाञ्छब्दान् मा प्रयुंक्ष्महि इति अध्येयं व्याकरणम्" यथैव हि शब्दज्ञाने धर्मः एवमपशब्दज्ञाने ऽ प्यधर्मः"। पतंजलि को शुद्धोच्चारण अपेक्षित है । शुद्धोच्चारण एवं वेदोंकी रक्षा तभी संभव है जब स्वरविषयक ज्ञान यथोचित हो । "वृद्धिरादैच्" (१-१-१) सूत्र पर "आकारस्य तपकरणं सवर्णार्थम्" इस वार्तिक को समझाते हुअे पतंजलि कहते हैं केषाम् ?

---

२०३ वहीं १।१।१. (पश्पशाह्निक)

२०४ Dr. Bala Subramanyam M.D. SKAPV XVI to XXV

"उदात्तअनुदात्तस्वरितानाम्" यदि शिष्य स्वरविषयक ज्ञान को अन्यथा पढता हैं तो खण्डिकोपाध्याय उसे थप्पड लगा देता है, यथा - "य उदात्ते कर्त्तव्ये ऽनुदातं करोति खण्डिकोपाध्यायस्तस्मै चपेटां ददाति अन्यत् त्वं करोषीति ।"

पतंजलि ने "चित्तः" (६-१-१६३) सूत्र पर "चित्तः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम्" वार्तिक का ग्रहण किया है, उससे फलित होता है कि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय युक्त अन्त्य अक्षर को उदात्त होता है जिससे बहुच तथा अकच् शब्दों का भी समावेश हो सके, जिससे बहुभुक्तम् । बहुकृतम् । सर्वकैः । विश्वकैः। उच्चकैः आदि अन्तोदात्त सिद्ध हो सके ।

पतंजलि इस वार्तिक का खण्डन करते हुअे कहते हैं कि इसकी आवश्यकता नहीं है । "चितः" सूत्र में अकार को मत्वर्थीय मान लिया जायगा। अथवा मतुप प्रत्यय का लोप समझना चाहिये, अथवा "चितः" सूत्र को ही चित्वान् समझा जा सकता हैं । इसकी चर्चा करते हुअे पतंजलि कहते हैं - तत्तर्हि वक्तव्यम् । न वक्तव्यम् । मतुव्लोपो ऽत्र द्रष्टव्यः । अथवा अकारोमत्वर्थीयः । पूर्वनिर्देशश्च चित्वात् चितः इति ॥[२०५]

"आद्युदात्तश्च" सूत्र पर पतंजलि बताते हैं कि जिन प्रत्ययों को नियमो से बांधा हुआ है वे नियतस्वर कहाते हैं, जिनके बारे में नियम नही हैं वे आद्युदात्त, अन्तोदात्त, मध्योदात्त तथा स्वरित भी हो सकते हैं । यथा - "एवमपि येषामेव प्रत्ययानां स्वरो नियम्यते त एव नियतस्वराः स्युः । य इदानीमनियतस्वरः स कदाचिदाद्युदात्तः कदाचिदन्तोदात्त, कदाचिन्मध्योदात्तः, कदाचिदनुदात्तः, कदाचित्स्वरितः स्यात्" ।[२०६] यहाँ पतंजलि ने नियत एवं अनियत स्वरों को द्विधा विभाजित किया है । यथा - चित्, ञित्, तित्, नित्, पित्, रित्, लित् आदि नियतस्वर प्रत्यय हैं । पाणिनि ने एतदर्थ ६-१-१६३, ६-१-१९७, ६-१-१८५, ६-१-२१३, ३-१-४, ३-१-६, ६-१-२१७, ६-१-१९३ आदि सूत्र रचे हैं परन्तु जो प्रत्यय अनुबन्धयुक्त इत्संज्ञक नहीं है वे अनियत्स्वर प्रत्यय हैं, इस दृष्टि से १२८ कृप्रत्ययों में ७५ नियतस्वर प्रत्यय हैं शेष अनियत्स्वर प्रत्यय हैं ।[२०७]

पतंजलि को ऋग्वेद, यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणि, काठक, कपिष्ठल,

---

२०५ व्या. महा० ६।१।१।१६३

२०६ वहीं ३।१।३.

२०७ Dr. Bala Subramanyam M.D. SKAPV p. XIX.

कठ, माध्यंदिन, सामवेद अर्थववेद की पैप्पलाद तथा शौनक संहिताओं का पर्याप्त ज्ञान था । भले ही पतंजलि ने पाणिनि के वैदिक सूत्रों पर भाष्य नहीं लिखा तथापि कात्यायन के वैदिक वार्तिकों पर अपनी लेखनी चला करके वैदिक ज्ञान का परिचय दिया है ।

पाणिनीय सूत्र "सत्सूद्विषद्रुह...क्विप्" (३-२-६१) इस सूत्र में सद्, सू, द्विष, द्रुह आदि धातुओंमें सुबन्त के उपपद में रहने पर सोपसर्ग अथवा निरूपसर्ग अवस्था में क्विप् प्रत्यय होता है । इस सूत्र पर कात्यायन ने वार्तिक लिखा है - "सदादिषु सुब्ग्रहणम् " ॥ भाष्यकार भी इस वार्तिक पर अपनी सहमति व्यक्त करते हुअे उदाहरण देते हैं होता वेदिषत् । अतिथिर्दुरोणसत् । इस उदाहरण का मूल वेदमें देखने को मिलता है - [२०८]

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥

पाणिनिने (३-२-६१) तथा "जनसनखनक्रमगमो विट्" (३-२-६७) सूत्र रचे तब उनके मनमें ऋग्वेद का उक्त मंत्र अवश्य होना चाहिये । वेंदिषत् तथा दुरोणसत् दोनों क्विप् प्रत्ययान्त हैं । यहाँ (६-२-१३९) सूत्रानुसार प्रकृतिस्वर होता है । इसप्रकार से सामान्य नियम भी वैदिक शब्दों को सिदध करने में सहायक है ।

पाणिनि ने समिमुष्टौ (३-३-३६) सूत्र पढा है । इस सूत्र से घञ् प्रत्यय का विधान किया गया है । इस पर कात्यायनने उद्ग्राभनिग्राभौ च च्छन्दसि स्रुग्उद्यमन निपातनयोरर्थयोः । वार्तिक रचा है । इसे समझाते हुअे भाष्यकार कहते हैं कि - उदग्राभो निग्राभ इति शब्दौ छन्दसि वक्तव्यौ स्रग्उद्यमन-निपातनयोरर्थयोः । इस वार्तिक पर निम्न उदाहरण दिया है - उद्ग्राभँ च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् । उक्त वैदिक उदाहरण (तै. सं. १-१-१३-१) (मां. सं. १७-६४), (का. सं. १८-५-१५) (श.ब्रा. २-३-२२), (आ. श्रौ. सू. (३-५.५) में आया है । उद्ग्राभम्, निग्राभम् दोनों पद अन्तोदात्त हैं । इन उदाहरणों से सिद्ध है कि पतंजलि वैदिक ग्रंन्थों के मर्मज्ञ थे ।

पाणिनीय सूत्र "एरच" (३-३-५६) सूत्र से अच् प्रत्यय का विधान किया गया है । कात्यायनने इस सूत्र पर "जवसवौ छन्दसि वार्तिक रचा है। इस वार्तिक का भाष्य करते हुअे पतंजलि कहते है कि - "जवसवौ छन्दसि"

---

२०८ ऋग्वेद - ४ / ४० / ५

वक्तव्यौ''। उर्वोरस्तु मे जवः । अयं मे पंचौदनः सवः । भाष्यकार द्वारा दिया हुआ यह उदाहरण (पै.शा. की अथर्व सं. २०-३६-७) (८-१९-३-९) में मिलता है ।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि पतंजलि भी पाणिनि और कात्यायन की तरह श्रोत्रिय थे ।[२०९]

५. चन्द्रगोमि

पाणिनीय एवं कातन्त्र व्याकरण के आधार पर आचार्य चन्द्रगोमि ने एक नये स्वतन्त्र व्याकरण की रचना की, जिसमें वे पाणिनि से प्रभावित तो हुअे हैं उन्होंने पातंजल महाभाष्य से भी पर्याप्त सहायता ली थी ।

पतंजलि के प्रकरण में हम देख चुकें हैं कि बैजि, सौभव तथा हर्यक्ष द्वारा विप्लुतप्राय महाभाष्य का चन्द्राचार्य ने ही उद्धार किया । भर्तृहरि और कल्हण के अनुसार काश्मीर के महाराजा अभिमन्युने ही आचार्य चन्द्र को महाभाष्य के पुनरुद्धार का काम सोंपा था ।[२१०]

संभवतः महाभाष्य का पुनरुद्धार करते समय उन्होंने पाणिनि, कात्यायन तथा अनेक आचार्यो के व्याकरण का आमूल अभ्यास किया होगा, उसीके फलस्वरूप उन्हें चान्द्रव्याकरण रचने की प्रेरणा प्राप्त हुई हो ।

आचार्य चन्द्र के जीवन के विषय में परिचय उपलब्ध नहीं होता तथापि यह आचार्य चन्द्राचार्य, चन्द्रगोमि चान्द्र के नाम से जाना जाता है ।

चन्द्राचार्य कश्मीरनरेश अभिमन्यु का समकालिक था । महाराज अभिमन्यु की आज्ञा से ही आचार्य चन्द्रने महाभाष्य का पुनरुद्धार किया था । पाश्चात्य विद्वान महाराज अभिमन्यु को ई. स. पूर्व ४०० से ई. स. ५०० तक में मानते हैं । अष्ट अथवा नौ वैयाकरणीयों में चान्द्र की गणना होती है । महाभाष्य का पुनरुद्धारक होने से आचार्य चन्द्र पतंजलि के पश्चात् हुअे थे इसमें काई शक नहीं है । पतंजलि का काल ई.स. पूर्व १५० वर्ष हमने माना है, पतंजलि और चन्द्र के बीच अनेक भाष्यकार तथा टीकाकार हुअे थे अतः पतंजलि और चन्द्रचार्य के बीच २००-३०० वर्षका अन्तर होना स्वाभाविक है । इस दृष्टिसे कल्हण के अनुसार महाराज अभिमन्यु और उनके आश्रित चन्द्र का समय ई. स. पूर्व ५० वर्ष मानता युक्तसंगत होगा । कीथने चन्द्र का समय ई. स. ३००

---

२०९ Dr. Bala Subramanyam M.D. SKAPV Intro. XXI

२१० वा. प. २/४/८१ से ४८३, रा. त. १-१७६

माना है । बिल्फर्ड ई. स. पूर्व ४२३. बोथलिंग ई. स. पूर्व १०० वर्ष, स्टाईन ई. स. ४००-५०० में अभिमन्यु तथा आचार्य चन्द्र को रखते है । [२११]

आचार्य चन्द्र के जन्मस्थान के विषय में भी आधारभूत प्रमाण उपलब्ध नहीं होता तथापि चान्द्र व्याकरण के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि वे बंगदेशीय थे । इसके लिये निम्नप्रमाण प्रायः सभी विद्वान देते हैं -

(१) प्रत्याहारों में ''बश्'' प्रत्याहार पढ़ते हुअे वे उसे पुनर्वश कहते हैं क्योंकि बंगला लिपि में व और ब के लिये लिपि संकेत एक ही है ।

(२) आचार्य चन्द्र ने वकारान्त एवं बकारान्त धातुओं को साथ साथ पढ़ा है, अतः स्पष्ट है कि चन्द्राचार्य बंगदेशीय थे ।

(अ) प्रायः अधिकांश विद्वान चन्द्रगोमि को बौद्ध मतावलम्बी मानते हैं इसके लिये चान्द्र व्याकरण का मंगलश्लोक द्रष्टव्य है -

सिध्दं प्रणम्य सर्वज्ञं सर्वीयं जगतो गुरुम् ।

लघुविस्पष्ट संपूर्णमुच्यते शब्दलक्षण् ॥

इस श्लोक में सिद्ध और सर्वीय गुरु को नमस्कार किया गया है । डॉ. बेल्वल्कर का मानना है कि उक्त शब्द बौद्ध धर्म में ही प्रयुक्त होते हैं ।

(आ) आचार्य चन्द्र को बौध्द मानने का दूसरा कारण चान्द्र व्याकरण में वैदिक व्याकरण का अभाव है । [२१२]

(इ) चन्द्रगोमि को बौध्द मानने का तीसरा कारण चान्द्र व्याकरण के अन्त में ''शुभमस्तु सर्वजगताम्'' आशीर्वादात्मक वाक्य है । इन तीन कारणों की असत्य कल्पना के आधार पर उन्हें बौध्द सिध्द करने का प्रयास किया गया है ।

भ्रम का निरसन - (१) सिध्द और सर्वीय शब्द के आधार पर आचार्य चन्द्र को बौद्ध नहीं कहा जा सकता । क्योंकि वैदिक परम्पराओंमें भी ''सिध्द'' सर्वीय जैसे शब्द प्राप्त होते हैं । महाभाष्य में ''सिध्दे शब्दार्थ सम्बन्धे'' वार्तिक के आधार पर कात्यायन और पतंजलि को क्या हम बौद्ध कहेंगे । ''सिद्धं प्रणम्य०'' मंगलश्लोक से पूर्व ''नमो वागीश्वराय'' लिखा गया है इस कारण

---

२११ द्दष्टव्य नि. लो. पृ. ६५.

२१२ Belvalkar S.K. S.S.G. p. 59

से हमें उन्हें वैदिक ही समझना चाहिये ।

(२) चान्द्रव्याकरण में स्वर और वैदिक विषयों के अभाव के कारण भी उन्हें बौध्द सिद्ध नहीं किया जा सकता । वस्तुतः षष्ठाध्याय तक उपलब्ध चान्द्रव्याकरण अधूरा है । डॉ. बेल्वलकर तथा एस. के. डे ने षष्ठाध्याय के अन्त में "समाप्तं चेदं व्याकरणं शुभम्[२१३] पाठ को देखकर उक्त कल्पना कर ली । वस्तुतः यह कल्पना मिथ्या है, चान्द्रव्याकरण में छः अध्याय न होकर आठ अध्याय थे । श्री मीमांसक जी ने अनेक निष्कर्षों के आधार पर निम्न प्रमाण दिये हैं -

(१) "व्याप्यात् काम्यच्" (१-१-२३) सूत्र की वृत्ति में "चकारः सतिशिष्टस्वरबाधनार्थः" - पुत्रकाम्यति । यह सूत्र तभी प्रवृत्त हो सकता है जब इस व्याकरण में स्वर का प्रावधान हो ।

(२) चान्द्रवृत्ति (१-१-१०८) के "जनिवधोरिगुपान्तानां च स्वरं वक्ष्यामः" इस सूत्र में स्वरविधान करने की प्रतिज्ञा की गई है ।

(३) "लिपो नेश्च" (१-१-१४५) सूत्र की वृत्ति में "स्वरविशेष-मष्टमेवक्ष्यामः" इससे सिद्ध है कि चन्द्राचार्य ने चान्द्रव्याकरण में आठ अध्याय रचे थे एवं अष्टमाध्याय में स्वरविधानप्रक्रिया का स्वीकार किया था ।

(४) चान्द्रपरिभाषा पाठ में एक परिभाषा "स्वरविधि व्यंजनविद्यमानवत्" (चा. परि. ८६, परिभाषा सं. पृ. ४८) उक्त परिभाषा बिना स्वर के निष्प्रयोजन है अतः सिद्ध है कि चन्द्राचार्य ने आठवे अध्याय में स्वर विधान किया होगा और सातवें अध्याय में वैदिक सूत्र रचे होंगे ।

चन्द्रगोमि को बौद्ध मानने का तीसरा कारण "शुभमस्तुसर्वजगताम्" दिया गया है, इस आशीर्वादात्मक वाक्य से हर्गिज सिद्ध नहीं होता कि चन्द्रगोमि बौद्ध थे । प्रायः सभी प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में भी आशीर्वादात्मक बचन पाये जाते हैं ।

चान्द्रव्याकरण के अन्तिम दो अध्याय लुप्त होने का कारण बंगदेश में अध्येता स्वरप्रकरण को अनावश्यक समझकर छोड देते थे । वैसे भी बङ्गदेश में लौकिक व्याकरण ही लोकप्रिय रहे हैं ।[२१४] अतः स्वरविधायक एवं वैदिक सूत्र विधायक सूत्रों की उपेक्षावृत्ति से अन्तिम दो अध्याय नष्ट हुओ होंगे ।

२१३ Belvalkar S.K. S.S.G. p. 59; De S.K. IHQ June 1938 p. 238
२१४ डॉ. वर्मा सत्यकाम - सं. व्या. उ. वि. पृ. ३५०.

चान्द्रव्याकरण की विशेषताएँ :-

चान्द्रव्याकरण के अध्ययन से उसकी दो विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है -

(१) चान्द्र व्याकरण - लघु - विस्पष्ट - संपूर्ण है ।

(२) चान्द्रव्याकरण - असंज्ञक व्याकरण है ।

लघु - विस्पष्ट - सम्पूर्णः -

चान्द्रव्याकरण की स्वोपज्ञवृत्ति के आरंभ में लिखा है कि -

आचार्य चन्द्र ने स्व व्याकरण को लघु-विस्पष्ट तथा संपूर्ण कहा है । तदर्थ कारण देते हुअे श्री मीमांसक जी कहते हैं कि - [२१५]

लघु (१) पतंजलि ने जिन पाणिनीय सूत्रों को निर्दोष बताया चन्द्राचार्यने उसे स्वीकार कर लिया ।

(२) जिन पाणिनीय सूत्रों का पतंजलि ने प्रत्याख्यान किया चन्द्राचार्यने उसे छोड़ दिया ।

(३) पतंजलि के सिवा भी उन्होंने अन्य ग्रन्थकारों का आश्रण लिया। आचार्य चन्द्र के व्याकरण को पूर्णरूपेण लघु कहने में हम असमर्थ हैं क्योंकि उसमें भी पाणिनि की तरह आठ अध्याय थे, (सम्प्रति छ : प्राप्त होते हैं) उन्होंने भाष्यवार्तिको का उपयोग किया है, परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किया है जिसके कारण कहीं कहीं संक्षिप्तता प्रतीत होती है तो अतिरिक्त वक्तव्य के कारण गुरुता का भी भास होता है । इसके पीछे एक कारण यह भी है कि पाणिनि की लघ्वी और महती संज्ञाओं का त्याग करके लम्बे प्रयोगों का प्रयोग लघुता को ठेस पहुँचाता है ।

विस्पष्ट - आचार्य चन्द्र ने विस्पष्टता हेतु अन्यतरस्याम्, बहुलम्, वा, विभाषा, लोप, लुक्, लुप् आदि का प्रयोग उन्होंने अपने व्याकरण में न्यूनातिन्यून किया है अतःइसे विस्पष्ट कहने का भ्रममात्र है । आचार्य चन्द्र के विचार से उक्त विभाषा, अन्यतरस्याम् आदि के प्रयोग से अस्पष्टता उत्पन्न होती है। परन्तु हमारा विचार है कि शतशः ऐसे प्रयोग हैं जिनका पुनरावर्तन न हो तदर्थ इन शब्दप्रयोगों का विधान किया जाता है एकबार इसकी गुत्थी सुलझ जाती है फिर अध्येता को समझने में दुरुहता प्रतीत नहीं होती ।

---

२१५ श्री मीमांसक युधिष्ठिर - सं. व्या. शा. इति. भा. १ पृ. ५७१.

सम्पूर्ण - चान्द्रव्याकरण को चन्द्राचार्य सम्पूर्ण इसलिये कहते हैं कि इसमें धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और लिंगानुशासन को भी स्वव्याकरण में एक ही जगह समाविष्ट किया है अतः यह सम्पूर्ण है । चान्द्रव्याकरण लघु - विस्पष्ट तथा सम्पूर्ण होने के बावजूद भी यह व्याकरण पाणिनीय अष्टाध्यायी की तरह लोकप्रिय् नहीं हो सका इस हकिकत से हम आँख-मिचौली नहीं कर सकते।

असंज्ञक व्याकरण

चान्द्रवृत्ति (२-२-८६) और "वामनीय लिंगानुशासन वृत्ति" पृ.७ में चान्द्रव्याकरण की विशेषता बताते हुअे लिखा है कि - "चन्द्रोपज्ञमसंज्ञकं व्याकरणम्" अर्थात् किसी परिभाषिक संज्ञा का विधान न करना ही चान्द्र व्याकरण की विशेषता है । इससे स्पष्ट है कि चन्द्राचार्य अपने व्याकरण को असंज्ञक घोषित करते हैं । किन्तु असंज्ञक होते - हुअे भी इस व्याकरण में अनेक संज्ञाओं का निर्देश पाया जाता है । यथा - ङित्, शित्, टित्, कित्, मित् उपान्त (उपधा) ससंख्य (सुबन्त), असंख्य (अव्यय), लुक्, लोप आदि। पाणिनि और चान्द्र की संज्ञाओं में अन्तर सिर्फ इतना है कि पाणिनि संज्ञा की परिभाषा दिये बिना उसका प्रयोग नहीं करते जबकि चन्द्र बिना व्याख्या के ही उसे अपना लेते हैं । क्या उपान्त, सुप् आदि पद संज्ञा के अर्थ में प्रयुक्त होने पर भी उन्हें हम असंज्ञक कह सकते हैं ? आचार्य चन्द्र लाघव एवं विस्पष्ट के चक्कर में पड़कर तथा असंज्ञक कहलवानेकी लालच में सचमुच विषमता में ही फँस गये हैं ।

उन्होंने "आदिरिता समध्यः"[२१६] सूत्र में 'इता' का पाठ करते हैं परन्तु इत्संज्ञा की व्याख्या "अनंशचिह्नमित्" [२१७] सूत्र में देते हैं । इसीप्रकार "उता सवर्गः" (१-१-२) सूत्र का विधान करके उत् का अर्थ तपर के रूप में "ता तत्कालः" (१-१-३) सूत्र द्वारा बाद में निर्देश करते हैं । इसी तरह से "दोऽपः" (१-१-४) सूत्र द्वारा 'घु' संज्ञा का निर्देश न करते हुअे भी "दा" को संज्ञा की भाँति ही वे पढ़ते हैं । इसीप्रकार से "व्याप्य" जैसी परिभाषा का अर्थ दिये बिना चान्द्र बार बार पुनरावर्तन करते हैं । उक्त परिभाषा का उन्होंने "कातन्त्र"की परिभाषा "आप्य" के अनुकरण के आधार पर अपनाया है । अन्यत्र (१-१-७५) में वे पुनरावर्तन के रूपमें "आप्यात्" का ही प्रयोग करते

---

२१६ चा व्या. १-१-१

२१७ वहीं १-१-५

हैं । ऐसा करने से हम पहले ही बता चुके हैं कि चान्द्रव्याकरण सरल न होकर जटिल ही बन गया है ।

निष्कर्ष - चन्द्राचार्य ऋक्प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों से सुपरिचित थे, अच् प्रत्याहार की जगह अष् प्रत्याहार ऋक्प्रातिशाख्य में मिलता है, फिट् सूत्रों में भी शान्तनवाचार्य ने ''अच्'' की जगह ''अष्'' प्रत्याहार का व्यवहार किया है इससे प्रतीत होता है कि आचार्य चन्द्र पाणिनि सिवा के आचार्यो से भी सुपरिचित थे । यद्यपि आचार्य चन्द्र ने ''ऐऔच्'' प्रत्याहार में ''अच्'' प्रत्ययका पाणिनि के आधार पर ही ग्रहण किया है तथापि कातन्त्र व्याकरण का उनपर काफी प्रभाव रहा है । चान्द्रव्याकरण में आचार्य चन्द्र ने पाणिनि के प्रत्याहारों का यथातथ रूपेण स्वीकार किया है । संभवतः प्रत्याहार पठन की व्यवस्था पाणिनि सिवा के व्याकरणों मेंभी थी, फिर चान्द्र अछूते कैसे रह सकते ?

व्याकरण के शेष अंग -

किसी भी व्याकरण का सम्पूर्ण होना तभी कहा जा सकता है जब धातुपाठ, उणादि कोश, गणपाठ, लिंगानुशासन आदि का उस व्याकरण में विधान किया गया हो । चन्द्र से पूर्व अधिकांश आचार्योने पंचांग व्याकरण का निर्देश किया है ।

आचार्य चन्द्र ने भी चान्द्रव्याकरण में धातुपाठ, गणपाठ उणादिकोष एवं लिंगानुशासन का पठन किया है ।

धातुपाठ - जर्मन् विद्वान् लीबिख ने इसका शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया था । श्री मीमांसक जी लीबिख के संस्करण में पर्याप्त अशुद्धियाँ पाते हैं ।[२१८] चान्द्रधातुपाठ पाणिनीय धातुपाठ के आधार पर ही रचा गया था । इस पर काशकृत्स्न धातुपाठ का भी प्रभाव था । पूर्णचन्द्र और कश्यपभिक्षु ने इस धातुपाठ पर वृत्ति लिखी थी ।

चान्द्रधातु पाठ ९ गणों में विभक्त है । यथा - (१) भूवादिगण (६३८ धातुएँ), अदादि गण (६२ धातुएँ), जुहोत्यादि गण (१२२ धातुएँ); दिवादि गण (२५ धातुएँ), स्वादि गण (१२१ धातुएँ), तुदादि गण (२३ धातुएँ), रुधादि गण (९ धातुएँ), तनादि गण (४८ धातुएँ) क्र्यादि गण में (१०५ धातुओं का विधान किया गया है ।)

उणादिकोश : - पाणिनि के उणादिकोश के आधार पर ही चन्द्राचार्यने

---

२१८ द्रष्टव्य सं. व्या. शा. इति. भा. २ पृ. १०१-१०२.

अपने उणादिकोष का सृजन किया था । इसके पीछे उनका उद्देश्य पाणिनीय व्याकरण की संशुद्धि और पूर्णता रहा होगा तथापि इसमें वे सफल नहीं हो पाये । उणादिकोष तीन पादों में सम्पूर्ण हुआ है । इसका प्रथम सूत्र "उणादय" है, तथा प्रथम सूत्र के अन्तर्गत उन्होंने "कृवा पाजिमि स्वदि साधि अशूंभ्य उण्" सूत्र का विधान किया है । प्रथम पाद में ९५ सूत्र हैं । द्वितीय पादमें ११९, तृतीय पाद में ११४ सूत्रों का विधान किया गया है । संभवतः पाणिनि से पूर्व के आचार्य त्रिपादी उणादिकोष ही पढा करते थे । अतः चन्द्राचार्य ने भी त्रिपादी उणादिकोष का ही विधान किया होगा ।

गणपाठ - आचार्य चन्द्रने अपने से पूर्ववर्ती सभी आचार्यो के गण पाठों के अध्ययन के पश्चात् ही अपने गणपाठ का प्रणयन किया है । उन्होंने पाणिनि का अन्धानुकरण नहीं किया । महाभाष्य में गणविषयक पाठभेद प्राप्त होते हैं उसीके आधार पर आचार्य चन्द्रने भी गणों के कुछ नाम बदले हैं । आचार्य चान्द्र का गणपाठ निम्नप्रकारेण पाया जाता है -

(१) चन्द्र ने पाणिनि और कात्यायन द्वारा सुझाये गणों को एक कर दिया है । यथा - (क) ऊषादि (४-२-१२७) गण में पाणिनीय सूत्र तथा वार्तिक "रप्रकरणे"....उपसंख्यानम् (५-२-१०७) को मिलाकर बनाया है ।

(ख) कृष्यादि (४-२-११६) में पाणिनीय सूत्र (५-२-११२-११३) तथा वलच् प्रकरणे ऽन्येभ्योऽपि दृश्यते (५-२-११२) वार्तिक के आधार पर बनाया है ।

(ग) केशादि (४-२-११९) गण में पा. सू. (५-२-१०९) तथा "व प्रकरणे ऽन्येभ्योऽपि दृश्यते" (५-२-१०९) वार्तिक के आधार पर केशादि गण बनाया है ।

(२) आचार्य चन्द्रने कुछ नये गण पढ़े हैं यथा (अ) वेणुकादि गण (३-२-६१) ऋत्वादि गण (४-१-१२४) हिमादि (४-२-१३६)

(३) आचार्य चन्द्र ने लाघवार्थ सिन्धवादि (३-३-६१) तथा तक्षशिलादि ४-३-९३ गणों को मिला दिया है । कथादि (३-४-१०४) में कथादि ४-४-१०२ तथा गुडादि (४-४-३०३) गणों को एक कर दिया है ।

(३) कात्यायन आदि वार्तिककारों द्वारा निर्दिष्ट शब्दों को भी गण का रूप दिया है, यथा -

(अ) व्यासादि गण (२-४-२१) कम्बोजादि (२-४-१०४)

क्षीर पुत्रादि (३-१-२४) देवासुरादि (४-१-१३३)

(४) पाणिनि के कुछ गण छोड दिये गये हैं -

(क) शौण्डादि गण (२-१-४०) राजदन्तादि (२-२-३१)

पलाशादि (४-३-१४१) रसादि (५-२-९५)

(५) चन्द्राचार्य ने लाघवार्थ पाणिनीय गणों के अधिकाक्षर आदि पद को हटाकर लघु पद रखा है । यथा - अपूपादि - यूपादि, इन्द्रजननादि - शिशुक्रन्दादि, किंशुलकादि - अंजनादि, अनुप्रवचनादि - उत्थापनादि ।

आचार्य चन्द्र ने कुल २२६ गणों का परिगणन किया है ।

लिंगानुशासन -

हैमलिंगानुशासन के स्वोपज्ञविवरण तथा सर्वनन्द के अमरटीका सर्वस्व आदि ग्रन्थों में चान्द्रलिंगानुशासन का उल्लेख मिलता है ।

सर्वानन्द द्वारा उद्धृत पाठ -

धारान्धकारशिखसहस्रांगारतो रणाः इति पुंन्नपुंसकाधिकारे चन्द्रगोमी [२१९] (भा. २ पृ. ४७)

तथा च चन्द्रगोमी ईदूदन्ता च एकाच्च इन्दन्तागांनिदेहिनः इति । (भा. ४-१७४)

इससे स्पष्ट है कि चन्द्रगोमि का लिंगानुशासन छन्दोबद्ध था जो इस समय अप्राप्य है ।

वर्णसूत्रपरिचय -

आचार्य चन्द्रगोमिने वर्णोच्चारण शिक्षा की तरह से ही उच्चारण हेतु "वर्णसूत्र परिचय"नामक लघुकाय ग्रन्थ लिखा था । जिसमें स्थान, करण, प्रयत्न, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, बाह्य, अल्पप्राण, महाप्राण, सानुनासिक, निरनुनासिक आदि स्थानी वर्णों के उच्चारण की चर्चा की है । इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है - "इति चन्द्रगोमि कृतं वर्णसूत्रं समाप्तम्"[२२०]

६. वामन - जयादित्य (वृत्तिग्रन्थ)

अष्टाध्यायी की रचना के पश्चात् वृत्तिग्रन्थ लोकप्रिय होने से उसका सूक्ष्म अध्ययन अभ्यासीयों में होने लगा । अष्टाध्यायी के सूत्रों को छात्र यथार्थरूपेण

---

२१९ द्रष्टव्य - सं. व्या. शा. इति श्रा.2 पृ. २५९

२२० द्दष्टव्य - चा. व्यां. (प्रका. रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर)

समझ सके तदर्थ पाणिनि ने स्वयं वृत्ति लिखी थी । इसके सिवा श्वोभूति, व्याडि, वररुचि, देवनन्दी, चुल्लिभट्टि, निर्लूर चूर्णि आदि आचार्योंने व्याकरण जैसे गहन विषय को समझाने के लिये अपनी वृत्तियाँ लिखी थी किन्तु आज उनमें से एक भी वृत्ति प्राप्त नहीं है । पतंजलि के प्रकरण में हम बता चुके हैं कि पतंजलि का अपर नाम चूर्णि है और उन्होंने भी अष्टाध्यायी पर चूर्णि नामक वृत्ति लिखी थी । श्वोभूति, व्याडि तथा कुणि वृत्ति का उल्लेख क्वचित् क्वचित् प्राप्त होता है ।

काशिका वृत्ति के रचयिता जयादित्य तथा वामन आरंभ में ''वृत्तौ भाष्ये०'' शब्द द्वारा सूचित करते हैं कि भाष्य की रचना से पूर्व पाणिनीय सूत्रों पर अनेक आचार्यों ने वृत्तियाँ लिखी थी । भर्तृहरि ने 'महाभाष्य दीपिका' में अन्येषां दर्शनम्, अपरेषां दर्शनम् शब्दों द्वारा अनेक वृत्तिकारों के मतों को प्रदर्शित किया है । इससे स्पष्ट है कि महाभाष्य और काशिका से पूर्व सदीयों से वृत्तियाँ लिखी जाती थी ।

महाभाष्य और दीपिका के पश्चात् सर्वाधिक समादृत एवं सम्मानित यदि कोई वृत्ति है तो वह है ''काशिकावृत्ति'' जिसने पाणिनीय व्याकरण के संक्षिप्त पठन-पाठन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

काशिकावृत्ति के रचयिता जयादित्य - वामन जन्म और कर्तृविषयक विवादों से मुक्त नहीं है ।

दो लेखक - सम्प्रति जो काशिकावृत्ति प्राप्त होती है उसके दो लेखक माने जाते हैं वामन और जयादित्य । कुछ विद्वान काशिका को एक ही लेखक की कृति मानते हैं । यदि दो लेखकों की यह कृति है तो जयादित्य ने कितने अध्याय लिखें तथा वामन ने कितने ? इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद बना हुआ है । अब इस विषय में संक्षिप्त से हम विचार करेंगे-

एक ही लेखककी कृति

(१) चीनी यात्री इत्सिंग अपनी भारतयात्रा के प्रसंग में जयादित्यको काशिका का लेखक बताता है । [२२१]

(२) भाषावृत्ति के व्याख्याता सृष्टिधराचार्य ने भी काशिका के रचयिता के रूपमें ज्यादित्य का ही स्मरण किया है ।

दोनों लेखक - (१) हरिदीक्षित ने प्रौढमनोरमा की 'शब्दरत्न' व्याख्या

---

२२१. इत्सिंग की भारतयात्रा पृ. २६९.

में प्रथम-द्वितीय पंचम तथा षष्ठाध्याय को ज्यादित्य विरचित एवं शेष अध्यायों को वामन विरचित माना है । [२२२]

(२) पं. बालशास्त्री द्वारा संपादित काशिका में प्रथम चार अध्यायों में जयादित्य का नाम छपा है एवं अन्तिम चार अध्यायों में वामन का नाम छपा है ।

(३) अधिकांश प्राचीन ग्रन्थकारों ने जो प्रमाण दिये हैं उनसे विदित होता है कि प्रथम पांच अध्याय ज्यादित्य विरचित है और अन्तिम तीन अध्याय वामनविरचित है । ऐसे ग्रन्थकारों में परिभाषावृत्ति के लेखक सीरदेव, भाषावृत्ति के लेखक पुरुषोत्तमदेव मुख्य हैं । [२२३]

जयादित्य वामन की अलग-अलग संपूर्ण वृत्तियाँ -

न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि और पदमंजरीकार हरदत्त मानते हैं कि जयादित्य - वामन ने अलग अलग संपूर्ण वृत्तियाँ लिखी थी । [२२४]

आधुनिक विद्वानों में प्रो. श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, [२२५] प्रो. विन्टरनिट्ज ने वर्तमान काशिका को वामन तथा जयादित्य दोनों की सम्मिलित कृति माना है । पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने भी वामन तथा जयादित्य की पृथक् पृथक् संपूर्ण वृत्तियों का प्रतिपादन करते हुऐं उक्त विचार ही प्रकट किये हैं ।

''काशिका''नाम का सार्थक्य -

(१) काशिका के व्याख्याता हरदत्त[२२७] तथा रामदेव मिश्रने[२२८] लिखा है कि ''काशिका देशतोऽभिधानम् । काशिषु भवा ।''

''काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ'' (४-२-३३६) सूत्र द्वारा ठञ् प्रत्यय के विधान

---

२२२. श. र. व्याख्या - भा. ३ पृ. ५०४ प्रथमद्वितीयपंचमषण्ठा जयादित्य कृत वृत्तयः इतरे वामनकृतवृत्तयः इत्यभियुक्ताः ।

२२३. द्रष्टव्य - सं व्या. शा. इति० भा. १ पृ. ४५९
सं. व्या. उ. वि. पृ. २७०

२२४. द्रष्टव्य - सं. व्यी. शा. इति. भा-१ पृ. ४६४.

२२५. Prof shrish chandro chakravarti - Nyas P. I. P 47
footnote-varman and Joyaditya are the Joint outhors of the kasika.

२२६ Prof Winternitz - HIL Vo III Pt + II Pt. 433

२२७ पद मं - भा. १ पृ. ४

२२८ वृत्ति प्रदीप के आरंभ में ।

से काशिका शब्द की निष्पत्ति हुई है ।

उज्वलदत्तने उणादिवृत्ति पृ. १७३) तथा श्रीधराचार्यने भाषावृत्ति टीका (८-४-६७) में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है ।

इसीप्रकार से "इष्ट्युपसंख्यानवती" कारिका की व्याख्या में न्यासकारके मत से देशवाची शब्द न होकर काशिका गुणवाची शब्द है । सृष्टिधराचार्य कहते हैं - "काशयति प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका जयादित्य विरचिता वृत्तिः। काश्यां भवा वा ।"

काशिका का अपर नाम (एकवृत्ति) :-

इसीप्रकार से काशिका को एकवृत्ति के नाम से भी जाना जाता है । सृष्टिधराचार्य (भाषावृत्ति १-१-१६) सूत्र में एकवृत्तौ इति काशिकायां वृत्तौ इत्यर्थः)

काशिकावृत्ति लौकिक एवं वैदिक शब्द प्रयोगों से युक्त अष्टाध्यायी की वृत्ति होने से काशिका को एकवृत्ति कहा जाता है ।

श्री मीमांसक जी का मत है कि 'भागवृत्ति' में पाणिनीय सूत्रों को लौकिक एवं वैदिक भागों में बाँटकर उनकी व्याख्या की गई है जब कि काशिका में संकीर्ण रूप में ही सूत्रों की व्याख्या की गई है अत एव 'भागवृत्ति' की प्रतिद्वन्द्विता के कारण ही काशिका के लिये 'एकवृत्ति' शब्द का प्रयोग प्रचलित है ।[२२९]

वृत्ति का अर्थ देते हुअे न्यासकार कहते हैं -

"पाणिनि प्रणीतानां सूत्राणां विवरणम्" ।

काशिकावृत्ति का महत्त्व एवं विशेषताएँ :-

(१) काशिका से पूर्वतनी वृत्तियों में गणपाठ का पठन नहीं किया गया जबकि काशिका वृत्तिमें यथास्थान गणपाठ का समावेश किया गया है ।[२३०]

(२) 'महाभाष्य दीपिका' की भाँति ही काशिकावृत्ति में प्राचीन आचार्यों के नामोल्लेख के साथ एवं बिना नाम के उनके मतों को उद्धृत किया गया है, जिनका उल्लेख अन्यवृत्तियों में या भाष्यमें भी नहीं मिलता ।

(३) काशिका में अनेक वृत्तियाँ एवं मत प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों से

---

२२९ सं. व्या. शा. इति. भा. ३ पृ. ४३०
सं. व्या. उ. वि. पृ. २७४.

२३० हरदत्त - पद. मं. भा. १ पृ. 4

लिये गये हैं । परिणामतः काशिकावृत्ति अनेक स्थलोंपर महाभाष्य से भिन्न पड़ती है । आधुनिक विद्वान महाभाष्य से भिन्न मत के कारण इन पाठों को हेय समझते हैं । वस्तुतः यह पाठान्तर ही है ।

(४) काशिकावृत्तिने पाणिनि के एक भी सूत्र को त्याज्य समझा नहीं है । उसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या की गई है ।

(५) इस वृत्ति में दिये गये उदाहरण - प्रत्युदाहरण प्राचीन वृत्तियों के आधार पर हैं । जिससे प्राचीन वृत्तियों का भी परिचय प्राप्त होता है । [२३१]

इष्टियों के रूप में प्राचीन परंपरा के आधार पर इसमें अनेक वार्तिक एवं कारिकाएँ पढी हैं ।

काशिकावृत्ति पाणिनीय सूत्रों पर जितने भी पुराने साक्षात्सम्बद्ध या असम्बद्ध ग्रन्थ लिखे गये थे सबके तत्त्व को उपन्यस्त करने की दृष्टि से लिखी गई थी । वृत्तिकार स्वयं कहता है -

वृत्तौ भाष्ये तथा धातु नाम पारायणादिषु ।
विप्रकीर्णस्य तन्त्रस्य क्रियते सारसंग्रहः ॥

काशिकाकार ने प्राचीन वृत्ति ग्रन्थों में से, महाभाष्य में से, नाम पारायण अर्थात् गणसमूहात्मक गणपाठ, धातुपाठ आदि व्याकरण विषयक सिद्धान्तों का सारसंग्रह यहाँ दिया गया है । इष्टि अर्थात् भाष्य वचन और उपसंख्यान अर्थात् वार्तिकों का यहाँ संग्रह किया गया है । गणों का शुद्ध पाठ दिया गया है, गूढार्थ सूत्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

काशिका में ऐसे शतशः सूत्र है जहाँ पूर्वाचार्यों के मतों का 'केचित्तु', 'अन्ये' आदि शब्दों द्वारा मतान्तर दर्शाया गया है । मतमतान्तर हेतु कुछ सूत्रों की वृत्तियाँ दृष्टव्य है । हम यहाँ लाघवार्थ सूत्रक्रमांक ही देकर सन्तुष्टि लेंगे-

१-१-४५, २-२-६६, ३-१-१३७, ३-२-१२४, ४-१-११४, ५-१-१२, ५-४-३०, ६-२-२६, ६-३-७०, ७-१-१७, ८-२-२५, ८-४-४२ आदि । उपर्युक्त सूत्रों में अधिकतर पक्षान्तरोपन्यासार्थ, कुछ खण्डनार्थ, स्वमतस्थापनार्थ काशिकाकार ने पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है ।

काशिकावृत्ति में प्राचीन आचार्यों के मतों के संगोपनार्थ महाभाष्यकार के मत से विपरीत मत की काशिकाकार ने स्थापना की है । निदर्शन हेतु

---

२३१ वहीं (२-१-५, २-१-४७)

कुछ सूत्र दृष्टव्य हैं -

१-१-२९, ३-१-९६, ३-२-१३८, ४-१-१५०, ६-३-८४, ७-२-१०२ आदि । काशिकावृत्ति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है पाणिनि के प्रति श्रद्धा । महाभाष्य में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ वार्तिककार या भाष्यकार ने पाणिनीय सूत्रों में रूपान्तरण का अथवा तो खण्डन का निर्देश किया है । काशिशकार ने इस प्रवृत्ति की बिलकुल अवज्ञा की है । पाणिनि के प्रति इससे बढकर और क्या श्रद्धा हो सकती है ।

शैली -

काशिकावृत्ति की भाषा प्रसन्नगंभीर है । यत्र तत्र अस्वाभाविक होने पर भी शैली परिमार्जित है । काशिकाकार ने अनेक स्थलों पर सुभाषितों का प्रयोग करके शैली की रोचकता को बढा दिया है । यथा -

"एङ् प्राचां देशे" (१-१-७५) सूत्र में -

प्रागुदञ्चौ विभजते हंस क्षीरोदके यथा ।
विदूषां शब्दसिद्धयर्थं सा न : पातु शरावती ॥

इसी प्रकार (२-२-२४) में -

सुसूक्ष्मजटकेशेन सुनताजिनवाससा ।
पुत्री पर्वतराजस्य कुतोहेतोर्विवाहिता ॥

इसी प्रकार से २-३-१३, ३-१-४८, ४-१-४४, ५-४-१२२, ६-१-१५८, ७-४-९२, ८-२-१०८ आदि सूत्रों में भी सुभाषित पाये जाते हैं ।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से इसकी प्रशंसा की है -

The admittedly best, on account of brevity and clarity, commentary par excellence on the sutras of panini, is the Kashika Vritti" The commentary of Kashika" of Jayaditya and Vamana.[२३२]

काशिकावृत्ति से प्रभावित होकर कौमुदीकार ने प्रतिपद काशिकावृत्ति का ही अनुसरण किया है भाष्य का नहीं । तथापि कौमुदीकार ने वामन जयादित्य का ऋण स्वीकार नहीं किया । "वादे वादे जायते तत्त्वबोध:" इस लोकोक्ति अनुसार यदि पूर्वाचार्यों का मत असम्मत लगे तो उसका खण्डन करना कर्तव्य बन जाता है । किन्तु काशिकाकार साम्प्रदायिक वादविवादात्मक खण्डन मण्डन पद्धति से बचकर के चले

---

२३२ Winternitz AHIL Vo III Pt + II P. 433

हैं इससे काशिका की गरिमा और भी बढ गई है । तथापि किलहर्न एवं विन्टरनीट्ज ने काशिकावृत्तिमें चान्द्र व्याकरण का प्रभाव माना है ।[२३३] श्री मीमांसक जीने इस मत का खण्डन किया है ।[२३४]

काशिका पाठ -

लिपिकारों के प्रमाद से भारतीय विद्याग्रन्थों का बंहुमूल्य खजाना सुरक्षित नहीं रह सका यह खेद की बात है, काशिका भी इसमें अपवाद नहीं है । जिनेन्द्रबुद्धि और जयादित्य के बीच समय का अत्यल्प अन्तर है तथापि उनके समय में काशिका का पाठ भ्रष्ट हो चुका था । न्यासकार (१-१५) की व्याख्या में लिखता है - ''लघुपधगुणस्य अत्र प्रतिषेधइति एतेन संक्रमत्वं दर्शयति । अन्ये तुं उत्तर सूत्रे कणिता श्वः रणिता श्वः इत्यनन्तरमनेन ग्रन्थेन भवितव्यम् । इह तु दुर्विन्यस्तकाकुपदजनित भ्रान्तिभिः कुलेखकैर्लिखितमिति वर्णयन्ति । अथवा ....इत्यादि (न्यास भा. १ पृ. ४९)

न्यास और पदमंजरी मेंसे काशिका के अनेक पाठान्तर उद्धृत किये जा सकते हैं । इससमय जो काशिका का पाठ उपलब्ध है वह अत्यंत भ्रष्ट है ।(६-१-७४) सूत्र के प्रत्युदाहरण में इसप्रकार का पाठ छपा है । हल्पूर्वादिति किम् बहुनावा ब्राह्मण्या । इसका शुद्ध पाठ ''बाहुतितवा ब्राह्मण्या'' है ।

इसी प्रकार ''त्यजेश्च'' त्याज्यम् । ''त्यजिपूज्योश्चेति'' (काशिका) तत्र पूजेर्ग्रहणं चिन्त्यम् । भाष्यानुक्तत्वात् । ''ण्यत् प्रकरणे त्यजेरूपसंख्यानमिति भाष्यम्''[२३५] इससे स्पष्ट है कि काशिकावृत्ति का वर्तमान पाठ काफी भ्रष्ट है जो चिन्त्य है ।

काशिका के व्यारव्याकार -

काशिका वृत्ति पर अनेक आचार्यों ने व्याख्याएँ लिखी हैं जिनमें जिनेन्द्र बुद्धि का न्यास, हरदत्तमिश्र की पदमंजरी, इन्द्रमित्र का अनुन्यास, तथा विद्यासागर मुनि की प्रक्रियामंजरी मुख्य हैं ।

काशिकावृत्ति का काल : -

जैसा कि हम उपर देख चुके हैं कि काशिकावृत्ति के लेखक वामन और ज्यादित्य हैं । इत्सिंग ने अपनी यात्रावर्णन में 'जयादित्य' का नामोल्लेख किया

---

२३३ किलहर्न IA भा. १५-१६, विन्टरनीट्ज AHIL Vo III Pt P. 433

२३४ सं व्या. शा. इति भा. १ पृ. २१० - २११

२३५ भट्टोजि दीक्षित - सि. कौ. (७-३-६६)

है, वामन का कहीं भी उल्लेख नहीं किया । इत्सिंग के लेखानुसार जयादित्यकी मृत्यु ई. स. ६६१ में हुई थी । [२३६] इसी लेख के आधार पर प्रो. मैक्समूलर काशिकावृत्ति का समय ई. स. ७०० का मध्यभाग स्वीकारते हैं । [२३७]

अपने शोधपत्र "The Kashika" [२३८] में प्रो. मैक्समूलर ने डॉ. बोथलिंक का मत दिखाया है कि काश्मीर के राजा जयापीड का नाम ही जयादित्य था

तथा वामन उसका सभापण्डित था । राजतरंगिणी के आधारपर जयापीड का काल ८वीं सदी है, अतःवामन का भी यही काल है ।

काशिका (१-३-२३)में भारवि का श्लोकांश मिलता है । [२३९] किरातार्जुनीयम् पर महाराज दुर्विनीत ने एक व्याख्या लिखी थी । [२४०] महाराज दुर्विनीत का राज्यकाल वि. सं. ५३९ से ५६९ (ई. स. ४७२ से ५१२) तक का है, अतः भारवि चतुर्थशतक में होना चाहिये । प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान मेक्डोनल भारवि को ई. स. ६०० के आसपास का मानते हैं । [२४१] अतः स्पष्ट है कि जयादित्य का काल ६०० - ६५० के बीच माना जा सकता है।

काशिका ३-२-४२ में 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रन्थ का उल्लेख है । यह ग्रन्थ बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग प्रणीत है । शंकराचार्यने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में [२४२] दिङ्नागकृत आलम्बन परीक्षा'' [२४३] का उद्धरण दिया है । श्री उदयवीर शास्त्री ने दिङ्नाग का काल ५०९ ई. स. पूर्व माना है । प्रो. अय्यर ने भर्तृहरि के आधार पर दिङ्नाग का काल ४८०-५४० ई. स. माना है । पं. बलदेव उपाध्याय ने भी यही काल स्वीकारा है । इसके आधार पर काशिका की पूर्व सीमा ५४० ई. स. माननी होगी । क्योंकि काशिकाकार ने दिङ्नागकृत ''प्राणसमुच्चय'' का उल्लेख किया है ।

---

२३६ इत्सिंग की भारतयात्रा पृ. २६२.

२३७ Indian Antiquary VO XII P. 284

२३८ Max muller - Indian Antiquary P. 36

२३९ भारवि - किरातार्जुनीयम् (३-१४ - संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः ।

२४० Krishnamachariar - HCSL P. 147

२४१ Mecdonell - AHSL P. 577
Varadachari " " P. 80

२४२ शंकराचार्य - ब्र. सू. शां. भा. २-२-२८ पृ. १९९...यदन्तर्ज्ञेयरुपंतद् ब्रूहि०

२४३ दिङ्नाग - आलम्बन परीक्षा पद्य ८ - यदन्तर्ज्ञेयरुपं बहिर्वदवभासते ॥

कुछ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार काशिकाका काल इसप्रकार है जो- किसी भी तरह से ग्राह्य नहीं रखा जा सकता ।

(१) I.s. Pavate - २ री शती structure of Astadhyayi Intro P.10-11

(२) Rangacharya - ९वीं. सदी Introduction of Rupavatar IP XII

(३) गोल्डस्टुकर - १३ वी सदी 'Panini'

(४) बुर्नेल - १२ वीं सती The Aindra school of sans Grammarian P.92.

(५) वरदाचार्य - ६ ठी शती History of sans. Literature P.185

(६) श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती - ई. स. ६५० Introduction to nyas P.26

(७) बैल्वलकर - ई. स. ६५० system of sans grammer P.35

(८) दिनेशचंद्र भट्टाचार्य - ई. स. ६५०-७५० Introduation of ParibhashaVritti P.3

(९) पं युधिष्ठिर मीमांसक ६५०-७०० सं व्या. शा. इति. पृ. ४२३

हमारे विचार सेभी काशिकाकार काल ६५० - ७०० को होना ही युक्ति संगत है ।

७ भोजदेव : -

प्रथम प्रकरण में महाराज भोज के विषय में हमने विस्तार से परिचय दिया है । अतः आगे इनके व्याकरण परिचय दिया जायगा ।

८ भट्टोजिदीक्षित : -

व्याकरण परंपरा में भट्टोजि दीक्षित एक ऐसे मूर्द्धन्य विद्वान हैं जिनकी उपेक्षा करना हमारे लिये असंभव है ।

प्राचीन समय में सूत्रकार, वृत्तिकार, वाक्यकार, पदकार भाष्यकार आदि विविध आचार्य परंपरा का उल्लेख मिलता है, किन्तु किसी भी प्रक्रियाकार का उल्लेख नहीं मिलता । पाणिनीय व्याकरण के क्षेत्र में "रूपावतार" प्रक्रिया का प्रारंभिक चरण था जिसने परवर्ती पाणिनीय व्याकरण को एक नई दिशा में मोड़ दिया । प्रक्रिया ग्रन्थों में "सिद्धान्त कौमुदी" को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई उतनी शायद ही परवर्ती कोई कृति को हुई होगी ।

परिचय - भट्टोजि दीक्षित महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण थे । उनके पिताका नाम लक्ष्मीधर भट्ट तथा भ्राता का नाम रंगोजिभट्ट था । इनके गुरु का नाम नृसिंहपुत्र शेषकृष्ण था ।[२३९] शब्दकौस्तुभ में प्रक्रिया प्रकाशकार शेषकृष्ण के लिये गुरु शब्द का व्यवहार किया है ।[२४०] तत्त्वकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षितने अप्पयदीक्षित को नमस्कार किया है ।

काल - डॉ. बेल्वलकर ने भट्टोजिदीक्षित का काल सन् १६०० से १६५० माना है । भट्टोजिदीक्षित के गुरु शेषकृष्ण विरचित "प्रक्रिया कौमुदी" की व्याख्या का हस्तलेख भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्युट पूना में विद्यमान है, जिसमें वि. सं. १५१४ लिखा गया है ।

लंडन के इण्डिया आफिस के पुस्तकालयमें विठ्ठल विरचित प्रक्रियाप्रसाद टीका का एक हस्तलेख संग्रहित है । उसके अन्त में लेखनकाल सं. १५३६ लिखा है । विठ्ठल ने व्याकरण का अध्ययन शेषकृष्ण के पुत्र वीरेश्वर से किया था । विठ्ठल के काल के आधार पर वीरेश्वर का काल निश्चित हो जाता है । विठ्ठलने वीरेश्वर के पास इसलिये अध्ययन किया हो कि शेषकृष्ण वृद्धत्व - के कारण अक्षम रहे हों । इस दष्टि से विठ्ठल और भट्टोजि समकालिक रहे हों अतः भट्टोजि दीक्षित का काल वि. सं. १५७० से १६५० के मध्य रहा हो ।[२४१] प्रो. काणे महोदय ने अप्पय दीक्षित का काल १५५४ से १६२६ ई. स. माना है,[२४२] तत्त्वंकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षित ने अप्पयदीक्षित को नमस्कार किया है । अतः स्पष्ट है कि भट्टोजि महोदय अप्पय के पश्चात् १५८० से १६३० में हुअे । अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भट्टोजि दीक्षित के काल के विषय में निर्देश किया है जो संक्षिप्त में इसप्रकार है -

(१) डॉ. सालेटोर के मत से भट्टोजिदीक्षित का काल १५७५ से १६२५ है ।[२४३]

(२) डॉ. एस. के. बेल्वलकरने भट्टोजि दीक्षित का काल ई. स. १६३० माना है ।[२४४]

(३) प्रो. एस. पी. चतुर्वेदी ने दीक्षित का काल ई. स. १६०० माना है ।[२४५]

---

२३९ पं. जगन्नाथ - प्रौढ मनोरमाखण्डन भा. ३ के अन्तमें - इह केचित् शेषवंशावतंसानां श्रीकृष्ण पंडितानां

२४० शब्दकौस्तुभ पृ. १४५

२४१ सं. व्या. शा. इति. भा. १ पृ. ४८७

२४२ Kane P.V. H.S.P. p 324

२४३ द्दष्टव्य - Gode P. K. ANAdb ASVORI (Tirupati Vo I Pt. II p 116)

२४४ Belvakar S.K. - ssg PP 46-47

२४५ Chaturvedi S.P. - HIHW p 742

(४) ए. बी. कीथ महोदय ने भट्टोजि का काल ई. स. १७०० माना है ।[२४६]

(५) प्रो. विन्टरनीट्ज ने भट्टोजि को ई. स. १६२५ में माना है ।[२४७] इसी प्रकार से गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस की लायब्रेरी से प्राप्त अनेक हस्तप्रतों के आधार पर पी. के. गोडे महोदय ने भट्टोजिदीक्षित का काल ई. स. १५५० के करीब निश्चित किया है ।

रचनाएँ - भट्टोजिदीक्षित ने (१) वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (२) सिद्धान्त कौमुदी पर लिखी गई स्वोपज्ञटीका "प्रौढमनोरमा" (३) वैयाकरण सिद्धान्तकारिका तथा (४) शब्दकौस्तुभ प्राप्त होती है । शब्दकौस्तुभ अपूर्ण ग्रन्थ है । भट्टोजि दीक्षितने रामचन्द्र की प्रक्रिया कौमुदी तथा उसकी टीका 'प्रकाश' को हेय साबित करने के लिये ही 'सिद्धान्त कौमुदी' तथा 'प्रौढमनोरमा' की रचना की थी । इसके सिवा भट्टोजिदीक्षित का वैयाकरण सिद्धान्त कारिका नामक एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें भर्तृहरि के वाक्यपदीय के आधार पर अर्थ विचार सम्बन्धी चर्चा की है ।

सिद्धान्तकौमुदी की लोकप्रियता एवं विषयवस्तु :-

"कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः" "बालानां सुखबोधाय" आदि सुभाषित कौमुदी की लोकप्रियता के ही परिचायक हैं । "सिद्धान्त कौमुदी" व्याकरण विषयक एक ऐसा ग्रन्थ है जो अध्ययन - अध्यापन में भट्टोजि दीक्षित के काल से अद्यावधि लोकप्रिय रहा है । रुपमाला, प्रक्रिया कौमुदी आदि ग्रन्थ प्रक्रिया प्रकार के थे उनसे कुछ अलग होकर "भट्टोजि - दीक्षित" ने पाणिनीय सूत्रों को विषय के क्रम में पेश किया है । भट्टोजि दीक्षित ने उन विषयों को निम्नरुपेण बाटा है, यथा -

(१) संज्ञा विषयक सूत्र (२) परिभाषा प्रकरण (३) संधि प्रकरण (४) षड्लिंग प्रकरण (५) समास प्रकरण (६) तध्दित प्रकरण (७) तिङन्त प्रकरण (८) वैदिकी प्रक्रिया (९) स्वर प्रक्रिया

निष्कर्ष - प्रक्रिया ग्रन्थों में जैसा कि हमने बताया है कि "सिद्धान्त कौमुदी" की जितनी लोकप्रियता रही है उतनी शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ

---

२४६ Keith A. B. - HSL footnote 4 p 430

२४७ Winternitz I. M. - HIL Vo III Pt II TrsJHP 435

को प्राप्त हुई हो । छात्रों की सुविधा हेतु लघु और मध्य संस्करण भी विद्वानों ने बना डाले ।

सरलीकरण की इस प्रक्रिया से अष्टाध्यायी की परंपरा का उच्छेद सा होने लगा । काशिका का पठन पाठन रुक सा गया । पाणिनीयेतर व्याकरण भी काशिका की जड़ नहीं हिला सके थे किन्तु सरलीकरण की प्रक्रिया की लालच में पढ़कर इन आचार्यों ने अष्टाध्यायी का महत्त्व नहींवत् कर दिया । अध्येता मानने लगे कि पाणिनीय व्याकरण सरल नहीं दुरुह है अतः हेय है ।

प्रक्रिया ग्रन्थों के अध्ययन से शिक्षार्थी को रुपसिद्धि सरल प्रतीत होती है । एक एक प्रयोग की साधुता असाधुता दर्शाने के लिये भिन्न भिन्न अध्यायों से सूत्र उठाकर रुपसिद्धि हेतु एकत्र किये जाते हैं । पाठक तो यही सोचता है कि कोई बात निश्चित रुप से कही जा रही हो । वह सूत्रों को अनियमित न मानकर नियमित एवं व्यवस्थित मानता है । रुपसिद्धि की सरलता के नाम पर उसे इधर उधर से संचित सूत्र ऐसे क्रम में दिये जाते हैं जिससे रुपसिद्धि का काम तो उसे सरल लगता है परन्तु सूत्रार्थ को जानने की समस्या उसके लिये खड़ी रहती है । "वह सरलता के व्यामोह के जाल में ऐसा उलझ जाता है कि जिसमें से निकलने कि लिये फिर से पाणिनीय क्रम की शरण में गये बिना उसका निस्तार नहीं ।"

इस प्रकार से प्रक्रिया पद्धति के अध्ययन से जितना लाभ है उससे अधिक हानि है । जिसे हम सरल समझ बैठे हैं वह एक छलावा मात्र है। कहाँ पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट अष्टाध्यायी की वैज्ञानिक पद्धति जिसकी भूरि भूरि प्रशंसा पतंजलि ने भी की है – "आचार्यः दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म । तत्राशक्यं वर्णेनाप्य नर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण ।" [२४८] इसी प्रकार से अन्यत्र भी कहा है – "सामर्थ्ययोगा नहि किंचिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं .स्यात्" [२४९] अतः स्पष्ट है कि ऋषियों की आर्ष वाणी ही सरल हो सकती है, जिसके लिये भवभूति कहते हैं – "ऋषिणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति ।" [२५०] वस्तुतः प्रक्रिया पद्धति

---

२४८ व्या. महा. १-१-१ पृ. ३९

२४९ व्या. महा. ६-१-७७

२५० भवभूति उत्तररामचरित

काठिन्य का कंटकाकीर्ण पथ ही है, जो सर्वथा त्याज्य है ।

९. नारायण भट्ट :-

केरल देशनिवासी नारायणभट्टातिरी या नारायण भट्ट सरस्वती के उन वरदपुत्रों में से एक जिसने व्याकरण के क्षेत्र में ही न बंधकर भिन्न भिन्न क्षेत्रों में अपनी कलम चलाई है । इसने क्रियाक्रम, चमत्कार चिन्तामणि, धातुकाव्य और अपाणिनीय प्रामाणिकता प्रक्रिया सर्वस्व तथा हृदयहारिणी व्याख्या आदि ३८ ग्रन्थ लिखे हैं । इस अकेले कवि ने जितने चम्पूकाव्य लिखे हैं उतने उसके परवर्ती युगके कवियों ने मिलकर भी नहीं लिखे । यही इस लेखक की विशेषता है ।

परिचय - नारायण भट्ट केरल प्रदेश में आया हुआ "मेल्युत्तूर" ग्राम में उत्पन्न हुआ था जो नावा क्षेत्र के समीप स्थित है । इसके पिता का नाम 'मातृदत्त' था । नारायण ने प्रसिद्ध मीमांसक माधवाचार्य से वेद, पिता से पूर्व मीमांसा, दामोदर से तर्कशास्त्र और अच्युत से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था ।[२५१]

काल - नारायणभट्ट का काल विवाद से पर नहीं । क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं के साथ कतिपय राजा का काल देखा है । इस पर श्री कुन्हनं राजा ने विस्तार से विचार किया है । श्री ई. बी. साम्बशास्त्रीने नारायण का काल १५६० से १६६६ के बीच रखा है । श्री रामशर्मा ने १६१८ से १६९१ का काल माना है । श्री कुन्हन राजा ने "प्रक्रिया सर्वस्व" का काल १६०७ रखते हैं, जब कि कुंजुन्नी राजा १६५५ से पहले मानते हैं । "प्रक्रिया सर्वस्व" ग्रन्थ के अवलोकन से विदित होता है कि नारायणभट्ट ने किसी देवनारायण नाम के राजा की आज्ञा से यह ग्रन्थ लिखा था ।[२५२]

प्रक्रिया सर्वस्व का टीकाकार वर्मदेव लिखता है कि नारायण ने ६० दिनों में यह ग्रन्थ रचा था ।

प्रक्रिया सर्वस्वं स मनीषिणामचरमः षष्टिदिनैर्निर्ममे ।"[२५३]

भट्टोजि दीक्षित एवं 'प्रक्रिया सर्वस्व' के लेखक नारायण भट्ट एकदूसरे के समकालिक रहे होंगे । पांच - प्रन्द्रह साल का अन्तर अन्तर नहीं कहा

---

२५१ द्रष्टव्य - सं. व्या. इति. भा. १ पृ. ५४२.

२५२ प्रक्रिया सर्वस्व प्रांरभिक श्लोक २-४-८

२५३ प्रक्रिया सर्वस्व भू. भा. २ पृ. २

जा सकता । भट्टोजि से भट्ट उम्र में कुछ छोटे ही रहे होंगे । समकालिक होने के बावजूद भी दोनों एक दूसरे से अरसे तक अपरिचित ही रहे । अन्यथा सिध्दान्त कौमुदी और प्रक्रिया सर्वस्व एक दूसरे से प्रभावित हुअे बिना नहीं रहते । इसके पीछे एक कारण यह भी हो सकता है कि दोनों सुदूरवासी - (केरल-महाराष्ट्र) हैं । ग्रन्थ रचना के पश्चात् दोनों ने एक दूसरे की ख्याति सुनी होगी । ''प्रक्रिया सर्वस्व'' का टीकाकार वर्मदेव लिखता है कि भट्टोजि दीक्षित ने नारायण से मिलने के लिये केरल की ओर प्रस्थान किया । कुछ विद्वान इससे विपरीत मानते हैं कि नारायण ने भट्टोजि को मिलने के लिये प्रस्थान किया । [२५४]

''अपाणिनीय प्रामाणिकता'' क्या है ?

इस कृति का शीर्षक ही सूचित करता है कि पाणिनीयेतर व्याकरणों को भी नारायण भट्ट आदर एवं मान्यता देता है । नारायण से पूर्व एक ऐसी परंपरा सी हो गई थी कि पाणिनि भिन्न व्याकरण उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते थे। नारायण ने उनकी भी प्रामाणिकता को स्वीकार किया है । इसीलिये उन्होंने 'प्रक्रिया सर्वस्व' में चान्द्र व्याकरण एवं 'सरस्वतीकण्ठाभरण' व्याकरण से अनेक उदाहरण दिये हैं ।

प्रक्रिया सर्वस्व

यह ग्रन्थ २० काण्डों में विभाजित व्याकरण विषयक ग्रन्थ है । काण्डों को विभाजित इस प्रकार से किया गया है -

(१) संज्ञा (२) परिभाषा (३) संधि (४) कृदन्त (५) तद्धित (६) समास (७) स्त्रीप्रत्यय (८) सुबर्थ (९) नामविभक्ति (१०) आत्मनेपदादि प्रक्रिया (११) तिङ् (१२) लकारार्थ (१३) सन्नन्त (१४) यङन्त (१५) यङ्लुक् (१६) नाम धातु (१७) परिभाषा (१८) धातुपाठ (१९) उणादि (२०) छान्दसप्रकरण ।

हृदयहारिणी व्याख्या -

नारायण भट्टातिरी (दण्डनाथ) कृत हृदयहारिणी नामक व्याख्या भोजदेव के सरस्वतीकण्ठाभरण (व्याकरण) पर सप्तमाध्याय के अन्त तक लिखी गई है ऐसा वृत्तान्त अडियार संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी मद्रास से ज्ञात हुआ है। जिसमें षष्ठाध्याय के अन्त तक का अंश प्रकाशित भी किया गया है । अष्टमाध्याय

२५४ प्रक्रियासर्वस्व भू. भा. २ पृ. २ में उद्धृत श्लोक

की व्याख्या का अंश वहाँ उपलब्ध नहीं है अतः संभव है कि नारायण दण्डनाथ ने व्याख्या अपूर्ण लिखी हो ।

विशेषताएँ -

"प्रक्रिया सर्वस्व" में निम्नविशेषताएँ पायी जा सकती हैं -

(१) 'प्रक्रिया सर्वस्व' के प्रत्येक खण्ड में सूत्रों का क्रम अष्टाध्यायी के क्रमानुसार ही रखा गया है ।

(२) इस कृति में अष्टाध्यायी के एक भी सूत्र को छोडा गया नहीं है।

(३) वर्मदेव लिखित टीका का अधिकांश भाग पद्यबध्द है ।

(४) कुछ सूत्रों का पाठ काशिका और महा भाष्य से भिन्न है ।

(५) उदाहरणों की दृष्टि से यह कृति बहुत ही श्रेष्ठ मानी जाती है ।

(६) चंन्द्र और भोजराज के व्याकरणों से पर्याप्त मात्रा में उद्धरण और उदाहरण लिये गये हैं ।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'प्रक्रिया सर्वस्व' सरल और व्याख्या में स्पष्ट है । साथ ही अष्टाध्यायी की तरह सुनियोजित क्रम में नियोजित की गई है । यह ग्रन्थ पाणिनि पर आधारित होने पर भी अन्य वैयाकरणों को आदर देता है । पाणिनीय एवं अपाणिनीय मतों को आदर देता है । अतः सिद्धान्त कौमुदी और प्रक्रिया कौमुदी से भी इसका महत्त्व बढ जाता है ।

प्रकरण - ४

सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरण की विषयवस्तु का परिचय

ईसा की ग्यारहवीं शती में संस्कृत साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ कार्य करनेवाली एक ऐसी हस्ती उत्पन्न हुई जिसने राजनीति के साथ साथ सरस्वतीदेवी की प्राणपण से आराधना की । महाराज भोजदेव सरस्वतीमाता के एक ऐसे वरदपुत्र हुओ कि जिन्होने पाणिनि, पतंजलि, कात्यायन, चान्द्र, जैन शाकटायन, जैनेन्द्र, कातन्त्र, वामन-जयादित्य तथा भर्तृहरि का यथेच्छ उपयोग करके ६००० सूत्रों में पाणिनीय व्याकरण का प्रतिसंस्कार किया । जहाँ भोज से प्राक्तन वैयाकरण धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र, फिट् सूत्र एवं लिंगानुशासन आदि के पृथक् परिगणन की परिपाटीको चालू रखे हुओ थे तथा वार्तिकसूत्र अष्टाध्यायी की न्यूनता के संगोपनार्थ रचते थे । वहाँ भोजदेव ने अतिक्रान्तिकारी कदम उठाके व्याकरण के इन पाँच अंगो का पृथक् व्यवधान न करके ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' नामक व्याकरण कृति में गागर में सागर भर दिया है । इसे हम एक अद्भुत घटना ही कह सकते है ।

प्रस्तुत प्रकरण में ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' के सात अध्यायों का विस्तृत और अष्टम अध्याय का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे ।

प्रत्याहारसूत्र - भगवान् पाणिनि की अष्टाध्यायी का अनुसरण करते हुओ भोजदेव ने भी ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' के प्रारंभ में चौदह माहेश्वर सूत्रों का विधान किया है ।

भगवान पाणिनि के चौदह प्रत्याहार (माहेश्वर) सूत्रों के बारे में तो यह लोकवाद प्रचलित है कि इन अक्षरसमाम्नायगत प्रत्याहार (माहेश्वर) सूत्रों की संख्या ४५ के करीब थी, किन्तु पाणिनि मुनि ने उनका अति संक्षेप करके मात्र चौदह प्रत्याहार सूत्रों को ही शिव के प्रसादस्वरुप ग्रहण किया है । इस हेतु नन्दिकेश्वर काशिका का यह श्लोक अत्यंत प्रसिद्ध है-

''नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥''

प्रस्तुत श्लोक किसी आस्तिक शिवभक्त का ही प्रतीत होता है और उसने शिव के नाम पर प्रत्याहार सूत्रों को लिख मारा होगा ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में ये सूत्र शिवप्रोक्त नहीं अपि तु पाणिनि प्रोक्त हैं । गुणाग्राही, निष्पक्ष आर्षद्रष्टा पाणिनि ने स्व ''अष्टाध्यायी'' में किसी का तस्करण नहीं किया, जहाँ उन्होंने पूर्वाचार्यो से कुछ ग्रहण किया है वहाँ निस्संकोच पूज्यभाव से उनका नामोल्लेख करने में कहीं भी झिझक नहीं दिखाई । आपिशालि, गार्ग्य, भारद्वाज, शाकल्य आदि आचार्यो का नामोल्लेख इसका प्रमाण है । पं. श्रीशचन्द्र बसु ने भी पूर्वाचार्यो के प्रसिद्ध प्रत्याहार सूत्रों से तुलना करके बताया है कि पाणिनि ने इन प्रत्याहार सूत्रों का परिष्कार किया है ।[१]

भगवान महेश्वर ज्ञान के अधिष्ठाता देवता हैं तथा पाणिनि के आराध्य देव हैं अतः वे स्तुत्य हैं इसी लिये पाणिनि ने भी उनका सादर नामोल्लेख किया है ।[२]

भगवान रुद्र का ताण्डवनृत्य क्रुद्धावस्था का ही प्रतीक है । पुराण एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों मे भी इसी प्रकार का उल्लेख उपलब्ध है पाणिनि एवं सनकादि मुनि उग्र तपश्चरण कर रहे थे उस समय उनके तप की समाप्ति पर शिवजी ने ताण्डव नृत्य किया और उनके डमरु में से एक एक प्रत्याहार सूत्रों का निकलना कितनी अवास्तविक घटना है ।

पाणिनीय सूत्रों की वैज्ञानिकता देखकर पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वान दिङ्मूढ से हैं । क्या पाणिनि ऐसे प्रत्याहार सूत्रों की रचना नहीं कर सकते थे ? वास्तव में नृत्तावसाने नटराजराजो...वाला श्लोक किसी भी आर्षग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता । किसी शिवभक्त ने पाणिनीय प्रत्याहारों के साथ इसे जोड दिया है ऐसा हमारा विचार है ।

इस विषय में डॉ. सत्यकाम वर्मा के विचार द्रष्टव्य है-

''प्राचीन समय में वर्णसमाम्नाय की कम से कम दो पद्धतियाँ प्रचलित थी, ऐन्द्र और माहेश्वर । संभव है कि संक्षेप के लिये आपिशालि ने ही माहेश्वर पद्धति को सर्वप्रथम यह मान्यता दी हो । दूसरी और पाणिनि से सम्बद्ध परम्परा माहेश्वर सूत्रों के पुनरुद्धार का सम्बन्ध पाणिनि से ही जोडती है ?[३]''

---

१. Basu S.C. - T.T.S.g.

२. पंचोली बालकृष्ण - सं. वै. सि. कौ. भा. १ पृ - २

३. डॉ. वर्मा सत्यकाम - सं. व्या. उ. वि. पृ. ७८

आचार्य भोजदेव भी इसी पाणिनीय परंपरा का तथा चौदह प्रत्याहारों का उल्लेख करने से पूर्व अर्धनारीनटेश्वररुप अद्वैतभावापन्न उमा-उमापति को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुअे कहते हैं कि-

प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्याविव ।

श्रेयः पदमुमेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे ॥

प्रकृति प्रत्यय की तरह एकात्मभाव को प्राप्त हुअे मोक्षपद रुप पार्वती तथा शिव को प्रणाम करके भोज शब्दलक्षणरुप व्याकरणशास्त्र का निरुपण करने जा रहे हैं ।

यहाँ उल्लेखनीय यह है कि जैन परंपरा के अनुरुप श्री भोजदेव के व्याकरण का मंगल श्लोक उपर्युक्त दर्शाया हुआ न होकर निम्नप्रकार से है-

''चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम ।

मानसे रमतां नित्यं शुद्धवर्णा सरस्वती॥ [४]''

प्राचीन समय से मान्यता चली आयी है तथा भगवान पतंजलिभी पस्पशाह्निक में जिसका अनुमोदन करते हैं ग्रंथारंभ में मंगलश्लोक अत्यावश्यक है । वह मंगलश्लोक आदि में हो, मध्य में हो या अन्त में हो यह जरुरी नहीं । मंगलश्लोक होना अवश्य चाहिये ।

''मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते ।''

मंगलश्लोक के द्वारा इष्टदेव के स्मरण से विघ्नों का नाश होता है । यदि विघ्न आते हैं तब भी दूर हो जाते हैं इसी लिये आचार्य भोज ने मंगलश्लोक में इष्टदेव के साथ साथ इस ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' व्याकरण में ''प्रकृति प्रत्ययौ इव'' शब्द का प्रयोग समुचितरुपेण किया है । वैसे भी व्याकरणशास्त्र में शब्द की सिद्धि प्रकृति और प्रत्यय के बिना संभव नहीं है ।

''विविक्ताः साधवः शब्दाः प्रकृत्यादिविभागतः ।

ज्ञाप्यन्ते येन तच्छास्त्रमत्र शब्दानुशासनम्''

इस प्रकार से मंगल विधान एवं प्रत्याहारों के बाद भोजदेव सूत्रों का प्रक्रम शुरु करते हैं ।

---

४ प्रभाचन्द्र - प्रभावकचरित के अन्तर्गत सूराचार्यचरितम् के १४३ से १६० तक के श्लोक द्रष्टव्य है ।

प्रथम अध्याय-

प्रथमपाद-सरस्वतीकण्ठाभरण प्रथम अध्याय प्रथम पाद का सबसे पहला सूत्र है-"सिद्धि क्रियादेः लोकात्" यह सूत्र पाणिनि एवं चान्द्र व्याकरण में किसी भी रुप में उपलब्ध नहीं है । कात्यायन और व्याडि के माध्यम से हमें "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" या "सिद्धाः शब्दार्थसम्बन्धाः" जैसे प्रारंभिक सूत्र की प्रतीति होती है । आचार्य जैनेन्द्रने कात्यायन एवं व्याडि के प्रारंभिक सूत्र के महत्त्व को समझाते हुअे "सिद्धिरनेकान्तात्" सूत्र का विधान किया है । यदि प्रथम वार्तिक को महाभाष्य के आधार पर स्वीकारा जाए तब वह बनता है । "सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे लोकतो ऽर्थप्रयुक्ते" भोजराज ने इसे ही सूत्र रुप में बदल दिया है । "सिद्धि क्रियादेः लोकात्" इसमें लोक क्रिया एवं सिद्ध इन तीनों ही बातों का समावेश कर लिया गया है । इस प्रकार वार्तिक एवं जैनेन्द्र के बीच की सही राह भोज द्वारा अन्वेषित की गई है । भोज का सिद्ध शब्द नित्य का भी पर्यायवाची है । किन्तु मंगलकामना की सिद्धि के लिये भोजने नित्य शब्द का पठन न करके सिद्ध शब्द का ग्रहण किया है । "सिद्धेशब्दार्थ सम्बन्धे" वार्तिक की व्याख्या में पतंजलि कहते हैं कि-

"मांगलिकः आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मंगलार्थं सिद्धः शब्दमादितः प्रयुंक्ते मंगलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्ति, आयुष्मपुरुषाणि च अध्येतारश्च सिद्धार्थायथा स्युरिति"। [५]

इसी तात्पर्य को व्यक्त करने के उद्देश्य से आचार्य भोजदेव ने भी अपनी कृति के आरंभ में"सिद्धिः क्रियादेः लोकात्"सूत्र द्वारा मांगल्य के उद्देश्य को परिपूर्ण किया है, एवं यह भी स्पष्ट करने की कोशिश की है कि भाषागत लोकव्याहार से क्रिया वगेरे सिद्ध ही है, क्योंकि लक्ष्य का अनुसरण करके ही शब्द साधुत्वादि प्रयोजन से लक्ष्णस्वरुप व्याकरणशास्त्र की प्रवृत्ति होती है।

संज्ञाप्रकरण

"सरस्वतीकण्ठाभरण" के रचयिता आचार्य भोजदेव ने भी पाणिनि की तरह ही प्रथमाध्याय के प्रथम पाद में संज्ञाप्रकरण को सुनियोजित किया है। प्राग्पाणिनीय से लेकर के आज तक के जितने भी वैयाकरण हुअे हैं उन सभीने स्व कथन की अभिव्यक्ति एवं पुष्टि के लिये सूत्रों का ही आश्रयण लिया है, किंच सूत्रों के ज्ञान के लिये सबसे पहले वर्णो का ज्ञान आवश्यक है । वर्णज्ञान

५ व्या. महा० प्रथम आह्निक की व्याख्या

का ब्रह्मज्ञान के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है ।

"वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते ।

तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥" [६]

सूत्र की अभिव्यक्ति में वह अद्भुत शक्ति है जो गागर में सागर का काम करती है । स्पष्टता एवं लाघव उसका प्रथम लक्षण है । इसी लिये सूत्र की व्याख्या इस प्रकार से दी गई है-

"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।

अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥" [७]

अत्यल्प अक्षर शंकारहित स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं दोषरहित कथन सूत्र की विशेषता है । व्याकरण शास्त्र में इन सूत्रों का पठन् प्रकारान्तरेण छः प्रकार से किया गया है । यथा-

"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च

अतिदेशो ऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥" [८]

संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश एवं अधिकार के द्वारा प्रयोजनों की सिद्धि के लिये सूत्रों का ग्रहण किया जाता है ।

महर्षि पाणिनि ने प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में संज्ञा सूत्रों का समावेश किया है , आचार्य भोजने भी पाणिनि का अनुसरण करते हुअे एवं व्याकरणशास्त्र में संज्ञा की महत्ता को स्वीकारते हुए संज्ञा का ही ग्रहण किया है । "संज्ञा च नाम यतो न लघीयः" [९] के रुप में भगवान पतंजलि संज्ञा के महत्त्व को स्वीकारते है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संज्ञा शब्द की व्याख्या निम्र प्रकार से दी है - "सम्यक् जानीयुर्यया सा संज्ञा" [१०] "जिसके द्वारा अच्छी तरह से जाना जा सके उसे संज्ञा कहते हैं ।"

---

६ व्या. महा. शिवसूत्र ७-८.

७ वायुपुराण पृ. २०५ प्रका० आनन्दाश्रम पूना

८ दुर्गसिंह प्रणीत कान्तन्त्र टीका सू १-१-२ पृ. ४६९.

९ व्या. महा० (किलहर्न संस्करण) भा. १ पृ. ८१.

१० पारिभाषिक - प्रका. आर्यसाहित्यमंडल लि. अजमेर वि. सं. २०१२ भूमिका.

"सरस्वतीकण्ठाभरण" का द्वितीय सूत्र भी आकर्षक है –

"भूवादिक्रियावचनोधातुः" पाणिनि का सूत्र है "भूवादयो धातवः" (१-३-१) परन्तु महाभाष्यप्रोक्त वक्तव्य में "भाववचनो धातुः" "क्रियावचनो धातुः" की बात को समवेत करके भोजने उनका समाहार एकसूत्र में किया है । उनका तीसरा सूत्र बोपदेव के "मुग्धबोध" तथा काशिकाप्रोक्त वार्तिक "कास्यनेकाच् इति वक्तव्यं चुलुम्पाद्यर्थम्" (३-१-३५) भोजदेव के "विभक्तयन्तं पदम्" (१-१-२५) सूत्र का अनुकरण भोजने आपिशालि व्याकरण के आधार पर किया है ।[११]

आचार्य भोजने प्रथमाध्याय के प्रथमपादमें निम्न ७९ संज्ञाओं का ग्रहण किया है, यथा–

(१) धातु (२)(प्रातिपदिक (३) प्रकृति (४) प्रत्यय (५) विकरण (६) कृत् (७) कृत्य (८) सत् (९) निष्ठा (१०) घ (११) संख्या (१२) विभक्ति (१३) प्रथम (१४) मध्यम (१५) उत्तम (१६) प्रथमा (१७) द्वितीया (१८) तृतीया (१९) चतुर्थी (२०) पंचमी (२१) षष्ठी (२२) सप्तमी (२३) एकवचन (२४) द्विवचन (२५) बहुवचन (२६) परस्मैपद (२७) आत्मनेपद (२८) पद (२९) उपपद (३०) उपसर्जन (३१) कर्मधारय (३२) द्विगु (३३) वाक्य (३४) कारक (३५) कर्ता (३६) हेतु (३७) कर्मकर्ता (३८) कर्म (३९) करण (४०) सम्प्रदान (४१) अपादान (४२) अधिकरण (४३) आमन्त्रित (४४) सम्बुद्धि (४५) अभ्यास (४६) अभ्यस्त (४७) सम्प्रसारण (४८) गुण (४९) वृद्धि (५०) वृद्ध (५१) संयोग (५२) उपधा (५३) टि (५४) आगम (५५) लोप (५६) लुक् (५७) श्लु (५८) लुप् (५९) ह्रस्व (६०) दीर्घ (६१) प्लुत (६२) उदात्त (६३) अनुदात्त (६४) स्वरित (६५) लघु (६६) गुरु (६७) अनुनासिक (६८) सवर्ण (६९) अनुस्वार (७०) विसर्जनीय (७१) प्रगृह्य (७२) सर्वनाम (७३) निपात (७४) उपसर्ग (७५) गति (७६) कर्मप्रवचनीय (७७) अव्यय (७८) सार्वधातुक (७९) आर्घधातुक आदि ।

धातु प्रतिपदिक निष्ठा, घ आदि संज्ञाओं का भोजने निर्देश मात्र ही किया है । "प्राङ्ण्वुलः कृत्याः" (१-१-१२) सूत्र द्वारा प्रदर्शित कृत्य संज्ञक प्रत्ययों का अधिकार "ण्वुलः"[१२] सूत्र तक जाता है । कर्मसंज्ञा का प्रकरण (१.१.३८)

११ सुषेण विद्याभूषण ने "कलापचन्द्र" संधि २० पृ० ८७में लिखा है - अर्थः पदं आहुरैन्द्राः "विभक्त्यन्तं पदम्" "आहुरापिशालीयाः," "सुप्तिङन्तं पदम्" पाणिनीयाः ।

१२ सर. कण्ठा २-४-१५७.

से (१.१.५१) सूत्र तक अधिकृत समझना चाहिये । सम्प्रदान संज्ञा का प्रकरण (१-१-५३) से (१-१-६४) तक व्याप्त समझना चाहिये । "ध्रुवमपायेऽपादानम्" (१-१-६५) सूत्र से "भुवः प्रभवः" (१-१-७३) सूत्र तक पंचमी विभक्त्यन्त अपादान संज्ञा का विधान है । भोजदेव की आगम संज्ञा विशिष्ट ध्यान आकर्षित करती है ।[१३] आगम संज्ञा के पश्चात् भोजने एकमात्रिक द्विमात्रिक तथा त्रिमात्रिक की ह्रस्व-दीर्घ एवं प्लुत संज्ञा का (१-१-९० से (१-१-९२) तक निर्देश किया है । सूत्र क्रमांक (१-१-११२) से १-१-११६ तक के सूत्रों में सर्व विश्व आदि की सर्वनाम संज्ञा की है । तत्पश्चात् (१-१-११७) से (१-१-१२७) तक के सूत्रों में निपात संज्ञक शब्दों का पठन किया है । (१-१-१३१ से १-१-१५८) तक के सूत्र गतिसंज्ञा का विधान करते हैं । कर्मप्रवचनीय सूत्र (१-१-१५९ से १-१-१७४)तक अवगन्तव्य हैं । भोजदेव ने स्वर्, अन्तर् आदि निपातसंज्ञक शब्दों की अव्यय संज्ञा की है, अव्यय संज्ञा का अधिकार १-१-१७५ से १-१-१८८ तक समझना चाहिये । तत्पश्चात् भोजदेव ने (१-१-१९० से १-१-२०८) तक के सूत्रस्थ पठित धातुओं में मित् संज्ञा का विधान एवं प्रतिषेध किया है । प्रथम पाद के अन्तमें सार्वधातुक एवं आर्धधातुक संज्ञाओं का विधान किया गया है ।

द्वितीय पाद :-

"सरस्वतीकण्ठाभरण" के द्वितीय पाद में भोजदेव ने प्रथम पाद के शेष वक्तव्यों को कुछ संलग्न प्रसंगो के साथ लिया है एवं संज्ञा प्रकरण से परिभाषाओं का पृथक् परिगणन उन्हें अभीष्ट था अतः द्वितीय पाद में उन्होंने परिभाषाओं का परिगणन किया है ।

जैसा कि हमने प्रथम पाद में बताया है कि सूत्रों का कार्य छः प्रकार से सम्पन्न होता है उसमें संज्ञा के बाद परिभाषाओं का स्थान द्वितीय है भोजदेव अतएव द्वितीय पाद में परिभाषा सूत्रों के विधान का उपक्रम करते हैं।

महाभाष्य में परिभाषा की व्याख्या इस प्रकार से दी गई है । "परिभाषा पुनरेकदेशस्था सर्वं शास्त्रमभिज्वयति यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माभिज्वलयति ।"[१४]

---

१३ सर. कण्ठा. १-१-८७ टिन्मित्किदादिः प्रकृति प्रत्ययांश आगमः

१४ व्या. महा० (किलहर्न संस्कारण) भा. १ पृ. ३५९.

उद्योतकार नागेशभट्ट परिभाषा की व्याख्या देते हुओ कहते हैं –

एकदेशस्थिता शास्त्रभवने याति दीपताम् ।

परितो व्यापृतां भाषां परिभाषां प्रचक्षते ॥ [१५]

इन व्याख्याओं से स्पष्ट हो जाता है कि परिभाषा एवं परिभाषा सूत्र में यही सबसे बडा क्षेत्र भेद है कि अधिकार प्रत्येक सूत्र में अनिर्दिष्ट होता है अधिकार सूत्र के तीन प्रकार हैं यथा–

सिंहावलोकितं चैव मण्डुकप्लुतमेव च ।

गंगाप्रवाहवच्चापि अधिकारस्त्रिधा मतः ॥ [१६]

जबकि परिभाषा एक ही स्थान में स्थित रहकर भी समस्त शास्त्र को प्रकाशित करती है ।

भाष्यकार ने सूत्रों की व्याख्या देते समय यथास्थान परिभाषाओं का उल्लेख किया है । पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी के कुछ सूत्रों का परिभाषारुपेण पठन किया है यथा– ''स्वं रुपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा'' येन विधिस्तदन्तस्य [१७] आदि ।

किन्तु सूत्र रुप में पठित पाणिनीय परिभाषाएं बहुत ही स्वल्प हैं। पाणिनि ने परिभाषाओं के लिए अलग से शास्त्रविंधान किया है, कुछ परिभाषाएँ पाणिनि से पूर्व की है तथा कुछ पाणिनि द्वारा पुनर्निर्मित है । भाष्यव्याख्यात परिभाषाएँ ही सम्प्रति लभ्य हैं । इसी कमी की पूर्ति के लिये भोजदेव ने अलग से पारिभाषिक विषयक ग्रन्थ निर्माण न करके द्वितीय पाद में ही पारिभाषिक संज्ञाओं का निर्देश किया है ।

भोजदेव ने द्वितीय पाद में परिभाषाओं का ग्रहण किया है । ''सरस्वतीकण्ठाभरण'' के १-२-१८ सूत्र से १-२-१३५ तक के सूत्रों में परिभाषाओं का परिगणन किया है । इन परिभाषाओं को हम चार विभाग में विभाजित कर सकते है यथा–

(१) भोजदेव की कुछ परिभाषाएँ ऐसी हैं जिसका पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्ररुप में ही स्वीकार किया है ।

(२) कुछ परिभाषाओं को भोजने भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर पढा है ।

---

१५. व्या. महा. खं उद्योत पृ. ३१४

१६ Abhyankar K.V. - D.S.G. P. 14

१७ पा. अ. १-१-६८ १-१-७२.

(३) भोज की कतिपय परिभाषाएँ पाणिनीय सूत्र का परिवर्तनमात्र है।

(४) कुछ परिभाषाओं को भोज ने परिभाषा के रुप में ही ग्रहण किया है।

अब हम विस्तार से इसकी विचारणा करेंगे -

(१) भोज की परिभाषाएँ अष्टाध्यायी के सूत्र रुप में-

भोज की परिभाषाएँ	अष्टाध्यायी का सूत्रकाम
(१) हलन्त्यम्	१-३-३.
(२) आदिर्ञिटुडव:	१-३-५.
(३) ष प्रत्ययस्य	१-३-६
(४) चुटू	१-३-७.
(५) लशक्वतद्धिते	१-३-८.
(६) स्वं रुपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा	१-१-६८.
(७) येन विधिस्तदन्तस्य	१-१-७२.
(८) मिदचोऽन्त्यात्पर:	१-१-५१.
(९) स्थाने ऽन्तरतम:	१-१-५०
(१०) इको गुणवृद्धि	१-१-३.
(११) स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ	१-१-५६.
(१२) अच: परस्मिन् पूर्वविधौ	१-१-५७
(१३) द्विर्वचने ऽचि	१-१-५९
(१४) आद्यन्तवदेकस्मिन्	१-१-२१.
(१५) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्	१-१-६२.
(१६) यथासंख्यमनुदेश समानम्	१-३-१०.
(१७) समर्थ: पदविधि:	२-१-१.
(१८) विप्रतिषेधे परं कार्यम्	१-४-२.

उक्त परिभाषा सूत्रों का भोजने परिभाषा के रुप में स्वीकार किया है जब कि पाणिनीय अष्टाध्यायी में सूत्रों के रुप में ही इनका निर्देश है ।

(२) भाष्यस्थ वार्तिक्र के आधार पर परिभाषा सूत्र :- भोजदेव ने कतिपय परिभाषा सूत्रों को भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर पढा है । जहाँ भाष्यकार वार्तिक के रुप में उनका ग्रहण करते हैं । वहीं भोजने उनका परिभाषा सूत्र के रुपमें ग्रहण किया है-

भोज की परिभाषाएँ	भाष्यस्थ वार्तिक
(१) धातोरिर्	चुटू (१-३-७) वा. ४
(२) न चुंचुचणचरजाहटीटषंगवकाम्येषु	लशक्वतध्दिते (१-३-८७) वा. १
(३) सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य	येनविधिस्तदन्तस्य (१-१-७२) वा. १७
(४) ऋतो वृदधिमद्विधाववयवेभ्यः	येन विधिस्तदन्तस्य (१-१-७२) वा. १८
(५) प्रकृत्यधिकारे महदादिभिः	येनविधिस्तदन्तस्य (१-१-७२) वा. २३.
(६) पदाधिकारे ऽहन्नादिभिः	येनविधिस्तदन्तस्य (१-१-७२) वा. २१.
(७) प्रत्ययग्रहणे यस्मात्सविहित स्तदादेरपंचम्याः	येनविधितदन्तस्य (१-१-७२)वा. २८.
(८) यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे	येनविधिस्तदन्तस्य (१-१-७२) वा. २९.
(९) स्वरदीर्घयलोपेषु लोपः	न पदान्तद्विर्वचन० (१-१-५८) वा. १
(१०) वरक्विलुकिरव्रोपधात्वेषु	न पदान्तद्विर्वचन० (१-१-५८) वा. २
(११) पूर्वत्रासिध्दे चासंयोगादि लोपलत्वणत्वेषु	न पदान्तद्विर्वचन० (१-१-५८) वा. ३.
(१२) उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ	न पदान्तद्विर्वचन० (१-१-५८) वा. ६.
(१३) एकयोगनिर्दिष्टानां अप्येकदेशोऽनुवर्तते	दामहायनान्ताच्च (४-२-२७)
(१४) आगमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृहयन्ते	दाधाघ्वदाप् (१-१-२०) पा. ५.
(१५) न वर्णाश्रयप्रत्ययात्वपुगत्वेद्वस्वत्वा निवर्णविचालपुग्ध्रस्वरबाल्लोपसंबुध्दिलोपानाम्	कृन्मेजन्तः (१-१-३९) वा. १०.
(१६) मतुब् विभक्त्युदात्तत्वं पूर्वनिघातस्य	कृन्मेजन्तः (१-१-३९) वा. १५.
(१७) गौणमुख्ययोः मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः	आन्महतः समाना. (६-३-४६) वा. भा.
(१८) कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे	बहुगुणवतुडतिचसंख्या (१-१-२३)
(१९) सिद्धे सत्यारंभो नियमार्थः	षष्ठी स्थाने योगा वा. १.
(२०) उक्तार्थानामप्रयोगः	लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (१-२-५१) महा० व्याख्या
(२१) निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः	प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (१-१-६२) भा. वा. १३.
(२२) सन्नियोगशिष्टानामेकापायेऽन्यतर स्याप्यपायः	बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् (६-४-५३) भा. वा. ४
(२३) निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य	निपात एकाजनाङ् (१-१-१४) भा. व्या.

(२४) नानुबन्धकृतान्यसारुप्याने जन्तत्वानेकाल्त्वानि	दधातिदधात्योर्विभाषा (३-१-१३०) भा. वा. ६,७,८,९.

(३) भोजदेव की कतिपय परिभाषाएँ पाणिनीय सूत्र का परिवर्तन मात्र है ।

यथा–

	भोजदेव	**पाणिनि**
(१)	आदिरितान्त्येन समध्य: (१-२-१)	आदिरन्त्येन सहेता (१-२-७१)
(२)	तातत्काल: (१-२-३)	तपरस्तत्कालस्य (१-१-७०)
(३)	सप्तम्या निर्दिष्टे पूर्वस्य (१-२-२८)	तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (१-१-६६)
(४)	ङित्(१-२-३१)	ङिच्च (१-१-५३)
(५)	न लुमता प्रकृते: (१-२-५९)	न लुमताङ्गस्य (१-१-६३)
(६)	कृद्वासरुपोऽस्त्रियाम् (१-२-१०६)	वाऽसरुपोऽस्त्रियाम् (३-१-९४)

(४) भोज्ञ ने कुछ परिभाषाओं का परिभाषा के रुप में ही ग्रहण किया है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

	भोजकी परिभाषाएँ	पारिभाषेन्दुशेखर उद्धृत परिभाषा
(१)	कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि (१-२-२५)	कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति (परि० २८)
(२)	प्रकृतिवदनुकरणम् (१-२-५३)	प्रकृतिवदनुकरणं भवति (३६)
(३)	एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्ति: सह वा निवृत्ति: (१-२-६६)	एक योगगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्ति: सह वा निवृत्ति: (१७)
(४)	गौणमुख्ययो: मुरव्ये कार्यसंप्रत्यय: (१-२-८७)	गौणमुरव्ययोर्मुरव्ये कार्यसंप्रत्यय: (१५)
(५)	उपपदविभक्ते: कारकविभक्ति: (१-२-११४)	उपपदविभक्ते: कारकविभक्तिर्बलीयसी (१०२)
(६)	प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्ति: (१-२-१३२)	प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्ति: (११५)

इस प्रकार से भोजदेवीय परिभाषाओं को उपरिनिर्दिष्ट चार विभागों में

विभाजित किया जा सकता है । डॉ. सत्यकाम वर्मा कहते हैं कि- "भोजदेव ने सरस्वती कण्ठाभरणमें पाणिनीय पद्धति का सही अनुगमन किया है, और जितनी परिभाषाएँ उन्हें उचित लगी उन्हें सूत्ररूप देकर उन्होंने अपना लिया है ।"[१८]

तृतीय पाद :

पाणिनि के तृतीय अध्याय के प्रथम पाद का विषय भोज के व्याकरण में प्रथमाध्याय के तृतीयपाद का विषय बनकर आया है । तृतीय पाद में धातुओं को लगनेवाले प्रत्ययों का विधान किया है । "सरस्वतीकण्ठाभरण" व्याकरण के द्वितीय पाद का अन्तिम सूत्र "प्रत्ययः परः" (१-२-१३५) का विधान करके भोजदेव इंगित करना चाहते हैं कि तृतीय पाद में धातुओं को लगनेवाले प्रत्ययों का विधान होने जा रहा है -

सामान्यतया प्रकृति, उपपद, उपाधि, विकार एवं आगमों को छोडकर शेष की प्रत्यय संज्ञा होती है ।[१९] वैसे भी

"प्रत्यय"- संज्ञा का ही एक प्रकार है ।

भोजदेव ने प्रत्ययों के विभाजन की रूपरेखा को समझाते हुए प्रत्ययों का विभाजन इस प्रकार से किया हैं-

(१) सन् प्रत्यय प्रकरण १-३-१ से १-३-७५ तक[२०]

(२) विकरण प्रत्यय प्रकरण १-३-७६ से १-३-१२८ तक[२१]

(३) कृत् प्रत्यय प्रकरण १-३-१२९ से २-४-२८३ तक[२२]

(४) कृत्यप्रत्यय प्रकरण का समावेश कृत् प्रकरण में ही हो जाता है ।[२३]

(५) तद्धितप्रकरण (३-१-१) से ३-४-१३५ तक माने जा सकते हैं ।[२४]

---

१८ सं. व्या. का उ. वि. पृ. १७१.

१९ पा. अ. (३-१-१) व्या. महा. तथा का० प्रकृत्युपपदोपाधि विकारागमान् वर्जयित्वा।

२० सर. कण्ठा १-१-९ ततोविधीयमानः सनादिकराकपः प्रत्ययः ।

२१ वहीं १-१-१० सस्यादिराशानचो विकरणः ।

२२ वहीं १-१-११ तव्यादयः प्राक्तिपः कृतः ।

२३ वहीं १-१-१२ प्राङ्ण्वुलः कृत्याः ।

२४ वहीं १-१-१५ प्रागजितीयाणादयः तद्धिताः ।

(१) सन्प्रत्यय - भोजदेव ने तृतीय पाद में १-३-७५ तक के सूत्रों में सनादि तेरह प्रत्ययों का विधान किया है । सनादि प्रत्ययों में (१) सन् (२) काम्यच् (३) क्यच् (४) विप् (५) क्यङ् (७) यक् (८) यङ् (९) णिच् (१०) णिङ् (११) आम (१२) ईयङ् (१३) आम आदि ।

(२) विकरण प्रत्यय - "सरस्वतीकण्ठाभरण" में विकरण प्रत्यय आदेशरुपेण प्रयुक्त हुअे हैं । विकरण प्रत्ययों में सत्रह आदेशों का भोजने विधान किया है, यथा (१) स्य (२) तासि (३) सिच् (४) क्स (५) चङ् (६) अङ् (७) चिण् (८) यक् (९) शप् (१०) श्लु (११) श्यन् (१२) शः (१३) श्नः (१४) उः (१५) श्नुः (१६) श्ना (१७) शानच् ।

सिच् प्रत्यय का विधान १-३-७७ से १-३-८१ तक के पाँच सूत्रों में किया गया है । चङ् प्रत्यय के पश्चात् अङ् प्रत्यय का विधान १-३-८७ से १-३-९२ सूत्रों तक अनुवृत्त होता है । १-३-९३ सूत्र से चिण् प्रत्यय की अनुवृत्ति १-३-१०२ तक जाती है । १-३-१०३ से १-३-१०७ तक के सूत्र यक् प्रत्ययार्थ प्रयुक्त हुए हैं । १-३-१११ से १-३-११६ तक के सूत्रश्यन् प्रत्यय का विधान करते हैं ।

(३) कृत्प्रत्यय प्रकरण - कृत् प्रत्यय एवं कृत् प्रत्ययान्तर्गत कृत्य प्रत्यय भावकर्म विधि में ही व्यवहृत हुअे है । "ऋहलोर्ण्यत्" (१-३-१७०) तक के सूत्र भावकर्म में ही विहित होंगे । भोजदेव ने कृत्संज्ञक प्रत्यय इस प्रकार से पढे हैं (१) तव्यत् (२) तव्य (३) अनीयर् (तव्यत्, तव्य, अनीयर की अनुवृत्ति (१-३-१३५) तक के सूत्रों तक जाती है) (४) केलिमर् (५) यत् प्रत्यय भोजदेव (१-३-१३७ से १-३-१४८) तक के सूत्र यत् प्रत्यय का विधान करते हैं । (६) क्यप् (क्यप् प्रत्यय का विधान भोजदेव ने (१-३-१४९ से १-३-१६९) तक के सूत्रों में किया है । (७) ण्यत् (ण्यत्प्रत्ययान्त सूत्र (१-३-१७० से १-३-१८३) तक प्रयुक्त हुअे हैं ।

(४) कृत्यप्रत्यप्रकरण :- तृतीय पाद में कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों में भोजदेव निम्न तेरह प्रत्ययों का परिगणन करते हैं । (१) ण्वुल् (२) तृच् (३) अच् (४) ल्युः (५) णिनि (६) क (७) ड (८) शः (९) ण (१०) स्थकन् (११) ण्युट् (१२) ष्वुन् (१३) वुन् (१-३-१८७ से १-३-१९२) तक के सूत्र ण्वुल् तृच्, ण्य एवं अच् प्रत्यार्थ व्यवहृत हुअे हैं । (१-३-१९३) से १-३-१९७) तक के सूत्र ल्यु प्रत्यय का विधान करते हैं । (१-३-१९८ से १-३-२०६) तक के सूत्र णिनि प्रत्ययार्थ प्रयुक्त हुअे हैं । क एवं ड प्रत्यय

के विधान के बाद श प्रत्यय का प्रकरण १-३-२१२ से १-३-२१७ तक अनुवृत्त होता है । तदनन्तर (१-३-२१८ से १-३-२२४) तक सात सूत्रों में ण प्रत्यय का विधान किया गया है । अन्त में स्थकन्, ण्युट्, ष्वुन्, एवं वुन् प्रत्यय के विधान के बाद तृतीय पाद समाप्त होता है । इस प्रकार से भोजदेव ने पचास प्रत्ययों का विधान किया है ।

चतुर्थ पाद :-

पाणिनि के तृतीय अध्याय का द्वितीय पाद प्रथमाध्याय के चतुर्थ पाद के रूपमें व्यवहृत हुआ है । भोजदेव ने चतुर्थ पाद में (१) अण् (२) कः (३) अच् (४) ट (५) इन (६) खश् (७) ख (८) ड (९) णिनि (१०) टक् (११) खिष्णुच् (१२) खुकञ् (१३) ख्युन् (१४) क्विन् (१५) क्स (१६) कञ् (१७) ण्वि (१८) विच् (१९) मनिन् (२०) क्वनिप् (२१) वनिप् (२२) क्विप् (२३) क्वि (२४) इनिः (२५) क्तवतु (२६) क्तः (२७) ङ्वनिप् (२८) अतृन् (२९) क्स्नुः (३०) लुङ् (३१) लङ् (३२) लृट् (३३) लिट् (३४) लट् (३५) लिङ् (३६) शतृ (३७) शानच् (३८) शानन् (३९) तृन् (४०) इष्णुच् (४१) क्स्नुः (४२) स्नुः (४३) क्नु : (४४) घिनुण् (४५) ण्वुल् (४६) वुञ् (४७) युच् (४८) उकञ् (४९) षाकन् (५०) आलुच् (५१) रुः (५२) क्मरच् (५३) घुरच् (५४) कुरच् (५५) क्वरप् (५६) ऊकः (५७) कि (५८) किन (५९) रः (६०) उः (६१) नजिङ् (६२) आरुः (६३) क्रु (६४) क्रुकन् (६५) क्लुकन् (६६) वरच् (६७) डुः (६८) ष्ट्रन् (६९) इत्र (७०) लोट् ।

इस प्रकार से भोजदेव ने चतुर्थ पाद में (७०) सत्तर प्रत्ययों का विधान किया है । ण्वुल्णिनि जैसे प्रत्ययों का तृतीय पाद में उल्लेख हुआ है तथापि प्रयोजनवशात् चतुर्थ पाद में भी भोजने पुनः पठन किया है । चतुर्थ पाद में लुङ् लुङ् आदि सात लकारों का भी उल्लेख हुआ है, तथा लकार संबंधी प्रयोजन भी भोज ने इसी पाद में परिगणित किये हैं ।

द्वितीय अध्याय

प्रथम पादः भोजदेव द्वितीयाध्याय के प्रथमपाद से तृतीयपाद तक के सूत्रों को उणादि सूत्रों के रुप में पढते हैं । आपिशलि, पाणिनि, कातन्त्र, चान्द्र आदि वैयाकरणी आचार्यो ने स्व स्व शब्दानुशान में अलग से उणादि सूत्रों का प्रावधान किया था । भोजदेव भी उसी परंपरा का निर्वाह करते हुअे द्वितीय

अध्याय के प्रथम पाद से तृतीय पाद तक के सूत्रों का उणादि सूत्रों के रुप में विधान करते हैं ।

प्रायः करके सभी आचार्यों ने उणादि सूत्रों का विधान इसी हेतु किया है यथा- "अर्थ की खोज में व्याकरण के सामान्य नियमों को असमर्थ पाकर ही प्रकृति मात्र की कल्पना के लिये" उणादि "की रचना की गई ।[२५]

भोजीय उणादि सूत्र पाणिनीय उणादि सूत्रों पर आधारित थे या शाकटायन? इस विषय में हमारा मत है कि भोज के उणादि सूत्र अधिकांश रुपेण पाणिनीय उणादि सूत्रों पर ही आधारित थे । भोज के उणादि सूत्रों की अन्य आचार्यो से यही विशेषता थी कि उन्होंने स्वतन्त्र "उणादिकोश" न लिखकर "सरस्वतीकण्ठाभरण" व्याकरण शास्त्र में ही उन सूत्रों का समावेश किया है।

आचार्य भोज ने द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद में "कृवापाजिमिस्व-दिसाध्यशूभ्य उण्" सूत्र द्वारा उणादि सूत्रों का निर्देश किया है । इस प्रथम पाद में उन्होंने (१) उण् (२) सूत्र (२-१-२ से २-१-६) तक ञुण् (३) सूत्र ७ से १८ तक उः (४) २-१-१९ से २-१-३९ तक के सूत्र "कु" प्रत्यय का विधान करते हैं । (५) आकु प्रत्यय का विधान करनेवाले चार सूत्र हैं। (६) तत्पश्चात् कंगुंच्, अटुच् आटुच्, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । (७) डु प्रत्यय विधायक चार सूत्र हैं । (८) णु प्रत्यय का विधान दो सूत्रों में किया गया है । (९) एणुविधायक एक ही सूत्र है । (१०) "तु" प्रत्यय का तीन सूत्रों में निर्देश किया गया है । (११) तुन् प्रत्यय का भी तीन सूत्रों में निर्देश किया गया है । (१२) २-१-६४ वा सूत्र कतु प्रत्यय का विधान करता है । (१३) "एधिवहोरतुच" (२-१-६५) एवं तत्पश्चात् का सूत्र अतुच् प्रत्यय का विधान करता है । (१४) आतुः (१५) दुक् प्रत्यय विधायक एक एक सूत्र है । (१६) धुक् प्रत्यय का निर्देश दो सूत्रों में किया गया है । (१७) दाभाभ्यां नुः (२-१-७१) सूत्र द्वारा "नुः" प्रत्यय का विधान करनेवाले छह सूत्र हैं । (१८) तत्पश्चात् डु, इष्णुच्, नुक्, आनुक्, रदानुक्, अक्नु, इलुच्, चिपुक्, बु एवं अमु प्रत्यय का विधान करनेवाले सूत्र पढे गये हैं । (१९) युस् प्रत्यय विधायक तीन सूत्र हैं । (२०) तदनन्तर अयुः त्युक्, रुः प्रत्यय विधायक एक एक सूत्र है । (२१) रुपूभ्यां क्रुन् (२-१-९३) प्रत्यय का निर्देश करनेवाले छह सूत्र हैं । (२२) आरुः प्रत्यय विधायक दो

---

२५ व्या. की. दा. भू. अ. पू. पृ. १४९.

सूत्र हैं ।

तीन सूत्रों में "ऊरुः" प्रत्यय का विधान किया गया है । तत्पश्चात् लुट्, लुक् एवं आलुच् प्रत्ययों का निर्देश किया है । शुन्, षुक्, अक्षु प्रत्यय का विधान करनेवाले एक एक सूत्र हैं । "ऊः" प्रत्यय का विधान "कृषिचमितनिधन्यन्दिसर्जिखर्जिभ्य ऊः" सूत्र द्वारा किया गया है । ऊः प्रत्यय की (२-१-११० से २-१-१२४) तक के सूत्रों में अनुवृत्ति अनुवृत्त होती है। तत्पश्चात् कूः, डूः आगुच् आदि प्रत्ययों के द्वारा कार्य सम्पन्न किया गया है। "दिवे ऋन्" (२-१-१२९) सूत्र द्वारा ऋन् प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है जो छः सूत्रों में प्रवृत्त होती है । "पातेस्तृजिच्च" (२-१-१३५) सूत्र द्वारा तृच् प्रत्यय का विधान किया गया है जो सात सूत्रों में प्रवृत्त होता है । "हुपूभ्यामृत्विजि तृन्ननिट् च" (२-१-१४२) सूत्र द्वारा तृन् प्रत्यय का विधान किया है जो सात सात सूत्रों में अनुवृत्त होता है । तत्पश्चात् डैः, डोः, एवं डौ. प्रत्यय का विधान किया गया है । "इः" प्रत्यय का विधान करनेवाले ग्यारह सूत्र हैं । इन् प्रत्यय विधायक तीन सूत्र हैं । "इञ्" प्रत्यय का निर्देश दो सूत्रों में किया गया है । "अलिशलिपलितलिघसिजम्यणिपणिभ्य इण्" (२-१-१६८) सूत्र द्वारा "इण्" प्रत्यय का विधान पाँच सूत्रों में किया गया है । उसके बाद किः, अकिः, एवं डिखि प्रत्यय का विधान किया गया है । "ईचिः" प्रत्यय विधायक तीन सूत्र हैं । "श्रिञो ढिः" (२-१-१८०) सूत्र द्वारा ढिः प्रत्यय का विधान किया है जो तीन सूत्रों में प्रवृत्त होता है । हेमचन्द्राचार्य ने भी (६३३) वाँ सूत्र इसी प्रकार का पढा है । तत्पश्चात् णि, तिप् ति, क्तिन्, चित्, अति एवं आति प्रत्यय को पढा है । "अभौ यामाभ्याम्" (२-१-१९६) यजोयश्च(२-१-१९७) अविभूम्यामन्तिः (२-१-१९८) शकेरुन्तिः (२-१-१९९) इन चार सूत्रों के आधार पर हेमचन्द्राचार्य ने (६६३ से ६६६) तक के सूत्रों का विधान किया है । तदनन्तर अन्ति उन्ति, क्थिन्, अथिन्, डिथि, इथि, अधि, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । आचार्य हेमचन्द्र ने भी (६७३, ६७४, ६७६) सूत्रों में इसी प्रकार का विधान किया है । "चूर्यगिभ्यां निः" (२-१-२०६) सूत्र द्वारा "निः" प्रत्यय का विधान किया गया है जो पाँच सूत्रों में प्रवृत्त होता है । तदनन्तर अनिच्, ऊनिः, मि, क्मिन्, रि, त्रिप्, क्रिन्, अरि, उरिन्, अलिच्, मलिच्, विन्, सिक्, असि, हि आदि प्रत्ययों का भोजने पठन किया है । "ईः" प्रत्यय की अनुवृत्ति पाँच सूत्रों में अनुवृत्त होती है । तत्पश्चात् चिक्, अजि, इच्, अटि, बिडिङ्, डबतुः, अति,

अत्, इति, उतिः, ऋति, मदिक्, डिट्, तदि, अदि, कनिन्, वनिप्, क्वनिप् मनिन् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । "गमेरिनिः" (२-१-२८५) सूत्र द्वारा "इनि" प्रत्यय का विधान किया गया है जो नौ सूत्रों में प्रवृत्त होता है । उसके बाद भुक्षिनक्, इमनिच् ईमनिच्, क्विन्, दमिक्, डिमि, मिः, क्विप् उरन्. डिवि क्विप्, इसि, उसि एवं डुमसुन् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । तदनन्तर "असुन्" (२-१-३२०) सूत्र से असुन् प्रत्यय का विधान किया है जिसकी अनुवृत्ति (२-१-३४१) तक के सूत्रों में अनुवृत्त होती है । तत्पश्चात् असिः, कनसि, ऊनसि एवं अमसि प्रत्यय का विधान करके भोज प्रथम पाद की समाप्ति करते हैं । इस प्रकार से उणादिप्रत्यय हेतु भोजदेव ने १३१ प्रत्ययों का इस पाद में ग्रहण किया है । आचार्य हेमचन्द्र ने भोजदेव के अनेक सूत्रों का अनुसरण किया है ।

द्वितीय पाद -

भोजदेव ने द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद में क्रमानुसार निम्नप्रत्ययों का विधान किया है । द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र "जीवेरातृकन् वृद्धिश्च" (२-२-१) है जिसमें आतृकन् प्रत्यय का विधान किया गया है । तत्पश्चात् कन्, कः, वुन्, आकः, किकन्, कीकन्, उकन्, ऊक, एलकः, आनकः, तिकन्, तकन्, तन्, ईतकः, आतकः, खः, ऊनक्, गः, गन्, आगच्, अंगच्, इंगक्, घ, अघच्, अचच्, इचच्, डिचच्, उचक्, डोचच्, अंचच्, छक्, जक्, इजक्, अंजच्, ज्ञ, ट, अटच्, इटच्,डिण्टन्, कीटन्, अरीटः, ऊटच्, कूटन्, एटच्, ओटच्, ठक्, अठच् डः, अण्डः, उडच्, ढः, णः, अणक्, आणक्, एष्णक्, तन्, क्तः, अतच्, आतच्, अन्तच्, इतन्, ईतन्, डुतच्, उन्तः, ऊतक्, क्थन्, थन्, थक्, अथ, ऊथन्, दन्, अन्दन्, किन्दन्, उन्दन्, उदन्, धः, अन्धच्, अधक्, उधक्, नः, युच्, युन्, क्युः, इनच्, इनन्, ईनच्, उनन्, ऊनः, तनन्, पः, कपन्, अप्, इपक्, ईपः, फक्, बः, अम्बच्, उम्बक्, भः, भन्, अभच् अंभच्, उभः, उंभक्, मन्, मक्, अमच्, डिमच् उमक्ऊमः आदि ११० उणादि प्रत्ययों का भोजदेव ने द्वितीय पाद में विधान किया है ।

तृतीय पाद -

भोजदेव ने तृतीय पाद में उणादि प्रत्ययों को क्रमानुसार निम्नप्रकार से पढा है-

(१)यः (२) क्यप् (३) अयन् (४) आयक् (५) आय्यः (६) इयः (७) ञालीयर् (८) स्यन् (९) अथ्यक् (१०) एन्यः (११) अन्यत् (१२)

रक् (१३) रन् (१४) कन् ? क्रन् (१५) अरः (१६) आरन् (१७) किरच् (१८) ईरच् (१९) उरच् (२०) उरन् (२१) ऊरन् (२२) ऊरः (२३) एरक् (२४) ओरः (२५) करन् (२६) तरच् (२७) सरन् (२८) ष्वरच् (२९) एबरः (३०) ष्ट्रन् (३१) त्रन् (३२) अत्रन् (३३) इत्रः (३४) उत्रः (३५) लः (३६) क्लन् (३७)अलच् (३८) अलक् (३९) लः (४०) आलच् (४१) कालन् (४२) आलञ् (४३) किलच् (४४) उलच् (४५) ऊलच् (४६) एलच् (४७) ओलः (४८) कलच् (४९) खलच् (५०) बलच् (५१) क्मलच् (५२) सलक् (५३) वलञ् (५४) वालन् (५५) वः (५६) क्वन् (५७) अवक् (५८) आवः (५९) षिवन् (६०) ईवः (६१) शः (६२) शक् (६३) अशच् (६४) आशच् (६५) किशच् (६६) पिशन् (६७) उशच् (६८) षः (६९) मषक् (७०) माषक् (७१) आषः (७२) टिषच् (७३) ईषन् (७४) उषन् (७५) ऊषन् (७६) सः (७७) असच् (७८) आसः (७९) पासः (८०) टिसट् (८१) इसच् (८२) ईसच् (८३) उसच् (८४) अम्बुसः (८५) हः (८६) अहः (८७) ओकहः (८८) आहः, (८९) ऊहक् (९०) ऊहः (९१) अक्षन् ।

इस प्रकार से भोजदेव ने तृतीय पाद में इक्यानवे उणादि प्रत्यय पढे हैं। भोज के कुछ उणादि सूत्र शाकटायन-पाणिनि अथवा चान्द्र उणादिकोश में अप्राप्य हैं । किन्तु इतना जरुर है कि उन उणादि प्रत्ययों का आधार भोज से पूर्व प्रचलित व्याकरणों से सम्बन्धित ग्रन्थ रहे होंगे, अथवा भोजने स्वयं नई सूत्ररचना की होगी यथा "गुजेर्जक् च" (२-३-३७) सूत्र द्रष्टव्य है ।

इस प्रकार से भोजदेव ने द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद से तृतीय पाद तक के सूत्रों को उणादि सूत्रों के रुप में पढे हैं । भोज के इन तीन पादों में पाणिनि के अधिकांश उणादि सूत्र पुनर्गठित किये गये हैं । इनके क्रम में हेरफेर अवश्य हुआ है ।

चतुर्थ पाद - यह संपूर्ण प्रकरण चान्द्र व्याकरण के आधार पर होने के कारण एवं धातु से सम्बन्द्ध होने के कारण कृत् तथा अन्य धातुप्रत्ययों की चर्चा भी एक साथ करनी अभीष्ट है अतः द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद में पुनः इसी क्रम को आगे बढाया गया है । निश्चय ही उणादि को भोजदेव ने धातुप्रत्ययों में कृत् प्रत्ययों से भी पहले स्थान दिया है । इसी पाद में पाणिनि के तृतीय अध्याय का तृतीय एवं चतुर्थ पाद का आधा भाग समवेत हो जाता है ।"उणादयोभूतेऽपि" (२-४-१) सूत्र द्वारा वर्तमान काल के सिवा भूतकाल में भी उणादि प्रत्यय होते हैं ऐसा भोज दर्शाते है . तत्पश्चात् भोजदेव ने इसचतुर्थ

पाद में निम्न प्रत्ययों का विधान किया है । यथा - (१) लट् (२) लिङ् (३) लुङ् (५) लुट् (६) लृट् (७) शतृ (८) शानच् (९) ण्वुल् (१०) अण् (११) तुमुन् आदि प्रत्ययों का विधान किया है । तत्पश्चात् "घञ्" (२-४-२१) सूत्र से (२-४-७३) तक के सूत्रों में घञ् प्रत्यय का अधिकार प्रवृत्त होता है । घ प्रत्यय के पश्चात् क, अच्, अप्, आदि प्रत्यय का अधिकार प्रवृत्त होता है । तत्पश्चात् ण, क्त्रि, अथुच, न, नङ्, कि:, इनुण्, क्तिन्, क्यप्, श, य, अ, अङ्, युच्, क्विप्, णच्, अनि, ण्वुल्, इञ्, ण्वुच्, क्त आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । "ल्युट् च" (२-४-१६४) सूत्र से ल्युट् प्रत्यय का विधान करते हैं जिसका अधिकार (२-४-१७२) सूत्र तक अनवृत्त होता है। तत्पश्चात् घ:, घञ्, ड, डर, इक, इकवक, इक्, स्तिप्, खल्, युच्, लृङ्, लोट्, क्त्वा, णमुल्, खमुञ्, क्तिच् आदि पचपन प्रत्ययों का विधान किया गया है।

तृतीय अध्याय

प्रथम पद :-

"सरस्वतीकण्ठाभरण" के तृतीयाध्याय के प्रथम पाद का आरंभ पाणिनि के तृतीय अध्याय के अवशिष्ट विषय के लिये होता है । यह धातु सम्बद्ध प्रकरण है । इस प्रकरण के समाप्त होते ही आत्मनेपद परस्मैपद सम्बन्धी शेष प्रकरण के लिये भोजने पाणिनि के प्रथमाध्याय के तृतीय पाद का पुनः आरंभ किया है । इसी प्रसंग में पाणिनि के द्वितीयाध्याय का तृतीय पाद भी पुनः अनुकृत होता है । भोज के तृतीय अध्याय के प्रथम पाद तक में पाणिनि के प्रथमाध्याय का पूरा विषय पूर्ण हो जाता है । तृतीयाध्याय के प्रथम पाद में भोजने धातु से सम्बद्ध निम्न आदेशों (प्रत्ययों) को पढा है ।

(१) तिप्, तस्, झि, आदि अठारह आदेश (२) इत् (३) अन्त (४) अत् (५) रत् (६) झरेच् (७) ऐश् (८) तिप्-तस् आदि नौ परस्मैपद प्रत्ययों को णल्-अतुस् आदि नौ आदेश (९) ब्रू को आह आदेश (१०) औ (११) एकारादेश (१२) से (१३) डा-रौ-रस् (१४) उकारादेश (१५) हि (१६) तातङ् (१७) आनि (१८) आम् (१९) व-अम् (२०) ऐप् (२१) ताम्-तम् - त- अम् (२२) यासुट् आगम (२३) रन् (२४) अत् (२५) सुट् आगम (२६) स लोप (२७) इयादेश (२८) जुस्, भोजदेव ने (३-१-२९ से ३-१-४०) तक के बारह सूत्रों में आदेशों का विधान किया है, जिसमें अधिकांश

सूत्र पाणिनीय तृतीय अध्याय के चतुर्थ पाद से लिये गये हैं । "आत्मनेपदानि भावकर्मणोः" (३-१-४१) सूत्र से (३-१-१४६) सूत्रों तक आत्मनेपद - परस्मैपद प्रकरण चलता है । तदनन्तर द्वादश सूत्रों में प्रथम-मध्यम तथा उत्तमपुरुष का विधान एवं तत्सम्बद्ध एकवचन - द्विवचन एवं बहुवचन विभक्ति निर्देश का प्रकरण दर्शाया गया है । पुनः (३-१-१५९) सूत्र से आरंभ कर प्रातिपदिक के विषय में आदेश विधान प्रदर्शित किया गया है, जिसमें अधिकांश सूत्र पाणिनि के सप्तमाध्याय के प्रथम पाद के साथ सम्बद्ध है, उन्हें यहाँ स्थान दिया गया है । (३-१-१५९) सूत्र में प्रातिपादिक से परे स्वादि इक्कीस प्रत्ययों का विधान किया गया है । तदनन्तर ऐस्, इन्, स्य, य, अत्, स्मै, स्मात्, स्मिन्, शी, साम्, औश्, अम्, अश्, न, भ्यम्, अत्, आकम्, नुडागम, त्रयादेश आदि आदेश विधायक सूत्रों को (३-१-१९८) तक के सूत्रों में भोजने प्रदर्शित किया है । आदेश प्रकरण के पश्चात् विभक्ति प्रकरणकी शरुआत होती है जिसमें प्रथमा-द्वितीया-तृतीया-चतुर्थी पंचमी-षष्ठी, एवं सप्तमी आदि विभिक्तयों का कहाँ कहाँ किन किन अर्थो में प्रयोग होता है उसका निर्देश किया गया है यह विभिक्ति प्रकरण प्रथम पाद की समाप्ति तक अनुवृत्त होता है, जिसमें भोजने पाणिनि के द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद. का विषय और तद्विषयक सूत्रों को ग्रहण किया है ।

"सरस्वतीकण्ठाभरण" की डो. टी.आर. चिन्तामणि द्वारा संपादित आवृत्ति में तृतीयाध्याय के प्रथम पाद की संख्या ३०४दर्शायी गयी है । जिसमें "प्रतिपदषष्ठयाः पूर्णो विधिः" (३-१-२९०) सूत्र को अधिक के रुप में दर्शाया गया है, जबकि नारायणदण्डनाथ कृत टीकावाली त्रिवेन्द्रम् से १९३८ में प्रकाशित आवृत्ति के तृतीय भाग में "लिट इरेच्" एवं "तस्यैश्" (३-१-८९) सूत्र को विभाजित करके पढ़ा है । अनुपसर्गाज्ज्ञः (३-१-१२५) तथा क्वचिद् द्विवचनं च (३-१-१५३) सूत्र को अधिक के रुप में पढा है, जो टी.आर. चिन्तामणि वाली आवृत्ति में अप्राप्य है । "न स्त्रियाम्" "अनुपलब्ध्यादिभ्यः" (३-१-२३०-२३१) सूत्र को नारायण दण्डनाथ ने विभाजित पढा है जब कि टी.आर. चिन्तामणि ने एक ही सूत्र के रुप में पढा है । अतः नारायण दण्डनाथ वाली आवृत्ति में इस पाद की संख्या ३०७ है, जब कि टी.आर. चिन्तामणि वाली आवृत्ति की संख्या ३०८ है ।

द्वितीय पाद - पाणिनि के द्वितीय अध्याय का आरंभ समास प्रकरण से होता है, भोजदेव इसे तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद से आरंभ करते हैं । द्वितीय

एवं तृतीय पादों में यही विषय चर्चित है । जिसमें पाणिनि के द्वितीयाध्याय के प्रथम दो पादों के अतिरिक्त प्रथमाध्याय के द्वितीय पाद के कुछ अवशिष्ट विषय के सूत्र भी यथावसर प्रयुक्त हुअे हैं ।

भोजने तृतीयाध्याय के द्वितीय पाद में समासप्रकरण की चर्चा इस प्रकार से की है - (३-२-१) सूत्र में सुप्सुप् [२६] समास का विधान करके "अव्ययीभावः" (३-२-८) सूत्र से अव्ययीभाव समास की चर्चा करते हैं। अव्ययीभाव प्रकरण (३-२-३२) सूत्र तक अनुवृत्त होता है । भोज ने इस समासप्रकरण में सिर्फ पाणिनीय सूत्रों का ही विधान नहीं किया है अपि तु गणपठित शब्दों को भी सूत्ररुप में पढा है । यथा-"तिष्ठद्गुवहद्गवायती"... (३-२-२२) एवं तत्पश्चात् के सूत्र द्रष्टव्य हैं । "तत्पुरुषः" (३-२-३३) सूत्र से तत्पुरुष समास का आरंभ होता है यह अधिकार सूत्र है । इसका अधिकार द्वितीय पाद की समाप्ति तक जाता है। तत्पुरुष समास में भोजने द्वितीया-तृतीयाचतुर्थी-पंचमी-षष्ठी एवं सप्तमी तत्पुरुष तथा नञ्तत्पुरुष का विधान किया है । इस प्रकरण में भोज के कुछ सूत्र सौनाग [२७] पठित वार्तिक के आधार पर रचे गये हैं, जिसका भाष्यकार ने भी अनुकरण किया है ऐसा टी.आर. चिन्तामणि का मत है । भोज के इस द्वितीय पाद में नारायणद्रण्डनाथ की टीकावाली आवृत्ति में ८३-८४ सूत्र तथा ८९-९० सूत्र विभाजित पढे गये है । तथा "युवारलतिपलित." (३-२-९२) सूत्र को अधिक के रुप में पढा है अतः इस पाद में १६४ सूत्र प्राप्त होते है जब कि चिन्तामणि की आवृत्ति में सूत्र संख्या १६१ है ।

तृतीय पाद : भोजने तृतीयाध्याय के तृतीयपादके प्रथम सूत्र द्वारा "बहुव्रीहि" समास का निर्देश किया है । [२८] भोजदेव का बहुव्रीहि समास प्रकरण (३-३-१८) सूत्र तक अनुवृत्त होता है ।"चार्थे युगपदधिकरणवचनतायां द्वन्द्वः" (३-३-१९) सूत्र से भोजने द्वन्द्व समास का विधान किया है । भोजने इस प्रकरणमें इतरेतर द्वन्द्व एवं समाहार द्वन्द्व की चर्चा की है । इसी प्रकरण में भोज अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि एवं द्वन्द्व समास की व्याख्या प्रस्तुत

---

२६ सर. कण्ठा - ३-२-१ सुप्सुपा सहैकार्थीभावे समासः ।

२७ सर कण्ठा. ३-२-१४५ से ३-२-१४९ T.R. Chintamani - This and the following are vartikas of the saunag school. see Bhashya 2-2-18 for some there are differences in the readings.

२८ सर. कण्ठा ३-३-१ शेषो बहुव्रीहि.

करते हैं। [२९] तदनन्तर (३-३-१०२) सूत्र तक कौन कौन से शब्दो का प्रयोग पूर्व में होता है एवं कौन कौन से शब्दों का प्रयोग पर होता है इसकी विशद चर्चा की गई है । "सरुपाणामेकशेष एकविभक्तौ" (३-३-१०३) सूत्र से एकशेष प्रकरण का आरंभ होता है जिसमें स्त्रीलिंग शब्दों द्वारा पुवंत्कार्य दर्शाये गये हैं । पुंल्लिंग एवं स्त्रीलिङ्ग शब्दोमें पुंल्लिंग शब्द अवशिष्ट रहते हैं अव्ययीभाव संज्ञक शब्द नपुंसकमें प्रयुक्त होते हैं । उसकी चर्चा की गई है । नपुंसक प्रातिपदिक शब्द हमेशा ह्रस्व होता है यह दर्शाया गया है । इस प्रकार से अन्त तक इसी प्रकरण पर आधारित सूत्रों का विधान किया गया है । इस प्रकार से भोजदेव ने द्वितीय तृतीय पादों में मुख्यतः समासों की चर्चा की है । प्रकारान्तरेण कर्मधारय समास का भी उल्लेख किया गया है । इस प्रकार से यहाँ समासप्रकरण समाप्त होता है ।

चतुर्थ पाद -

तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद से भोजदेव पाणिनि के सुबन्त प्रकरण का आरंभ करते हैं । इसमें सर्वप्रथम लिंग प्रकरण है । पाणिनि चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद के पचहत्तरवे सूत्र से तद्धित प्रकरण का आरंभ करते हैं, जब कि भोजदेव इन्हें बिना तद्धित नाम दिये ही उनमें "स्त्र्यधिकार" के प्रत्ययों को नैरन्तर्य क्रम में पढते हैं । किन्तु तद्धितों का पृथक् प्रकरण वे अलग ही अध्याय से आरंभ करते हैं ।

इस चतुर्थ पाद में भोजदेव "स्त्रियाम्" (३-४-१) सूत्र के विधान द्वारा स्त्र्यधिकार" का विषय सूचित करते हैं । तत्पश्चात् स्त्री विषय में सर्वप्रथम टाप् प्रत्यय का विधान करते हैं । "ऋचि पादः" (३-४-१४) सूत्र तक टाप् प्रत्यय की अनुवृत्ति चलती है । "ऋन्नो ङीप्" (३-४-१५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय का विधान किया गया है, तत्पश्चात् डाप् एवं ष्फ प्रत्यय का विधान किया गया है । "षितो ङीष्" (३-४-५२) सूत्र से ङीष् प्रत्यय का अधिकार प्रवृत्त होता है जो (३-४-१०९) सूत्र तक अनुवृत्त होता है । "ऊङुतः" (३-४-११०) सूत्र से ऊङ् प्रत्यय का विधान किया गया है जो "अरज्वादेरप्राणिनो वा" (३-४-११५) सूत्र तक प्रवृत्त होता है । तत्पश्चात् "अतोडीन्" (३-४-११६) सूत्र से ङीन् प्रत्यय का विधान किया गया है । जिसका अधिकार "नृनरयोः वृद्धिश्च" (३-४-१२५) सूत्र तक प्रवृत्त होता है । "यङश्चाप्" (३-४-१२६) सूत्र से भोजदेव चाप् प्रत्यय का विधान करते हैं । अन्त में

२९ सर. कण्ठा ३-३-४९ प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः ।

ति एवं ष्यङ् प्रत्यय का विधान करके भोजदेव पाद की समाप्ति करते हैं ।

भोजदेव ने इस पाद में भी गणपठित शब्दों के हेतु एवं वार्तिकों के हेतु अनेक सूत्रों का विधान किया है । इस प्रकार से गणसूत्र एवं वार्तिक सूत्रों को सूत्ररुप में ही स्वीकारते दिखाई देते हैं ।

चतुर्थ अध्याय

प्रथम पाद :-

भोजदेव चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद का आरंभ तद्धित प्रकरण से ही करते हैं । इस पाद में भोजदेव निम्न तद्धित प्रत्ययों का विधान करते हैं। भोजदेव का प्रथम सूत्र "प्राग्जितादण्" (४-१-१) है जो अधिकार सूत्र है। इस सूत्र द्वारा भोजदेव ने "जयति-दीव्यति-खनति" (४-४-४७) सूत्र से पूर्व जो भी अर्थ आयेंगे उसमें अण् प्रत्यय का विधान किया है । तदनन्तर ण्य, अ, अञ्, यञ्, टीकक्, ढक्, नञ्, स्नञ्, यत्, इञ्, फञ्, फ्यञ्, फक्, ढक्, ऐरक्, आरक्, ढ्रक्, व्यत्, व्यन्, छ, छण्, घ, ढकञ्, ख, अञ्, खञ्, ढञ, ठक्, ण, फिञ्, ण्य, इण्, फिन्, ञ्यङ्, ड्यण्, आदि प्रत्ययों का प्रथम पाद में विधान किया गया है . तत्पश्चात् अपत्यार्थ में विहित प्रत्ययों के लुक् का प्रकरण "कम्बोजमुरलकेरलचोलशकरवसादिभ्यो लुक्" (४-१-१७७) सूत्र से आरंभ होता है, जिसकी अनुवृत्ति प्रथम पाद के समाप्ति तक जाती है ।

इस प्रकार से इस प्रथम पाद में भोजने तद्धितार्थ में विविध प्रत्ययों का विधान किया है । इस प्रथम पाद में टी. आर. चिन्तामणि ४-१-८-९ सूत्रों को विभाजित करके पढते हैं जबकि नारायण दण्डनाथ ने एक ही सूत्र के रुपमें ग्रहण किया है "लोहितशंशितबक्षभ्रुवल्गुमण्डुमङ्क्षुशङ्कुलिगुजि-गीषुगुहलुमन्तुतन्तुभ्यः (४-१-४७) एवं" "वा भ्रष्टकपिष्ठलाभ्याम्" (४-१-१९७) सूत्रों को नारायणदण्डनाथ अधिक के रूप में पढते हैं, जबकि टी.आर. चिन्तामणि वाली आवृत्ति में ये दोनों सूत्र अप्राप्य हैं । भोज ने इस पाद में भी गणपठित शब्दों के लिये एवं वार्तिको के लिये सूत्र विधान किया है जिसमें वन-वनस्पति- गोत्र आदि का पठन किया गया है ।

द्वितीय पाद-

तद्धित प्रकरण के इस द्वितीय पाद में भोजने निम्न प्रत्ययों का विधान किया है । यथा (१) रक्तं अर्थ में ठक्, अन्, कन्, अञ्, आदि । (२) नक्षत्र से युक्त काल अर्थ में "छ" प्रत्यय, (३) "दृष्टं साम" अर्थ में डयत्, ड्य,

वुञ, प्रत्यय, (४) परिवृत्त रथ अर्थ में इनि एवं अञ् प्रत्यय (५) संस्कृत अर्थ में यत्, ठक्, अण् ढञ् आदि प्रत्यय, (६) सास्यदेवता अर्थ में अण्, घन्, छ, घ, टयण्, यत्, एवं ठञ् प्रत्यय (७) क्रीडा अर्थ में ण, ञ प्रत्यय (८) तदधीते तद्वेद अर्थ में ठक्, ठन्, ष्ठन्, इनि, वुन्, आदि प्रत्ययों का विधान (९) तस्य समूह अर्थ में अण्, अञ्, वुञ्, यञ्, ठञ्, ष्ठक्, यञ्, छञ्, छ, ण, ढञ्, ख, य, ऊल, त्र, कडयच्, इनि, तल्, व्य, डुलच्, डामहच्, सोढ-दूस् मरीसच्, पिंज, पेज आदि प्रत्ययों का विविध अर्थो में विधान किया गया है । (१०) विषयो देश अर्थ में वुञ्, विधल् भक्तल् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । (११) निवास-अदूरभव, निवृत्त एवं देश आदि चारों के अर्थो में जो प्रत्यय लगता है उसे चातुरर्थिक प्रत्यय कहते हैं । इस चातुरर्थिक प्रत्यय की अनुवृत्ति द्वितीय पाद की समाप्ति तक समझनी चाहिये । चातुरर्थिक अर्थ में भोजदेव ने निम्न प्रत्ययों का विधान किंया है । यथा-अञ्, अण्, वुञ्, छण्, क, ष्ठच्, इल्, स, इनि, र, ण्य, य, ष्फक्, फिञ्, इञ्, ञ्य, कक्, ष्ठक् छ, ड्मतुप्, ड्वलच्, वलच्, एवं मतुप् । इस पाद में भोज ने अधिकांश सूत्र गणपठित शब्दों के आधार पर पढे हैं। नारायणदण्डनाथ वाली आवृत्ति में "नोक्थान्यसानि" (४-२-४६) उक्थलोकायतन्यायन्यासपुनरुक्तय-ज्ञचर्चाक्रमेतरश्लक्ष्णसंहितसंघाटपदक्रमेभ्यः (४-२-४७) तथा "न बहुवचनात्" (४-२-८८) इन तीन सूत्रों का अधिक के रुप में परिगणन प्राप्त होता है, जबकि टी.आर. चिन्तामणि वाली आवृत्ति में ये तीनों सूत्र अप्राप्य हैं । भिन्न भिन्न अर्थो में कुछ प्रत्ययों का पुनरावर्तन सा हुआ है ।

तृतीय पाद - तद्धित प्रकरणवाले इस तृतीय पाद में शेष अर्थ में जिसकी अनुवृत्ति (४-३-१२१) सूत्रों तक जाती है, निम्न प्रत्ययों का विधान किया गया है । यथा-(१) घ (२) ख (३) य (४) खञ् (५) ढकञ् (६) ढक् (७) त्यक् (८) ष्फक् (९) अण् (१०) यत् (११) ष्ठक् (१२) नुक् (१३) त्यप् (१४) एत्य (१५) ण (१६) अञ् (१७) ञ (१८) अञ् (१९) अण् (२०) छ (२१) ठञ् (२२) ञिठ् (२३) वुञ् (२४) कन् (२५) छण् (२६) खञ् (२७) ञ्य (२८) ट्यु (२९) ल (३०) ठक् (३१) एण्य (३२) अ (३३) म (३४) इमच् आदि प्रतत्यय ।

(२) जात अर्थ में अण् ष्ठप्, वुञ्, कन्, अ, छण्, ट, आदि प्रत्ययों का विधान होता है ।

(३) कृतादि अर्थमें यथाविहित अणादि प्रत्यय लगते हैं ।

(४) उप्त (बोने के अर्थ में) यथाविहित अणादि प्रत्यय, वुञ्, प्रत्यय का विधान समझना चाहिये ।

(५) देयम् अर्थ में वुन्, वुञ्, ठञ्, आदि प्रत्ययों का विधान होता है ।

(६) व्याहरति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय लगते हैं ।

(७) तत्र भव इस अर्थ में यत्, ढञ्, ञ्य, ठञ्, छ, यत्, ख, मण्, मीय, दिनण्, कन्, ष्ठक्, आदि प्रत्ययों को विहित समझना चाहिये ।

(८) भव व्याख्यानइस अर्थ में ठञ्, ष्ठन्, यत्, अण्, ष्ठक्, आदि प्रत्ययों का विधान समझना चाहिये ।

(९) तत आगत इस अर्थ में अणादि प्रत्यय, ष्ठक्, प्रत्यय, अण्, वुञ्, ष्ठञ्, अण्, रुप्य, मयट्, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

(१०) तत्पश्चात् अणादि प्रत्यय, छ, छण्, ञ्य, अण्, अञ्, ढञ्, ठक्, वुन्, आदि प्रत्यय प्रभवति, गच्छति, ग्रन्थ, अभिजन, भक्ति, प्रोक्त आदि विविध अर्थो में विहित किये गये हैं ।

(११) वेदं वेत्ति, अधीते आदि अर्थो में छण्, णिनि, अण्, ढिनुक्, इनि, अर्ण्, तसि, यत्, अञ्, ढञ् , तथा वुञ् आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है ।

(१२) तस्य इदम् इस अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय, यत्, अञ्, ठक्, वुन् आदि प्रत्यय विहित समझने चाहिये ।

(१३) धर्मादि अर्थ में अण्, वुञ्, छ, इञ्, षेण्यण्, आदि प्रत्ययों का विधान समझना चाहिये ।

श्री टी.आर. चिन्तामणि मद्रासवाली आवृत्ति में जनपदेस्तदवधिभ्यश्च (४-३-५५) सूत्र को एक ही सूत्र के रूप में पढते हैं । जबकि त्रिवेन्द्रम् प्रकाशित नारायणदण्डनाथ की आवृत्ति में जनपदेभ्यः तदवधिभ्यश्च सूत्रों को विभक्त करके पढा है । इसी प्रकार- (२) "द्वन्द्वाददेवासुररक्षोसुरगौणमुख्यादेः" (४-३-२०५) वाले सूत्र को नारायणदण्डनाथ अधिक के रुप में पढते हैं जब कि टी.आर. चिन्तामणिवाली आवृत्ति में यह सूत्र अप्राप्य है ।

(३) नारायणदण्डनाथ ने "छण्णिथित्सु ? शौनकादिभ्यः (४-३-२२४) मधुरादिभ्योऽण् (४-३-२२५) प्राक्कल्पात्तेभ्यः (४-३-२२६) इन तीन सूत्रों को अधिक रुप में पढा है ।" जब कि टी.आर. चिन्तामणिवाली आवृत्ति में

इन सूत्रों का अभाव है । इस पाद में भोजदेव ने पाणिनि के अधिकांश चतुर्थाध्याय के द्वितीय एवं तृतीय पाद के सूत्रों का एवं गणपठित शब्दों का ही परिगणन किया है ।

चतुर्थ पाद :-

भोज के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद का आरंभ "तस्यविकार:" (४-४-१) सूत्र द्वारा होता है । विकार एवं अवयव के अर्थ में वे अण्, अञ्, मयट्, कन्, ठञ्, ष्ट, लञ्, वुञ्, खञ्, यत्, वय आदि प्रत्ययों का विधान करते हैं । भोज का "हेमार्थात् परिमाणे" (४-४-११) सूत्र द्रष्टव्य है, पाणिनि ने इसकी जगह "जातरुपेभ्य: परिमाणे" (४-३-१५३) सूत्र पढा है . भोज का न द्विरद्रुमयगोमयफलेभ्य: (४-४-४४) सूत्र द्रष्टव्य है, पाणिनि एतदर्थ विधान करते दिखाई नहीं देते ।

तत्पश्चात् भोजने जयति, दीव्यति, खनति, तरति, चरति, जीवति, आदि अर्थो में ठक्, ष्ठल्, छ, खञ्, आदि प्रत्ययों का विधान किया है । भोज ने इस पाद में हरति, निवृत्त, वर्तते, रक्षति, करोति, धर्म्य, शील, वृत्तं, हितं, अधीते, व्यवहरति, साधु आदि विविध अर्थो में उपर दर्शाये हुअे प्रत्ययों का ही विधान किया है । भोज के कुछ सूत्र वार्तिकों के आधार पर एवं कुछ सूत्र गणापठित शब्दों के आधार पर प्रतीत होते हैं । इस चतुर्थ पाद में भोजदेव २०८ सूत्रों का विधान करते हैं । टी.आर. चिन्तामणि प्रकाशित आवृत्ति में २०७ सूत्र हैं, जब कि नारायणदण्डनाथ वाली अवृत्ति में सपूर्वायाश्च (४-४-१५५) सूत्र को अधिक के रुप में परिगणित किया है । भोज ने इस चतुर्थ पाद में पाणिनीय अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के तृतीय एवं चतुर्थ पाद के सूत्रोंका ही विधान किया है । "सरस्वतीकण्ठाभरण" के इस चतुर्थ पाद में (४-४-१८१) सूत्र से पाद की समाप्ति तक के सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायीस्थ पंचमाध्याय के प्रथम पादस्थ सत्रह सूत्र समाविष्ट किये गये हैं ।

पंचमाध्याय

प्रथम पाद :-

भोज का तद्धित प्रकरण पंचमाध्याय के चतुर्थ पाद तक फैला हुआ है । "सरस्वतीकण्ठाभरण" के प्रथम पाद का प्रथम सूत्र प्राग्वतेष्ठञ् (५-१-१८) सूत्र से आरंभ होता है । इस पाद में भी भोजदेव विभिन्न अर्थो में भिन्न भिन्न प्रत्ययों का विधान करते हैं । प्रारंभ में भोज ने आर्हीय अर्थ में ठञ्,

ठक्, टिठन्, आय अञ्, अण्, ठन्, यत्, कन्, ड्वुन्, ख, आदि प्रत्ययों का विधान किया है । तत्पश्चात् इन्हीं में से प्रसंगोपात् प्रत्ययों का ग्रहण करके क्रीत, वाप, निमित्त, ईश्वर, पचति, संभवति, अर्हति, चरति, आदि भिन्न भिन्न अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया गया है । प्रसंगोपात् भाव अर्थ में त्व, तल्, इमनिच्, ष्यञ्, यक्, य, ढक्, वुञ्, छ, आदि प्रत्ययों का भी विधान किया गया है । भोज ने अनेक सूत्र पाणिनीय गणपठित शब्दों के आधार पर रचे हैं ।

यथा-पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा (५-१-१२२), वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्, च (५-१-१२३) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५-१-१२४) आदि । कहीं कहीं भोज के सूत्रों में कौशल्य भी देखने को मिलता है, यथा-पाणिनि संपादिनि (५-१-१९) सूत्र पढते हैं जबकि एतदर्थ भोजने शोभते (५-१-१०३) सूत्र पढ़ा है । भोज का कतेश्च (५-१-११) सूत्र काशिका की व्याख्या पर आधारित है । इस पाद में भोजने पाणिनीय पंचमाध्यायस्थ प्रथमपाद के सूत्रों का ही प्रयोग किया है ।

द्वितीय पाद - इस द्वितीय पाद में भोजने क्षेत्र, सख्य, कृत्, प्राप्त, भक्षण, गर्भधारण, वित्त, अनुभव, पाक, मूल, संघात, स्नेह, पूरण, तत्पर, निन्दा, आदि अर्थों में खञ्, ढक्, यत्, ख, कुणप्, जाहच्, चुंचुप्, चणप्, कटच्, त्यकन्, शाकट, शाकिन, अठच्, इतच्, दघ्नट्, द्वयसट्, डिनि, वतुप्, मात्रट्, तयप्, कन्, इनि, घच्, मतुप्, न, इलच्, र, व, विनि, आरकन्, ति-तु-व-य-त, युस्, आलुच्, चेलु, चूल, आदि प्रत्ययों का विधान किया गया है । द्वितीय पाद में भोज के कुछ सूत्र वार्तिकों पर आधारित हैं यथा-"आगोः कर्मकारिणी" (५-२-२३) सूत्र भाष्यस्थ वार्तिक आ तस्य गोः प्रतिपादनात् कार्यकारिणी खः निपात्यते (अष्टा ५-२-१४) पर आधारित है । पाणिनीय सम्प्रोदश्च कटच् । (५-२-२९) सूत्र के आधार पर भोजने, (५-२-३२ सूत्रसे ५-२-३६) तक के सूत्रों का विधान किया है जो द्रष्टव्य है । पाणिनीय "ऊषसुषिमुष्कमधोरः" तथा तत्पठित वार्तिक द्वय "र प्रकरणे खमुखकुंजेभ्यः उपसंख्यानम्" तथा "नगपांसुपाडुंभ्यश्चेति वक्तव्यम्" के आधार पर भोजने "उषसुषिमुष्कमधुबन्धुनखमुखपांसुपांडुभ्यो रः" तथा "ख नगसिन्धुकुंजेभ्यः संज्ञायां र" इस प्रकार से सूत्रद्वय का विधान किया है। इस द्वितीय पाद में भोज ने पाणिनीय पंचमाध्याय के द्वितीय पाद का ही ग्रहण किया है ।

तृतीय पाद :

तृतीय पाद का आरंभ भोजदेव विभक्ति से करते हैं । उनका प्रथम सूत्र ''षष्ठया व्याश्रये तस्'' षष्ठी विभक्ति के अर्थ में तस् प्रत्यय का विधान करता है । तत्पश्चात् उन्होंने तृतीया-चतुर्थी-पंचमी-सप्तमी आदि विभक्तियों में तस् प्रत्यय का विधान किया है । उसके पश्चात् सर्वनाम शब्द जैसे-इदम्, किम्, एतद्, भवद्, तद्, आदि शब्दों से प्रत्ययों एवं आदेशों का विधान करके कुत्र, यत्र, इह, तदा, अधुना आदि शब्दों के साधुत्व को निष्पन्न किया है । इसी प्रकरण में भोजने दानीं, द्य, एद्युस्, आरि, समसण्, धा, जातीय, कन्, आदि अनेक प्रत्ययों का विधान किया है । पाणिनीय ''स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्'' (५-४-३) एवं तत्पठित गणशब्दों के आधार पर दस सूत्रों का विधान किया है । तदनन्तर पूर्व अवर- अधर-ऊर्ध्व-दक्षिण-पश्चात्-किम् आदि शब्दों से विभिन्न प्रत्ययों एवं आदेशों का विधान किया गया है । ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ जैसे लोकप्रयुक्त शब्दों की सिद्धि भी इसी प्रकरण में दर्शायी गयी है । उच्चकैः, नीचकैः एवं युष्मकाभिः अस्मकाभिः जैसे शब्दों की सिद्धि के लिये भोजने ''सर्वनाम् नाम सौ भादि सुपां च'' (५-३-९५) सूत्र का ग्रहण किया है, जो भाष्य एवं काशिका व्याख्या पर आधारित जान पडता है । यथा- ''क्वचित् प्रातिपदिकस्य प्राक् टेः प्रत्ययो भवति, क्वचित् सुबन्तस्य टेः प्राक् प्रत्ययो भवति'' (५-३-७१) । भोजदेव के (५-३-८३) से ५-३-९९ तक के सूत्र निम्न पद्यवार्तिक के आधार पर रचे गये है[३०] । भोज का ''जीविकार्थे चापण्येऽर्चाचित्रध्वजेषु'' (५-३-१३१) सूत्र काशिका पद्य वार्तिक के आधार पर रचा गया है । [३१]

इस पाद में भी भोज के कतिपय सूत्र गणपठित शब्दों के आधार पर ही रचे गये हैं । अधिकांश सूत्र अष्टाध्यायी के पंचमाध्याय के तृतीयपाद से ही लिये गये है ।

वही ३-३-५० उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः ।
वहीं ३-३-५१ अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः ।
वहीं ३-३-५२ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः ।

३० पा. अ. ५-३-८३'' चतुर्थादनजादौ च लोपः पूर्वपदस्य च । अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्लइलस्य च ॥ ''

३१ पा. अ. ५-३-९९ तथा ५-३-१०० श्लोक वा० -
अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च ।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु ॥

चतुर्थ पाद :- चतुर्थ पाद के प्रथम दो सूत्रों में भोजने शस् प्रत्यय का विधान किया है । तदनन्तर वुन् प्रत्यय का विधान करते हुअे भोज "दण्डदानयोः" सूत्र का पठन करते है, पाणिनि ने दान शब्द की जगह "व्यवसर्ग" शब्द का ग्रहण किया है । वुन् प्रत्यय के पश्चात् भोजने कृत्वसुच्, धा, सुच्, मयट्, ञ्य, इकक् आदि प्रत्ययों का विधान किया है । कन् प्रत्यय का आरंभ भोज (५-४-१४) सूत्र से करते हैं जो (५-४-३३) सूत्रों तक अनुवृत्त होता है, कन् प्रत्यय के विधानार्थ प्रयुक्त भोज के आधिकांश सूत्र गणपठित शब्दों के आधार पर रचे गये हैं । उसके बाद भोजने छ, ठक्, अण्, तिकन्, स, स्न,कार, इफ्, धेय, यत्, ल्प, तनप्, ख, न, तल्, ञ्य, च्वि, साति, त्रा, एवं डाच्, आदि प्रत्ययों का विधान किया है ।

"समासान्तः" (५-४-८१) सूत्र से पाद की समाप्ति तक भोज इसके अधिकार को ले जाते है । तत्पश्चात् भोज समासान्त में अच् प्रत्यय का विधान करते हैं जिसकी अनुवृत्ति (५-४-१०५) सूत्र तक अनुवृत्त होती है । भोज का "पाण्डूदकृष्णेभ्यो भूमेः" (५-४-१०२) "संख्यानदीगोदावरीभ्यां च" (५-४-१०३) सूत्र श्लोक वार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[३२] तत्पश्चात् भोज (५-४-१२८) सूत्र तक टच् प्रत्यय का विधान करते हैं । डच् प्रत्यय विधान हेतु भोजरचित सूत्र "निक्षः शतोडच्" (५-४-१२९) भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया प्रतीत होता है ।[३३] तदनन्तर भोजने षच्, अप्, एवं अच् प्रत्यय का विधान किया है ।

काशिका (५-४-१२२) सूत्र पर पठित पद्यश्लोक के[३४] आधार पर रचित भोज का "मन्दाल्पाभ्यां च मेधायाः" सूत्र द्रष्टव्य है । एतद् अनन्तर भोजने अनिच्, इच्, ठच्, आदि प्रत्यय जानु शब्द को ज्ञु आदेश, अनङादेश, दतृ, ककुद्, काकुद् एवं हृदादेश का विधान किया है ।

भोज के चतुर्थपादीय अन्तिम कुछ सूत्र कप् प्रत्यय का विधान एवं निषेध, करते हैं ।

---

३२ पा. अ. ५-४-७५ कृष्णोदकपाण्डुपूर्वाया भूमेरच्प्रत्ययः स्मृतः ।
गोदावर्याश्च नद्याश्च संख्याया उत्तरे यदि ॥

३३ अष्टा महा० ५-४-७३ डच प्रकरणेसंख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं निस्त्रिंशाद्यर्थम् ।

३४ पा. अ. ५-४-१२२ - श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याल्पमेधसः ।
अनुवाहकता बुद्धिनैषा तत्वार्थदर्शिनी ॥

षष्ठाध्याय

प्रथम पाद :- पा. अ. स्थित सन्यङोः (६-१-९) तथा एकाचो द्वे प्रथमस्य (६-१-१) इन दोनों सूत्रों का संयोजन करके भोजदेव "सरस्वतीकण्ठाभरण" में षष्ठाध्याय के प्रथम सूत्र का आरंभ करते हैं । इस पाद में १ से १६ तक के सूत्र द्विर्वचन के विधानार्थ रचे हैं । इस पाद का लिट्यनामि (६-१-१३) सूत्र द्रष्टव्य है । पाणिनि ने एतदर्थ "लिटिधातोरनभ्यासस्य" (६-१-८) सूत्र रचा है । भोजदेव धातु शब्द की जगह "अनामि" शब्द का विधान करते हैं । (६-१-१७) "ष्यङः प्रधानस्य संप्रसारणं पुत्रपत्योः केवलयोस्तत्पुरुषे" सूत्र से आरंभ करके (६-१-५२) तक के सूत्र [३६] सम्प्रसारण का विधान करते हैं । बीच बीच में प्रसंगोपात् भोजदेव स्फी, पी, आदि आदेशों का भी विधान करते हैं । "धातोरुपदेश एचोऽशिदेशोरात्" (६-१-५३) सूत्र से "पदान्ते दिव उत्" (६-१-१४७) तक के सूत्रों में आदेशों का विधान किया गया है जिसमें आकारादेश, षकार को सकारादेश, नकारादेश, लोपप्रकरण (जिसमें व, य, विलोप, लोप, तिप्, तस् लोप, सु लोप आदि का निर्देश किया है) तुगागम, यणादेश, वान्तादेश, अयादेश, एकादेश, गुणादेश, वृद्ध्यादेश, पररुपादेश, दीर्घादेश, पूर्वरुपादेश, उकारादेश, अवङादेश आदि 'कार्यो का परिगणन किया गया है। "संपरिभ्यां कृञः सुट्" (६-१-१४८) सूत्र से पाद समाप्ति तक के सूत्रों में सुडागम का विधान करते हैं । भोजदेव का षष्ठाध्याय का प्रथमपाद पाणिनीय षष्ठाध्याय के प्रथम पाद का पुनरावर्तन मात्र है । भोजदेव का "लिट्यनामि" सूत्र अन्य आवृत्ति में अनुपलब्ध है । भोजदेव ने यहाँ कुछ सूत्रों को गणपठित शब्दों के आधार पर रचा है । इस पाद में १७५ सूत्र समाविष्ट किये गये है ।

द्वितीय पाद - "अलुगुत्तरपदे" (६-२-१) सूत्र द्वारा अलुक् समास का भोजदेव इस पाद में विधान करते हैं । द्वितीय पाद में विहित भोज का यह सूत्र पाणिनि के षष्ठाध्याय स्थित तृतीय पाद का पुनरावर्तन मात्र है । हमारे विचार से भोजदेव जितने पाणिनि से प्रभावित जान पडते हैं शायद ही उतने किसी अन्य वैयाकरणी से । (६-२-१) से (६-२-३१) "स्वसृपत्योर्वा" तक के सूत्रों में भोज पंचमी, तृतीया, चतुर्थी, सप्तमी एवं षष्ठी विभक्ति का अलुक् जताते हैं । प्रसंगवश पाणिनि की ही तरह भोज आदेश प्रकरण काभी विधान

३५ स. क. ६-१-१ सन्यङोराद्य एकाज्द्विः ।

३६ सर. कं. ६-१-५२ परेर्वा

करते हैं, जिसमें आनङ्, अरङ्, ईकारादेश, द्यावादेश, उषासादेश आदि का विधान किया है । तत्पश्चात् स्त्र्यधिकार में पुंवत्विधान एवं निषेध विधायक पन्द्रह सूत्रों का परिगणन किया है । (६-२-४१) से ६-२-५५) तक के सूत्र इस हेतु द्रष्टव्य है । पुवंत्विधान एवं निषेधविधान के बाद भोज पुनः आदेश प्रकरण पर आ जाते हैं, जिसमें ह्रस्वादेश, आकारादेश, हृदादेश, पदादेश, नसादेश, शीर्षन्, शीर्ष, उदादेश आदि का विधान किया है । "ह्रस्वारुर्द्विषतां मुम्" (६-२-९३) सूत्र से (६-२-१०३) "धेनोर्भव्यायाम्" तक के सूत्रों में मुमागम का विधान किया है । तत्पश्चात् भोज पुनः पुत्रट् आदेश, नकारलोप, नुडागम, अन्न-अद्ग आदेश, सादेश, ईश् एवं की आदेश, आकारादेश, अद्री आदेश, समि, सध्रि, तिरि, ईकार, ऊकार, कतादेश, का देश, अहन् आदेश एवं दीर्घादेश का विधान करके पाद की समाप्तिं करते हैं । (६-२-१६२) सूत्र से (६-२-१८०) तक के उन्नीस सूत्रों में भोजने दीर्घादेश का विधान किया है। इस प्रकार से भोज का द्वितीय पाद पाणिनीय तृतीय पाद का ही परिपाक है। इस पाद में निम्न तीन सूत्र "दूरोदाशनाशदमध्येषूच्च" "षषो दशसु" "मह्यां रौति मयूरः" नारायणवाली आवृत्ति में अनुपलब्ध हैं । टी.आर. चिन्तामणि ने इन सूत्रों का ग्रहण किया हैं ।

तृतीय पाद - षष्ठाध्याय के तृतीय पाद में भोजने "अंगाधिकार" प्रकरण की शरुआत की है । पाणिनिने "अंगाधिकार" प्रकरण में "अंगस्य" (६-४-१) सूत्र का विधान किया है जब कि भोजदेव एतदर्थ प्रकृतेः "सूत्र का विधान करते हैं । (६-३-१ से ६-३-१४) तक के सूत्रों में भोजदेव दीर्घ का विधान करते हैं । तत्पश्चात् के दो सूत्रों में श एवं उठादेश का विधान करके (६-३-१८) "प्राग्युवयोरसिद्धं समानाश्रये" सूत्र द्वारा "असिद्धप्रकरण" का निर्देश करते हैं। (६-३-१९) "श्नान्न" सूत्र द्वारा न लोप का विधान किया गया है जिसका प्रकरण (६-३-३५) तक के सूत्रों में जाता है । तत्पश्चात् प्रसंगोपात् "जनसनखनामात्" [३७] तथा तदनुवर्ती ४-५ सूत्रों में आत्व का भी विधान किया गया है । "आर्धधातुके" [३८] सूत्र द्वारा आर्धधातुक प्रकरण में अकारलोप क्य प्रत्यय का लोप, णि, का लोप, ईकारादेश, एकारादेश, यणादेश, तुगागम, धि आदेश, एकारादेश, तृ आदेश, सम्प्रसारण, टि लोप आदि का विधान

---

३७ सर. कण्ठा. ६-३-३७.

३८ सर. कण्ठा. ६-३-६१

किया है । अधिकांश सूत्र पाणिनि एवं चान्द्रव्याकरण से प्रभावित हैं । भोज ने कुछ सूत्रों को गण के आधार पर पढा हे । (६-४-१४९) सूत्र पर स्थित भाष्यस्थ वार्तिक क्रमांक ६ में पढा वार्तिक ''सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च'' वार्तिक के आधार पर भोजने ''ङ्याः'', सूर्यागस्त्ययोश्छेच[३९] इस प्रकार से दो अलग अलग सूत्रों का विधान किया है । भोज का हाकः (६-३-१०९) सूत्र ओहाक् धातु के आधार पर पढा गया है । पाणिनि ने इस हेतु जहातेश्च (६-४-१४९) सूत्र पढा है । भोज का षष्ठाध्याय का तृतीय पाद पाणिनि के षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद के रुप में परिवर्तित हुआ है । आरोदस्वयंभुवः (६-३-१५३) उक्ष्णः (६-३-१७९) आदि सूत्रों में भोज ने सूक्ष्मता एवं लघुता का परिचय दिया है । पाणिनि का अनुकरण होने पर भी भोज अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखते हैं ।

चतुर्थ पाद :- पाणिनीय सप्तमाध्याय का प्रथम - द्वितीय पाद एवं द्वितीयाध्याय के चतुर्थ पाद के कुछ सूत्रों का समावेश भोज ने इस चतुर्थ पाद में किया है । ''युवोरनाकावसः'' (६-४-१) इस पाद का प्रथम सूत्र है जिसमें अन-अक आदेश का विधान किया गया है । इसी आदेश प्रकरण में फढख छ घ को आयन आदि आदेश, इकारादेश, कादेश क्त्वा को ल्यप् आदेश, इकारादेश, एवं उदादेश का विधान करते हैं । तत्पश्चात् ''इदितोनुम्धातोः'' (६-४-१०) सूत्र से नुमागम का विधान किया गया है । नुमागम विधान एवं प्रतिषेध प्रकरण (६-४-३५) तक के सूत्रों में प्रदर्शित किया गया है । तत्पश्चात् पुनः आदेश प्रकरण का सिलसिला चालू होता है, जिसमें औत्, आकार, न्थ, असुङ्, अनङ्, तृच्, आदि सूत्रों का विधान किया गया है । पाणिनीय ''द्वितीयायां च'' ''प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्'' सूत्र की जगह भोजने ''सुऔजस्'' सूत्र के आधार पर ''औशस्-अम् सु'' सूत्र का विधान किया है जो भोज की बुद्धि चातुर्य का प्रतीक है । आचार्य चन्द्रगोमि भी इसी प्रकार का सूत्र विधान करते हैं, भोजने उन्हीं से यहाँ प्रेरणा ली होगी ऐसा प्रतीत होता है। तत्पश्चात् युष्मद्-अस्मदादेश के प्रकरण की शरुआत होती है जिसमें युव-आव आदेश, युय-वय आदेश, त्व-अह, तव-मम आदेश, जरस् आदेश आदि का विधान किया गया है । तदनन्तर भोजदेव इस प्रकरण से सम्बद्ध सप्तमाध्याय के सूत्रों को छोडकर द्वितीयाध्याय के चतुर्थ पाद में आधमकते हैं, जिसमें वे एनादेश, अशादेश, पदादेश, आदि का विधान करके आर्धधातुके (६-४-

३९ सर. कण्ठा ६-३-१५६, १५९.

८३) सूत्र द्वारा आर्धधातुक का अधिकार जताके अस् को भू आदेश, ब्रू को वचादेश चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश, घस्लृ आदेश हन् को वधादेश, गादेश, गम्यादेश आदि का विधान करते हैं । तत्पश्चात् पुनः सप्तमाध्याय के द्वितीय पादस्थ सूत्रों का भोज विधान करते हैं। जिसमें दीर्घादेश, इडागम, इट् का निषेध विधान किया गया है । इडागम का प्रकरण पाद की समाप्ति तक जाता है । अन्त में मुमागम का विधान आने मुगतः (६-४-१९१) सूत्र द्वारा किया गया है । भोज ने (६-४-१३५ से ६-४-१५०) तक के सूत्रों को भाष्य एवं काशिकास्थित श्लोक वार्तिक सूत्रों के आधार पर पढा है । एक जगह भोजने "इदमः स्त्रीपुंसयोरियमयमौ" सूत्र का विधान किया है जिसके लिये पाणिनि ने तीन सूत्रों का विधान किया है । [४०]

सप्तमाध्याय

प्रथम पाद :- सप्तमाध्याय के प्रथम पाद में भोजदेव वृद्धिविधान, निषेध एवं आगमादेश का निर्देश करते हैं । इस पाद में भोजने अधिकांश सूत्र पाणिनीय सप्तमाध्याय के तृतीय पाद से एवं क्वचित् क्वचित् द्वितीय एवं चतुर्थ पाद से भी सूत्रों का ग्रहण किया है । इस प्रथम पाद में भोजने वृदधि आदेश, निषेध, इयादेश, ऐचागम उत्तरपद एवं पूर्वपद में वृद्धि, पुगागम, युक्, जुक् एवं नुक् आगम, वकारादेश, तकारादेश, पकारादेश, दीर्घ-ह्रस्व, इकारादेश, आकारादेश, कवर्गादेश, छकारादेश जा आदेश अमागम आदि का इस पाद में विधान किया है । भोज का (७-१-५४ एवं ५६) सूत्र काशिका व्याख्यान पर आधारित सूत्र है । भोज कहीं कहीं प्रकरण का अत्यंत सूक्ष्मता से ध्यान रखते हैं यथा- "णल्युत्तमे" (७-१-५८) सूत्र को वृद्धि के प्रकरण में ही पढा है जबकि "णलुत्तमो वा" (७-१-९१) सूत्र का पाणिनि ने णित् प्रकरण में विधान किया है । भोजदेव का कणवणभण श्रण लपह्वेञां च (७-१-७७) सूत्र वार्तिक सूत्र एवं गणपठित शब्दों के आधार पर रचा गया है । [४१]

इसी प्रकार से आदेश विधान का प्रकरण होने के नाते से भोज "मिद्" धातु से एकारादेश का विधान करते हैं । [४२] जब कि पाणिनि ने गुण का विधान

४० सर. कण्ठा ७-२-१०८, ११०, १११.

४१ महा० ७-४-३ वा. "काण्यादीनां वा" के पुनः काण्यादयः ? काणिराणि श्राणि भाणि हेठिलोपयः ।

४२ सर. कण्ठा. ७-१-१३८ मिदेरेत् (पा. अ. ७-३-८२ मिदेर्गुणः ।)

किया है । इस प्रकार से भोजदेव ने प्रकरण विधान का अधिक ध्यान रखा है ।

द्वितीय पाद - सप्तमाध्याय के द्वितीय पाद में भोज गुण वृद्धि विधान, निषेध एवं आगमादेश का व्यवधान करते हैं । भोज का द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र ''सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणः'' (७-२-१) सूत्र से आरंभ होता है, इस हेतु पाणिनि ने अष्टाध्यायी में (७-३-८४) सूत्र में विधान किया है । भोज शुरु, शुरु के पच्चीस सूत्रों में गुण का विधान एवं निषेध करते हैं (७-२-२७) सूत्रमें भोज वृद्धि का उल्लेख न करते हुअे ''औत्'' आदेश का विधान करते हैं क्योकिं आदेश के प्रकरण में भोज ने वृद्धि शब्द को टाला है । (७-२-९ से ७-२-२५) तक के सूत्रों का प्रयोग गुणविधान निषेध हेतु ही किया है जब कि पाणिनि इन सूत्रों को अष्टाध्यायी के प्रथमाध्याय के द्वितीय पाद में पढकर कित्, ङित् का विधान करते हैं । भोज यहाँ पाणिनीय लम्बी प्रक्रिया को टालके सीधा गुण- वृद्धि विधान निषेध का निर्देश करते है ।

तत्पश्चात् भोज इमागम, ईडागम, अडागम, एकारादेश, गुणादेश, आट् याट्, ह्रस्वादेश, औकारादेश, रिङ्आदेश, ही आदेश, दत् आदेश, तकारादेश, सम्प्रसारण, दीर्घ, नुडागम, सन्वद्भाव आदि कार्यो का विधान करके भोज द्वितीय पाद की समाप्ति करते हैं । इस द्वितीय पाद में भोज ने अष्टाध्यायीस्थ प्रथमाध्याय के द्वितीय पाद के सूत्र एवं सप्तमाध्याय के चतुर्थ एवं तृतीय पाद के सूत्रों का ग्रहण किया है ।

तृतीय पाद :- तृतीय पाद के आरंभ में ''पदस्यवीप्सायां द्वे'' (७-३-१) सूत्र से द्वित्वविधि का अनुशासन करते हैं । यह द्वित्व विधि पद में व्याप्ति के अर्थ में होती है । भोजने द्वित्व विधि कहाँ कहाँ होती है इस हेतु अनेक सूत्रों का विधान किया है ।

द्वित्व प्रकरण ७-३-२५ तक के सूत्रों में व्याप्त है । तत्पश्चात् भोज पद से परे युष्मद् अस्मद् के स्थान में वस्-नस्, वाम्, नौ, त्वा, मा, ते मे आदि आदेशों का विधान करते हैं । ''पूर्वत्रासिद्धम्'' (७-३-३८) सूत्र द्वारा भोज असिद्ध प्रकरण का निर्देश करते हैं । इस प्रकरण में भोज न लोप की असिद्धि, सिज्लोपसिद्धि एवं प्रकरणान्तर्गत श्चुत्व, म को व आदेश, र को लादेश, सकारलोप, च को क, ह को ढ, छ एवं श को, ष, निष्ठा तकार को नकारादेश, रु आदेश, दकारादेश, आदि विभिन्न आदेशों का विधान करते हैं । तदनन्तर

"वाक्यस्य टेःप्लुतः" (७-३-१३१) सूत्र से पाद की समाप्ति तक के सूत्र प्लुतविधान का निर्देश करते हैं । इस प्रकार से तृतीय पाद में भोजने पाणिनीय अष्टमाध्याय के प्रथम द्वितीय पाद के सूत्रों को ही अपनाया है ।

चतुर्थ पाद -सप्तमाध्याय के चतुर्थ पाद में विसर्जनीयादेश एवं षत्व णत्व आदेश का विधान किया गया है । चतुर्थ पाद के "समः सुटि सः" इस प्रथम सूत्र द्वारा सकारादेश का विधान किया गया है । प्रसंगोपात् इस आदेश प्रकरण में अनुस्वारादेश नकार मकार को अनुस्वार आदेश, कुक्, टुक्, धुट्, आदि आगम का विधान किया गया है ।

"विरामे विसर्जनीयः" (७-४-२०) सूत्र द्वारा विसर्जनीयादेश प्रकरण शुरु होता है, जो (७-४-३५) सूत्र तक अनुवृत्त होता है ।

"तेष्विणः षः" (७-४-३९) सूत्र से षत्व प्रकरण का आरंभ होता है जो (७-४-१०६) तक के सूत्रों में अनुवृत्त होता है । "रष्टृभ्यो व्यवहितस्यापि समानपदे नो ण-:" (७-४-१०७) सूत्र से णत्वविषयक प्रकरण की शरूआत होती है, णत्व प्रकरण (७-४-१५६) सूत्रों तक प्रवृत्त होता है । तदनन्तर "अचोरहाभ्यां" द्वे (७-४-१५७) सूत्र द्वारा द्वित्व विषयक प्रकरण का भोज निर्देश करते हैं । अन्त में चतुर्थ पाद की समाप्ति का निर्देश करते समय भोज पुनः जशादेश, चरादेश, यमादेश, झयादेश एवं छकारादेश आदि का विधान करके पाद की समाप्ति करते हैं । सप्तमाध्याय के इस चतुर्थ पाद में भोज ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के तृतीय पाद के सूत्रों का ही निर्देश किया है ।

अष्टमाध्याय

अष्टमाध्याय सम्पूर्णतः वैदिक व्याकरण से सम्बद्ध है, उसके प्रथम पाद में छान्दस प्रत्ययों का विधान है, द्वितीय पाद में द्विर्वचन, आदेश तथा आगमों का विधान है, तृतीय एवं चतुर्थ पाद में वैदिक स्वरप्रकरण विहित है । इस अध्याय की विषयवस्तु का विस्तृत विवरण आगामी पंचम प्रकरण में दिया जायगा ।

प्रकरण - ५

सरस्वतीकण्ठाभरणान्तर्गत वैदिक व्याकरण का परिचय

अष्टमोऽध्याय :-

व्याकरणशास्त्र में "सरस्वतीकण्ठाभरण" का अनूठा स्थान है । भोजदेव ने अपने पूर्वाचार्यों के ऋण को स्वीकारते हुअे भी अपनी मौलिकता बनाये रखी है । यत्र तत्र पाणिनि एवं चन्द्रगोमि का अनुसरण करते हुअे भी जगह जगह भोजने "सरस्वतीकण्ठाभरण" में सूत्रों का नाविन्य एवं वैविध्य बनाये रखा है ।

"सरस्वतीकण्ठाभरण" का आठवाँ अध्याय छान्दस कार्य के लिये प्रयुक्त हुआ है । पाणिनि के छान्दस कार्य हेतु प्रयुक्त सूत्र संपूर्ण अष्टाध्यायी में अत्र तत्र सर्वत्र बिखरे पडे हैं । जब कि भोजने अष्टमामाध्याय में ही छान्दस कार्य सम्बन्धी सूत्रों का प्रयोग किया है ।

प्रथम पाद - "सरस्वतीकण्ठाभरण" के अष्टमाध्याय के प्रथम पाद का प्रथम सूत्र ही छान्दस कार्य का निर्देश करता है । "बहुलं छन्दसि" (८-१-१) सूत्र छान्दस प्रकरण का ही निर्देश करता है । तदनन्तर भोज ने प्रगृह्य संज्ञा, ईत्-ऊत् का विधान, उपसर्गसंज्ञा का विधान, गतिसंज्ञा, क्यच्, प्रत्यय, आदि का विधान किया है । "सिल्लेटि"[१] सूत्र द्वारा लेट् लकार में सिप् प्रत्यय का विधान किया है । "अभ्युत्सादयां प्रजनयांचिकायां०" (८-१-१२) सूत्र द्वारा भोज अभ्युत्सादयां प्रजनयां आदि छान्दस प्रयुक्त शब्दों का निपातन करते हैं।

तत्पश्चत् भोज ८-१-१५ एवं ८-१-१६ सूत्र द्वारा चङ् प्रत्यय का विधान एवं निषेध करते हैं । तदनन्तर क्रमशः वे अङ्, अक्, शप् का लुक् एवं श्लु आदेश शानच् एवं आयच् आदेश तथा क्यप् प्रत्यय का निर्देश करते हैं।

८-१-२४ सूत्र द्वारा भोजदेव निष्टर्क्य, देवहूय आदि शब्दों का निपातन करते हैं । इस निपातन के पश्चात् इत्, चिः, ज्युट, विट्, ण्विन्, डस्, विच्, क्विप्, कानज्, क्वसु, इष्णुच् एवं स्नुः प्रत्यय का विधान करते हैं । स्नुः प्रत्यय

१ सर. कण्ठा ८-१-१०.

की जगह वार्तिककार कात्यायन ने "कस्नुः" [२] प्रत्यय का विधान किया है। "कितिनौ लिड्वा" (८-१-४२) सूत्र द्वारा भोज कितिनौ प्रत्यय का विधान करते हैं जो अशुद्ध सा प्रतीत होता है, पाणिनि ने इस हेतु "किकिनौ" का विधान किया है ।[३]

"आदृगमहननजनसदिभ्यः" कितिनौ लिड्वत् "(८-१-४१-४२) इस प्रकार से दो सूत्रों को विभक्तिरुपेण पढते है । जबकि पाणिनि ने सूत्र एवं वार्तिक के रुप में इसका पठन किया है ।[४] उद्यमनिपातनयोरुभ्यो ग्रहे घञ्" (८-१-४३) सूत्र द्वारा भोजदेव घञ् प्रत्यय का विधान करते हैं, जबकि पाणिनिने "उदि ग्रहः" (३-३-३५) सूत्र एवं उस सूत्र में पठित वार्तिक "छन्दसि निपूर्वादपीष्यते स्रुगुद्यमननिपातनयोः" का इस हेतु निर्देश किया है । पाणिनि ने अच् प्रत्यय हेतु "एरच्" (३-३-५६) सूत्र का विधान किया है एवं "जवसवौ छन्दसि" वार्तिक द्वारा जवः सवः वैदिक प्रयोग की सिद्धि करते हैं भोजने इस हेतु निम्नसूत्र का विधान करके लाघवका परिचय दिया है ।[५]

अच् प्रत्यय के विधान करने बाद भोजने युच्, लुङ्, लङ्, लिट्, लेट् आदि प्रत्ययों का विधान किया है । लेट् विधान के पश्चात् वे तवै, केन्, केन्य, त्वन्, एश् आदि प्रत्ययों का निर्देश करते हैं । पाणिनि ने तुमुन् के अर्थ में से, सेन् आदि पन्द्रह प्रत्ययों को तुमर्थे सेसेन (३-४-९) सूत्र द्वारा दर्शाते हैं जबकि भोजने इस हेतु दो सूत्रों का विधान किया है ।[६] (८-१-५३-५४) सूत्र द्वारा भोज दृशे, विरव्ये, प्रयै, रोहिष्यै, अवथिष्यै आदि का निपातन करते हैं । तदनन्तर वे तोसुन् कसुन्, असुन् अट् एवं आट् का आगम, ऐकारादेश, इकारलोप, सकारलोप, मशादेश, त के लोप का विधान करते हैं । (८-१-६७) सूत्र द्वारा भोज तुटागम का विधान करते हैं जबकि पाणिनि ने शीङोरुट् (७-१-६) सूत्र द्वारा रुटागम का विधान किया है । तदनन्तर वे तस्यतात्तप्तनप्तनथनाः (८-१-७०) सूत्र द्वारा त के स्थान पर तात्, तप्, तनप्, तन, थन आदि आदेश इयाडियाच् आङ्, अयाच्अयार आदि आदेश भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश, नुडागम, असुगागम, तोसुन्, कसुन् प्रत्यय आदि का

२ पा. अ. ३-२-१३९ व्या. महा. वा. "दंशेस्छन्दस्युपसंख्यानम् ।"

३ पा. अ. ३-२-१७१.

४ पा. अ. ३-२-१७१ महा० वा - किनावुत्सर्गछन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ।

५ सर. ८-१-४४ सुजुवोरच् ।

६ सर. कण्ठा ८-१-५१-५२.

विधान किया है । षष्ठी विधान द्रष्टव्य है । षष्ठी के हेतु चतुर्थी एवं चतुर्थी हेतु षष्ठी विधान द्दष्टव्य है । षष्ठी चतुर्थ्यावन्योन्यार्थे वा (८-१-८६)

अनोबहुव्रीहेरुपधालोपिनोङीप् (८-१-९०) सूत्र द्वारा भोज ङीप् प्रत्यय का विधान करते हैं । (८-१-९५) सूत्र द्वारा ङीष् प्रत्यय का विधान करते हुअे बह्वादिगणपठित शब्दों को सूत्र में ही परिगणित करते हैं जबकि पाणिनि ने बह्वादिभ्यश्च [7] सूत्र में बह्वादिगण पठित शब्दों का परिगणन किया है । "कद्रुकमण्डलुगुल् गुलुमधुजतुपतयालुभ्य ऊङ्" सूत्र द्वारा भोज ऊङ प्रत्यय का विधान करते हैं जबकि पाणिनिने एतद्‌हेतु सूत्र एवं वार्तिक सूत्र का विधान किया है । [8] ऊङ् प्रत्ययके विधान के पश्चात् वार्तिक सूत्र के आधार पर भोज ने "वाङ् मतिपितृमतां प्रागजितात् ण्यम्" सूत्र द्वारा ण्यम् प्रत्यय का विधान किया है । ण्य प्रत्यय के विधान के पश्चात् ईकञ्, ङिः, त्यप्ष्ञ्, मयट्, यत्, ढः, डयण्, डयत् ड्य, यन्, घन्, घ, छ, अण्, मतुप्, यत्, इन्, य, ख, तातिल, विनि, ह, दा, हिल्, था, इष्ठन्, ईयसुन्, थाल् धेय एवं टच् प्रत्यय का विधान करते हैं । पाद की समाप्ति करते हुअे भोज "नेतुरच्" (८/१/१७०) सूत्र द्वारा अच् प्रत्यय का विधान करते हैं जबकि अष्टाध्यायी स्थित (५/४/११६) सूत्र एवं वार्तिक द्वारा पाणिनि एवं कात्यायन ने अप् प्रत्यय का विधान किया है । [10] अन्त में बहु शब्द से असि प्रत्यय का विधान करके दन्त शब्द को दतृआदेश का विधान करके पाद की समाप्ति में भोज "नर्तः कप्" (८/१/१७४) सूत्र द्वारा कप् प्रत्यय का विधान करके पाद की समाप्ति करते हैं ।

द्वितीयपाद-

अष्टमाध्याय के द्वितीय पाद का आरंभ भोजदेव "द्विर्वा" (८/२/१) सूत्र का विधान करके द्विर्वचन से करते हैं द्विर्वचन के पश्चात् अभ्यास को दीर्घ, सम्प्रसारण, एच् को विकल्प से आ आदेश शिरस् को शीर्ष आदेश, पाद-दन्त-नासिका को क्रमशः पद्-दत् एवंनस् आदि आदेश का विधान करते हैं । "विश्वजनादीनां छे तुक्" (८/२/१२) सूत्र द्वारा तुगागम का विधान करते हैं । "गोरव्यूतौ" (८/२/१३) सूत्र द्वारा भोज ने वान्तादेश का विधान किया है इस हेतु पाणिनीय "वान्तो यि प्रत्यये" सूत्र पर

७ पा. अ. ४-१-४५.

८ पा. अ. ४-१-७१ तथा वा० गग्गुलु मधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम् ।

९ पा. अ. ४-१-८५ वा० वाङ्मतिपितृमतांछन्दस्युपसंख्यानम् ।

१० पा. अ. ५-४-११६ महा. वा० नेतुर्नक्षत्र उपसंख्यानम् । छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम् ।

कात्यायन ने "गोर्यूतौ छन्दसि" वार्तिक का विधान किया है ।"हृदर्या आप:, भर्य प्रवर्ये" (८/२/१४-१५) भोजदेव के दोनों सूत्र अशुद्ध से प्रतीत होते हैं ।अयादेश, अवादेश के विधान के पश्चात् भोजदेव "एङः प्रकृत्यान्त पाद मव्यपरे" (८/२/१९) सूत्र द्वारा प्रकृति को एङादेश का विधान करते हैं ।(८/२/३१) सूत्र तक प्रकृतिभाव की अनुवृत्ति प्रवृत्त होती है ।(८/२/३२) सूत्र में विकल्प से ह्रस्व का विधान करते हैं ।आदुक् आगम एवं सादेश के पश्चात् "अष्टनो दीर्घ:" (८/२/३७) सूत्र द्वारा भोज दीर्घ आदेश का विधान करते हैं [११] यह दीर्घः प्रकरण "षपूर्वनोपधायाश्शि सुटि" (८/२/४६) तक अनुवृत्त होता है ।भोजका (८/२/४७) सूत्र अशुद्ध प्रतीत होता है, सरस्वतीकण्ठाभरण में यह सूत्र "विध्वनोरनुनासिक: स्यात्" के रुप में पढा गया है, पाणिनि अष्टाध्यायी में यह सूत्र "विट्वनोरनुनासिकस्यात्"[१२] के रुप में में पढ़ते हैं। तदनन्तर भोजदेव अयादेश का विधान, अट्-आट् का आगम एवं निषेध हि के स्थान में धि का विधान क्त्वा एवं ल्यबादेश, क्त्वा को यगागम, "इष्ट् वीनां पीत्वीनमिति च" (८/२/६९) सूत्र द्वारा इष्ट्वीनम्,पीत्वीनम् शब्दों का निपातन, अस्थ्यादि शब्दों में अनङादेश, "ईच द्विवचने" (८/२/७२) सूत्र द्वारा ईकारादेश, "दक्स्ववस्वतवसां नुं सौ" (८/२/७३) सूत्र द्वारा नुमागम का विधान क्रमशः करते हैं ।"युष्मदस्मदोरात्" (८/२/७६) सूत्र से आकारदेश का विधान करते हैं ।"ग्रसितस्कभितस्तभितो०" (८/२/८०) सूत्र द्वारा ग्रसित, स्कभित आदि शब्दों को छान्दस में निपातनयुक्त पढ़ते हैं । तत्पश्चात् लोप, ह्रस्व, ईट्, आदि का विधान किया गया है ।"ह्रस्वश्चोपधाया:" (८/२/८९) सूत्र द्वारा भोजदेव उपधा में ह्रस्वादेश का विधान करते हैं ।एतदर्थ पाणिनि ने "णौ चङ्युपधाया ह्रस्व: ।"[१३] सूत्र का विधान किया है ।आगे चलकर भोजदेव पाणिनि की तरह ही दुरस्यु, द्रविणस्यु आदि शब्दों को निपातनयुक्त पढ़ते हैं ।पाणिनि इन निपातनों में "रिषण्यति" शब्द को अधिक के रुप में परिगणित करते हैं ।[१४] दुरस्यु आदि वैदिक शब्दों के निपातन के बाद भोजदेव पुनः दाधर्ति दर्धर्ति आदि शब्दों को निपातनयुक्त पढ़ते हैं । आचार्य पाणिनि ने एक ही सूत्र में इन शब्द प्रयोगोंको निपातनयुक्त पढा है जब कि भोजदेव एतदर्थ सूत्र द्वय विधान करते हैं ।[१४] तत्पश्चात् (८/२/१०८) स्थित "अनो नुट् " सूत्र द्वारा नुडागम एवं (८/२/११०) सूत्र में

---

११ सर. कण्ठा. ८-२-३७ अष्टनो दीर्घः ।

१२ पा. अ. ८-२-४७.

१३ पा. अ. ७-४-१.

१४ पा. अ. ७-४-६५, सर. कण्ठा. ८-२-१०२-१०३.

भोजदेव सुट् का विधान करते हैं ।[१५] जब कि वार्तिककार कात्यायन ने तुट् आगम का विधान किया है ।[१६] पाणिनि ने अष्टाध्यायी में नसत्त-निषत्त-अनुत्त आदि शब्दों को निपातनयुक्त पढा है[१७] जबकि भोजदेव 'वसन्तनिषात्तानुत्त०' (८/२/११२) सूत्र में नसत्त शब्द की जगह वसन्त शब्द पढ़ते है जो अशुद्ध प्रतीत होता है । अवया - श्वेतवा आदि शब्दों के निपातन के पश्चात् "अध उपरिभ्यां स्विदासीतः प्लुतः" (८/२/११८) सूत्र द्वारा भोज प्लुत का विधान करते हैं इस प्लुत की अनुवृत्ति अगले आठ सूत्रों तक प्रवृत्त होती है । तत्पश्चात रु आदेश, सकारादेश, "सहेः साढस्सष्षः" (८/२/१३६) सूत्र द्वारा सकार को मूर्धन्यादेश आदि का विधान करते हुए "ऋतोऽवग्रहान्नो णः" (८/२/१४८) सूत्र द्वारा न को मूर्धन्य णकार का विधान करते हुए पाद की समाप्ति "धातुस्थोरुभ्यो हनः सूत्र द्वारा करते हैं ।

इस प्रकार से द्वितीय पाद में भोज ने अनेक आदेश, आगम, निषेध तथा निपातनों का प्रयोग किया गया है ।

तृतीय पाद - सरस्वतीकण्ठाभरण में अष्टमाध्याय के तृतीय पाद का आरंभ स्वर प्रकरणार्थ किया गया है । तृतीय पाद के प्रथम दो सूत्र द्रष्टव्य हैं यथा- "सरस्सनि शिष्टो बलीनानविकरणस्य" "विभक्तितन्निमित्तयोर्नञः" (८/३/१/२) इन दो सूत्रों में भोज सार्वधातुक स्वर एवं नञ् स्वर की बलवत्ता सिद्ध करते हैं । इस पाद का तृतीय सूत्र "कृतश्च" वार्तिक सूत्र पर आंधारित है ।[१८] "अनुदात्तं पदमेकवर्जम्" (८/३/५) सूत्र द्वारा अनुदात्त स्वर का विधान करते हैं । "यत्रोदात्तलोपस्स उदात्त" सूत्र द्वारा उदात्त का विधान किया गया है । पाणिनीय (४/१/२५-२६) सूत्रों को भोजदेव "असंख्याव्ययादेरुधसो ङीप्" (८/३/१२) एक ही सूत्र के रुप में पढ़ते हैं । (८/३/१३-१४) सूत्र द्वारा अञन्त धातु के आदि को उदात्त विधान किया गया है । तत्पश्चात् घञ् प्रत्ययान्त कर्षात्वत, उञ्छ, म्लेच्छ आदि शब्दों में अन्तोदात्त का विधान किया गया है । भोज का यह सूत्र पाणिनीय "उञ्छादीनां च" (पा. अ. ६/१/१६०) एवं उस सूत्र में पठित गण शब्दों के आधार पर रचा गया है । क्यप् प्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्दों का विधान भोज ने "स्त्रियां क्यपः" (८/३/२६) सूत्र द्वारा किया है । "मन्त्रे वृषे च मनविदभूविरादिभ्यः क्तिनः" (८/३/२७) सूत्र द्वारा भोज क्तिन् प्रत्यय एवं उदात्त स्वर का विधान करते हैं । "चतुरः शशि" (८/३/३७) सूत्र द्वारा

१५ सर. कण्ठा०-भूरिदान्स्सुट् ।

१६ पा. अ. ८-२-१७ महा. वा० - भूरिदान्सतुड्वक्तव्यः ।

१७ पा. अ. ८-२-६१.

१८ पा. अ. ६-१-१५८ वा० यच्चोपदं कृति नञ् ।

शस् प्रत्ययान्त चतुर शब्द, "त्रयसदातितिसृभ्यो जसः" (८/३/३५) सूत्र द्वारा जस् प्रत्ययान्त त्रयस्, तिसृ आदि शब्दों से भी अन्तोदात्त का विधान किया गया है । (८/३/३८-३९) सूत्रों में तृतीयादि विभिक्तियों का उदात्त विधान किया गया है । "पद्दन्नोमास०"(८/३/४१) सूत्र में पद् आदि आदेश के परे असर्वनामस्थानविभक्तियों को उदात्त दिखाया गया है । आचार्य भोज ने "आतो अष्टनः" (८-३-४३) सूत्र पढ़ा है जबकि पाणिनि "अष्टनो दीर्घात्" (६/१/१७२) सूत्र का विधान करते हैं । पाणिनि "शतुरनुमो नद्यजादी (६-१-१७३) सूत्र का विधान करते हैं कि जब कि भोज ने एतद्हेतु "शतुरौ मेङ् यजादिः" सूत्र का विधान किया है । इसी सूत्र पर वार्तिककार "बृहन्महतोरुपसंख्यानम्" वार्तिक का उपाख्यान करते हैं जबकि भोजदेव इसे सूत्ररुप में ही संग्रहित करते हैं । "ह्रस्वरेनुड्भ्यो मतुप्" (८/३/४९) सूत्र को भोज पाणिनीय सूत्र एवं वार्तिक का संमिलन करके पढ़ते हैं ।[१९] "तित्स्वरितम्" (८/३/५९) सूत्र द्वारा तकार इत् संज्ञक शब्द को भोज स्वरित करते हैं। "सिच आदिरुदात्तो वा" "विदनिटः" (८/३/६३-६४) सूत्र द्वयं भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर रचे गये हैं ।[२०] भोज का आदि उदात्त प्रकरण (८/३/६३) सूत्र से आरंभ होता है, जो (८/३/२४८) तक विधि, निषेध, आद्युदात्त, अन्तोदात्त विकल्प आदि का विधान एवं निषेध करता है । इस छान्दस स्वर प्रकरण हेतु भोज ने पाणिनि के षठाध्याय के प्रथम पाद के सूत्रों का आश्रय लिया है ।

भोज के व्याकरण की यह विशेषता रही है कि उन्होंने सूत्र, उणादि सूत्र, पारिभाषिक सूत्र, वार्तिक सूत्र, आदि का एक ही ग्रन्थ में पठन किया है । इस बात का प्रमाण इसी पाद में भोज के (८/३/१०९) सूत्र एवं तदनुवर्ती सूत्रों से मिलता है । पूर्वाचार्यो ने प्रातिपदिक हेतु "फिट्" शब्द का नामाभिधान रखा है । शान्तनवाचार्य "फिषो ऽन्तोदात्तः" सूत्र से फिट् सूत्र का आरंभ करते हैं जबकि भोजदेव उसकी जगह "प्रातिपदिकस्य" (८/३/१०९) सूत्र द्वारा फिट् सूत्रों का आरंभ करते हैं ।

"पाटलापालंकाम्बासागरार्थानाम्" (८/३/११०) सूत्र से फिट् सूत्र विषयक कार्यो का विधान किया गया है जो (८/३/१९६) "शेषं सर्वमनुदात्तम्" सूत्रों तक फिट् सूत्रों का विधान किया गया है । इन सूत्रों में भी भोज ने आद्युदात्त, अन्तोदात्त, अन्तःस्वरित, पूर्व उदात्त, पर्याय से अक्षरोक्षर उदात्त, अनुदात्त आदि का विधान किया गया है । "शुक्लगोरग्योरादिः" (८/३/१२१) सूत्र भोज ने

---

१९ पा. अ. ६-१-१७६ हुस्वनुड्भ्यां मतुप् वा० रे शब्दाच्च मतुप् उदात्तत्वं वक्तव्यम्।
२० पा. अ. ६-१-१८७, भा. वा० सिच आद्युदात्तव्ये ऽ निटः पित पक्षे उदात्तत्वं वक्तव्यम्।

अशुद्ध पढ़ा है, "शुक्लगौरयोरादि:"पाठ होना चाहिये । सर० कण्ठा० में "वा भाषायाम्" (८/३/१२४) सूत्र "मृष्टस्य च वा भाषायाम्" के रुप में भी मिलता है। "बिल्वतिष्ययो: स्वरितोवा" (८/३/१३२)सूत्र "बिल्वतिष्ययोर्वास्वरित:" पाठभेद के रुप में भी प्राप्त होता है । इसी प्रकार से "स्वांगशिटामदन्तानाम्" (८/३/१३७)सूत्र का "स्वांगसिटामदन्तानाम्" पाठ भी मिलता है । "लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य" (८/३/१४८) सूत्र की जगह अन्यसंस्करण में "स्फिगन्तस्यौपम्यनामधेयस्य" पाठ भेद भी प्राप्त होता है । प्राचीन आचार्य 'लुप्' शब्द की जगह 'स्फिग्' शब्द का प्रयोग करते थे । स्वर चन्द्रिकाकार श्री निवासयज्वा ने भी स्फिगन्तस्य शब्द का प्रयोग किया है । भोजदेव ने "नप: फलान्तानम्" (८/३/१७०) सूत्रका विधान किया है, शान्तनवाचार्य प्रणी तफिट् सूत्रमें "ले फो नप:" सूत्र प्राप्त होता है । "शेषं सर्वमनुदात्त (८/३/१९६) सूत्र द्वारा भोज फिट् सूत्रों की समाप्ति करते हैं ।

पाणिनीय "बहुवचनस्य वस्नसौ" (८/१/२१) सूत्र के लिये "वस्नसादय:" (८/३/१९७) सूत्र पढ़ते हैं । पाणिनीय तिङादिगणपठित शब्दों को [२१] भोजदेव सूत्र के रुप में पढते हैं ।

भोजदेव (८/३/२३९) सूत्र में "तुल्यार्थाभ्याम्" . शब्द का प्रयोग करते हैं जब कि पाणिनि ने "समर्थाभ्याम्" (पा. अ. ८/१/६५) शब्द का प्रयोग किया है ।

इस प्रकरण में अधिकांश सूत्र भोजने अष्टमाध्याय के प्रथम पाद से लिये हैं । पाणिनि "पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्य:" (८/१/६७) सूत्र का विधान करके शेष शब्दों को काष्ठादि गण में पठन करते हैं, जबकि भोजदेव काष्ठादिगणपठित शब्दों का सूत्र रुप में ही ग्रहण करते हैं । [२२] "सुबामन्त्रिते परांगवत्तन्निमित्तम्" (८/३/२४९) सूत्र द्वारा पराङ्गवद्भाव का विधान करते हैं । "एक श्रुति दूरात्संबुद्धौ" (८/३/२५३) सूत्र द्वारा एकश्रुति का विधान किया गया है । इस प्रकार से इस तृतीय पाद में २६३ सूत्रों का विधान करके भोजने विभिन्न स्वर एकश्रुति, फिट् सूत्र आदि का विधान किया है ।

चतुर्थ पाद :-

भोज ने अष्टमाध्याय के चतुर्थ पाद का आरंभ "समासस्यान्त:" (८/४/ १) सूत्र द्वारा अन्तोदात्त का आरंभ करके किया है । तत्पश्चश्चात् वे

---

२१ पा. अ. ८-१-२७ "तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययो:" तथा गणपठित शब्द ।
२२ सर. कण्ठा. ८-३-२४०-२४१

(८/४/२) सूत्र द्वारा प्रकृति स्वर का विधान करते हैं । प्रकृतिस्वर प्रत्यय की अनुवृत्ति "बहुव्रीहौ प्रकृत्या: पूर्वपदम्" सूत्र से "सप्तमीसिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वाकालात्" (८/४/७१) सूत्र तक अनुवृत्त होती है। इस पाद में अन्तिम छः सूत्रों को छोड़कर शेष सभी सूत्र पाणिनीय षष्ठाध्याय के द्वितीय पाद के आधार पर रचे गये हैं । अन्तिम छह सूत्र अष्टमाध्याय के द्वितीय पाद से संगृहीत किये गये हैं । पाणिनीय सूत्र "विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु[२३] एवं तत्पठित गणशब्दों के आधार पर भोजदेव ने "विस्पष्टविचित्रविविक्तव्यक्त-सम्पन्नपटुपण्डितकुशलचपलनिपुणा गुणवचनेषु"

(सर० कण्ठा० ८/४/२६) सूत्र रचा है । भोजदेव के "सदृशप्रतिरुपयो: सादृश्ये, गन्तव्यपण्यं वणिजे, मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके, सुखप्रिययोर्हिते, प्रीतौ च, स्वं स्वामिनि"आदि प्रकृतिस्वरविधायक सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है।

आचार्य पाणिनि ने "कुरुगार्हपतरिक्त०" (६/२/४२) सूत्र द्वारा एवं कुरुगार्हादि गण में पठित शब्दों द्वारा एक ही सूत्र में जो कथयितव्य सिद्ध किया है भोजने उस हेतु "कुरुवृजी गार्हपत्ये देवसूतिहूतिजूतिषु, नितो वसुश्च, रिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीदृढरुपापारेवडवातैतिलकद्रूदासीभारादीनां च" [२४] आदि तीन सूत्रों का विधान किया है ।

आद्युदात्तम् (सर. कण्ठा. ८/४/७२) सूत्र द्वारा भोजदेव आद्युदात्त का विधान करते हैं, जिसकी अनुवृत्ति "दिवोदासवाध्यश्वादीनां छन्दसि" (८/४/१०५) सूत्र तक अनुवृत होती है । पाणिनीय सूत्र "घोषादिषु च, छात्र्यादय: शालायाम् एवं तत् तत् सूत्रमें पठित गणशब्दों के आधार पर भोजदेव ने स्व सूत्र का विधान किया है । भोज का "दिवोदासवाध्यश्वदीनां छन्दसि" (८/४/१०५) सूत्र पाणिनीय "न भूताधिकसंजीवमद्राश्मकज्जलम्" (६/२/९१) सूत्र स्थित वार्तिक [२५] के आधार पर रचा गया है । "गुणकार्त्स्न्ये सर्वस्य" (८/४/१०६) सूत्र से भोजदेव अन्तोदात्त स्वर का विधान करते हैं जिसकी अनुवृत्ति "मरुवृद्धसूत्रशयादीनां छन्दसि" (८/४/१२३) सूत्रों तक अनुवृत्ति होती है । "उत्तरपदादि:" (८/४/१२४) सूत्र से भोज पुन: आद्युदात्त प्रकरण का आरंभ करते हैं। यह अधिकार सूत्र है । "कुण्डं वनम्" (८/४/१४९) सूत्रों तक भोजदेव आद्युदात्त का विधान एवं प्रतिषेध करते हैं । भोज का "चिहण

२३ पा. अ. ६-२-२४.

२४ सर. कण्ठा. ८-४-५६-५७-५८.

२५ पा. अ. ६-२-९१ महा. वा० आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्

चिक्कण०" (८/४/१३८) सूत्र "आदिश्चिहणादीनाम्" (६/२/१२५) सूत्रस्थित गणपठित शब्दों के आधार पर रचा गया है ।"प्रवृद्धादीनां च" [२६] सूत्र स्थित गणशब्दों के आधार पर भोजने तीन सूत्रों का विधान किया हैं । [२७] पाणिनीय सूत्र "कृत्योकेष्णुचार्वादयश्च" (६/२/१६०) सूत्र स्थित वार्तिकों एवं गणपठित शब्दों के आधार पर भोज ने "कृत्योकेष्णुच्" आदि सात सूत्रों का विधान किया है । [२८]

सरस्वतीकण्ठाभरण का "त्रिचक्रत्रिबन्धुत्रिवृतादीनाम्" (८/४/१९५) सूत्र वार्तिक सूत्र "अन्तोदात्तप्रकरणे त्रिचक्रादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्" [२९] के आधार पर रचा गया है ।

सरस्वतीकण्ठाभरण में (८/४/२२१) सूत्र की दो वाचानाएँ प्राप्त होती है जो इस प्रकार से है ।

(१) उपाद् द्वयजजिनान्यगौरलेटलोटजिह्वाकृष्णाकन्यागुडकल्पपादीनि ।

(२) उपाध्यजिनान्यगौ ॥ रलटलोटजिह्वाकृष्णाकन्याटुडकल्पपादिनि सोरविक्षेपणे ॥

इन दो वाचनाओं में द्वितीयवाचना असल आवृत्ति में प्राप्त होती है किन्तु पाणिनीय सूत्र से प्रथम वाचना का साम्य अधिक जान पड़ता है । आचार्य पाणिनि ने अगौरादि [३०] गण में उक्त शब्दों का परिगणन किया है ।

आचार्य भोज ने "प्लुत उदात्तः" (८/४/२२५) सूत्र द्वारा प्लुत के उदात्त का विधान किया है ।"प्रश्नान्ताभिपूजविदास्वनुदात्तः" (८/४/२२६) सूत्र द्वारा प्लुत के अनुदात्त का एवं "याशीः क्षिप्रैषत्याख्यानेषु स्वरितः" (८/४/२२८) सूत्र द्वारा प्लुत स्वरित का विधान किया है । इस प्रकार से इस चतुर्थ पाद में २३२ सूत्रों का भोज ने परिगणन किया है जिसमें विविध स्वर कार्यो का विश्लेषण किया है ।

---

२६ पा. अ. ६-२-१४७

२७ सर कण्ठा ८-४-१६२ - १६३ - १६४

२८ सर कण्ठा० ८-४-१७२ से ८-४-१७८.

२९ पा. अ. ६-२-१९९ महा. वा०

३० पा. अ. ६-२-११४.

प्रकरण - ६

पाणिनि एवं भोजदेव के वैदिक व्याकरण विषयक सूत्रव्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण

तृतीय प्रकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी की विषयवस्तु का हमने विस्तृत परिचय दिया है एवं चतुर्थ प्रकरण में "सरस्वतीकण्ठाभरण" की विषयवस्तु का विस्तृत परिचय देने की हमने कोशिश की है अतः इस प्रकरण में पाणिनि एवं भोजदेव के आठों अध्यायोंका परिचय न देते हुअे इस प्रकरण में भोजदेव के वैदिक व्याकरण विषयक अष्टामाध्याय का ही पाणिनि से तुलनात्मक परिचय देने का यहाँ उपक्रम है ।

अष्टमाध्याय का प्रथम पाद - आचार्य भोजदेव ने अष्टमाध्याय के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र में "बहुलं छन्दसि" का विधान किया है । यह अधिकार सूत्र है । 'छन्दसि' पद का विधान करके भोजदेव सूचित करते हैं कि सम्पूर्ण अष्टमाध्याय में छन्दसि निमित्तक ही कार्य निष्पन्न होंगे । भोजदेव की सबसे बडी विशेषता यही है कि उन्होंने छन्दोविषयक सूत्रों को एक ही जगह बटोरकर पढ़ा है जब कि पाणिनीय अष्टाध्यायी में छन्दोविषयक सूत्र आठों अध्याय में अत्र तत्र बिखरे पडे हैं । "शे प्रगृहयम्" एवं "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" (८-१-२-३) सूत्र द्वारा भोजदेव ने प्रगृह्य संज्ञा का निर्देश किया है जबकि पाणिनि ने "शे," "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" (१-१-१३,१९) सूत्र का विधान किया है, इसप्रकार से पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्रगृह्य संज्ञा की अनुवृत्ति (१-१-११) सूत्र से आती है अतः वे "शे" स्वतन्त्र सूत्र रचते हैं जबकि भोजदेव उसी के आधारपर "शे प्रगृहयम्" सूत्र का विधान करते हैं । प्रगृह्य संज्ञा के पश्चात् भोजदेव ने "उपसर्ग" संज्ञाका निर्देश किया है जिसे पाणिनि प्रथमाध्याय के चतुर्थ पाद में "उपसर्गाः क्रियायोगे, छन्दसि परे ऽपि, व्यवहिताश्च" (१-४-४९-८१-८२) सूत्र द्वारा विधान करते हैं । "पुनश्चनसौ गति" (८-१-७) सूत्र को भोजदेव वार्तिक सूत्र के आधार पर विधान करते हैं। तत्पश्चात् "सार्वधातुक आर्धधातुके वा" (८-१-८) सूत्र द्वारा भोजदेव सार्वधातुक आर्धधातुक आर्धधातुक प्रत्ययों का बाहुल्येन विधान करते हैं । इसप्रकार से प्रगृह्य, उपसर्ग एवं गति संज्ञा के हेतु पाणिनि ने जिन सूत्रों को प्रथमाध्याय के प्रथम एवं चतुर्थ पाद में अलग अलग सूत्रों में पढा है, भोजदेव

---

१ पा. अ. १.४.६० गतिश्च वा. सू. पुनश्चनसौ छन्दसि गतिसंज्ञो भवत इति वक्तव्यम् ।

उन्हें प्रथम पाद के आठ सूत्रों में पढ़ते हैं । "क्यच् परेच्छायाम् (८-१-९) सूत्र द्वारा भोज ने क्यच् प्रत्यय का वेद में विधान किया है जिसे भोजने वार्तिक सूत्र "छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम्" [२] के आधार पर रचा है । "सिब्बहुलं लेटि" (पा. अ. ३-१-३४) सूत्र के आधार पर भोजने "सिल्लेटि" (८-१-१०ः सूत्र का विधान किया है । पाणिनि को बहुलम् शब्द का विधान करना पड़ता है जब कि भोजदेव को "बहुल" विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि "बहुलं छन्दसि" (८-१-१) सूत्र से "बहुलम्" की अनुवृत्ति अनुवृत्त होती है। तत्पश्चात् मंत्र विषय को छोड़कर आम् प्रत्यय का विधान भोज ने (८-१-११) सूत्र द्वारा किया है पाणिनि इसे (३-१-३५) सूत्र में पढ़ते हैं पाणिनि के सूत्र को कुछ परिवर्तन के साथ भोज इसे पढ़ते हैं । आम्प्रत्यय के निषेध के पश्चात् "अभ्युत्सादयां"० (८-१-१२-१३) सूत्रों में भोजदेव निपातन युक्त पदों का विधान करते हैं पाणिनि ने (३-१-४२) सूत्र में अभ्युत्सादयां आदि शब्दों का निपातन किया है । पाणिनि ने एक ही सूत्र में अभ्यात्सादयां आदि शब्दों का निपातन किया है । पाणिनि ने एक ही सूत्र में इन पदों को पढा है जब कि भोजदेव इन पदों को दो सूत्रों में पढ़ते हैं। निपातन कार्य के पश्चात् घस्, ह्वर, णश् , आदि धातुओं से भोजने सिच् प्रत्यय के लुक् का विधान किया है जब कि पाणिनि (२-४-८०) सूत्र में च्लि प्रत्ययका विधान करते हैं इस प्रकार से एक ही कार्य को भोजदेव प्रकरणवश कुछ परिवर्तन के साथ पढ़ते हैं । सिजादि के लुक् के पश्चात् भोज वेद में विकल्प से चङ् प्रत्यय का विधान (८-१-१५) सूत्र द्वारा करते हैं । पाणिनि ने "गुपेश्छन्दसि" सूत्र द्वारा चङ् का विधान किया है । पा. अष्टाध्यायीमें चङ् एवं विकल्प की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रों से अनुवृत्त होती है अतः उन्हें विकल्प एवं चङ् प्रत्यय विधान की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती जब कि भोज इसे विधान करते हैं । चङ् प्रत्यय के निर्देश के पश्चात् भोज ने "नोनयतिध्वनयति०" (८-१-१६) सूत्र द्वारा चङ् प्रत्यय का प्रतिषेध किया है, भोजदेव ने इस सूत्र को अक्षरशः पाणिनीय सूत्र (३-१-५१) सूत्र से अपनाया है । (८-१-१७) सूत्र द्वारा भोजदेव "कृ, तृ, दृ, रुह आदि धातुओं से अङ् प्रत्यय का विधान करते हैं जब कि पाणिनि ने "कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि" (३-१-५९) सूत्र का विधान किया है, पाणिनीय अष्टध्यायी में अङ् प्रत्यय की अनुवृत्ति "अस्यतिवक्ति०" (३-१-५२) सूत्र से आती है अतः उन्हें (३-१-५९) सूत्र में अङ् प्रत्यय के निर्देश की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती जब की भोजदेव स्वसूत्र में अङ् प्रत्यय का

---

२ पा. अ. ३/१/८ वा. सू.

विधान करते हैं । पाणिनि ने (३-१-५९) सूत्र में 'मृ' धातु का विधान किया है जब कि भोजदेव 'तृ' धातु का विधान करते हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण में अङ् प्रत्यय की अनुवृत्ति तदनुवर्ती दो सूत्रों में प्रवृत्त होती है । भोज का "लिङ्याशिषि" सूत्र पाणिनीय सूत्र पर आधारित है, जब कि "स्थागागमि" (८-१-१९) सूत्र भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है तत्पश्चात् "लिङ्याशिषि (३-१-८६) सूत्र पर भाष्यकार ने एक अन्य वार्तिक सूत्र रचा है दृशेरग्वक्तव्यः उसीके आधार पर भोज ने "दृशेरक्" (८-१-२०) सूत्र का विधान किया है । भोजने अक् प्रत्यय के विधान के पश्चात् "शपोलुक्च्छलू" (८-१-२१) सूत्र (पा. अ. २-४-७५-७६) सूत्रों के अर्थ के आधार पर रचा है । इस सूत्र में भोजदेव शप् का लुक् एवं श्लु प्रत्यय का विधान करते हैं ।

"हलः श्नः शानज्झौ, "छन्दसि शायजपि" (पा. अ. ३-१-८३-८४) इन दो सूत्रों के आधारपर भोजदेव ने शानच् एवं आयच् प्रत्यय का विधान (८-१-२२) सूत्र में किया है । "प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः क्यप्" (८-१-२३) सूत्र को भोजदेव ने पा० सू० "प्रत्यपिभ्यांग्रहेश्छन्दसि" (३-१-११८) सूत्र के आधार पर रचा है । पाणिनीय सूत्रमें क्यप् की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से अनुवृत्त होती है अतः वे (३-१-११८) सूत्र में क्यप् विधान नहीं करते जबकि भोजदेव इस सूत्र में क्यप् विधान करते हैं । क्यप्विधान के पश्चात् पाणिनि एवं भोजदेव दोनों आचार्य "निष्टर्क्य देवहूय०" सूत्र द्वारा निष्टर्क्य देवहूय आदि शब्दों का निपातन पढते हैं । पाणिनि ने लौकिक प्रकरण मे वैदिक कार्य विधायक सूत्र पढ़ा है अतः "छन्दसि" शब्द का ग्रहण करते हैं जबकि भोजदेव ने वैदिक प्रकरण में ही इसे पढा है अतः "छन्दसि" ग्रहण की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

वैदिक पदों के निपातन के पश्चात् "गापोष्टक्" (३-२-८) सूत्र पर "सुराशीध्वोः पिबतेरिति वक्तव्यम्" एवं "बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम्" दो वार्तिक सूत्र पढ़े गये हैं उसीके आधार पर भोज ने "कर्मणि सुरायां पिष्टग्वा" (८-१-२५) सूत्र का विधान किया है । पाणिनीय (३-२-२७) सूत्र के आधार पर भोज ने (८-१-२६) सूत्र द्वारा इत् प्रत्यय का विधान किया है । इत् प्रत्यय के विधानानन्तर "सहो ण्विः" एवं "वहश्च" सूत्र द्वारा भोज ण्वि प्रत्यय का विधान करते हैं । पाणिनि एतदर्थ "छन्दसि सह" "वहश्च" (३-२-६३-६४) सूत्र पढते हैं । उक्त सूत्रों के आधार पर भोज निज सूत्रों को रचते हैं । "ण्वि" प्रत्ययविधान के बाद "ञ्युट" प्रत्यय का विधान भोज ने (३-२-६५-६६) सूत्रों के आधार पर किया है ।

(८-१-३१-३२) सूत्रों में भोज विट् एवं ण्विन् प्रत्यय का विधान करते हैं ।

भोज का (८-१-३३) वाँ सूत्र "सुपि वलि डस्" (पा. अ. ३-२-७१) सूत्रस्थ भाष्य वार्तिक के आधार पर रचा गया है ।

"अवे यजः" "विजुपे छन्दसि" (पा. अ. ३-२-७२-७३) सूत्रद्वय के आधार पर भोजने "उपयजो विच्" (८-१-३४) सूत्र रचा है । इस सूत्र के विधान के पश्चात् "भूते" कर्मणि हनः "ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् (३-२-८४,८६,८७) इन सूत्र त्रयों के आधार पर भोज ने "भूते हन क्विप् (८-१-३५) सूत्र का विधान किया हैं ।"

"लिटः कानज्वा "क्वसुश्च" (८-१-३६-३७) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरण मात्र है ।

"अलंकृञ् निराकृञ०" (३-२-१३६) सूत्र से इष्णुच प्रत्यय की अनुवृत्ति "णेश्छन्दसि सूत्र में आती है, अतः पाणिनि "नेश्छन्दसि" सूत्र का विधान करते हैं जब कि भोज "णेरिष्णुच्" (८-१-३८) सूत्र में इष्णुच् प्रत्यय का निर्देश करते हुअे सूत्र पढ़ते हैं ।

भोज का "दंशेस्नुः[३] (८-१-३९) सूत्र भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है । "क्याच्छन्दसि" (पा. अ. ३-२-१७०) सूत्र के आधार पर भोजने "क्ययशोभ्यामुः" (८-१-४०) सूत्र का विधान करके उ प्रत्यय का विधान किया है । "आद्दगमहनजन किकिनौलिट्च" (पा. अ. ३-२-१७१) एवं "किकिनावुत्सर्गछन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्" वा. सू. के आधार पर भोजने पाणिनीय सूत्र को दो सूत्रों में (८-१-४१-४२) विभाजित करके पढ़ा है । "उद्यमननिपातनयोरुभ्यो ग्रहे घञ् (स. कं. ८-१-४३) सूत्र पाणिनीय सूत्र "उदि ग्रहः" (३-३-३५) एवं सूत्रस्थित वार्तिक "छन्दसि निपूर्वादपीष्यते स्रुगुद्यमननिपातनयोः" के आधार पर रचा गया है ।

भोज का सुजुवोरच् (८-१-४४) सूत्र "एरच्" (३-३-३५) एवं "जवसवौ छन्दसि" भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है । "छन्दसिगत्यर्थेभ्यः" (३-३-१२९)सूत्र के आधार पर भोजने "गत्यर्थेभ्यः खलि युच्" सूत्र का विधान किया है । भोजदेव का "धातुसम्बन्धे लुङ्लङ्लिटो वा" (८-१-४६) सूत्र "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" (३-४-६) एवं अन्य अनुवृत्तियों के आधार पर रचा गया है । इस प्रकार से पाणिनि जहाँ तीन

---

३ पा. अ. "ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः" (३-२-१३९ भा. वा. ४दंशेस्छन्दस्युपसंख्यानम् ।

सूत्रों द्वारा स्वकार्य निष्पन्न करते हैं वहाँ भोज एक ही सूत्र में स्वकार्य निष्पन्न करते हैं ।

"सर-कं०" के (८-१-४७ से ५०) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है, पाणिनि ने इन्हें (३-४-७-८-१४-१५) सूत्रोंमें पढा है ।

पाणिनि के तुमर्थे "सेसेनसे" (३-४-९) सूत्र को भोज ने (८-१-५१-५२) सूत्रों में विभक्त करके पढा है ।

"दृशे विख्ये (८-१-५३) सूत्र से लेकर "सृपितृदोः कसुन्" (८-१-५८) तक के सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र हैं जिन्हें पाणिनि ने (३-४-१०) से (३-४-१७) तक के सूत्रों में पढा है ।

भोज "लेटोऽडाटौ" (८-१-५९) सूत्र से "स उत्तमस्य" (८-१-६४) तक के सूत्रों को (पा. सू. ३-४-९४ से ९८) तक के सूत्रों के आधार पर रचते हैं, जिसमें दोनों आचार्योंने अट्, आट् का आगम, एकारादेश, इकार एवं सकारका लोप विधान किया है ।

स. कं. में उद्धृत "अमोमश्" एवं "लोपस्त आत्मनेपदेषु" (८-१-६४-६५) सूत्र पाणिनीय (७-१-४०-४१) सूत्र का अनुकरण मात्र है।

"शीङोरूट्" (पा. अ. ७-१-६) सूत्र के आधार पर कुछ परिवर्तन के साथ भोज ने "झस्यातोतोरुट्" (८-१-६६) सूत्र का विधान किया है । यहाँ हमने अशुदध सूत्र को शुद्ध करने की चेष्टा की है । रुडागम के पश्चात् पाणिनि ने ध्वम् के स्थान पर ध्वात् आदेश एवं 'यजध्वं' शब्दको निपातनयुक्त (७-१-४२-४३) सूत्रों में पढ़ा है । भोज कुछ परिवर्तन के साथ इन सूत्रों को पढ़ते हैं । तत्पश्चात् "तस्य तात्" (७-१-४४) "तप्तनप्तनथनाश्च" (७-१-४५) इन पाणिनीय दो सूत्रों के आधार पर भोजदेव एक ही सूत्र का विधान करते हैं ।

भोज का "पेरङिद् वा" (८-१-७०) सूत्र "पित्करणमङित्वार्थम् ॥ (७-१-४५) काशिका वचन के आधार पर रचा गया है ।"

पाणिनि के "इदन्तोमसि" (७-१-४६) सूत्र को आद्यन्तविपर्यय करके भोज "मस इक्" (८-१-७१) सूत्र का विधान करते हैं काशिकाव्याख्यान में हरदत्त "मस इक्" सूत्रपाठ चाहिये इसप्रकार का प्रश्न उठाते हैं परन्तु संदेह निवृत्त्यर्थ पाणिनि ने "इदन्तो मसि" सूत्र पढा है, भोज इक् प्रत्याहार संदेह की परवाह किये बिना सूत्रविधान करते हैं ।

भोजदेव का "सुपां सुलुगा०" (८-१-७३) सूत्र पाणिनि का अनुकरण

मात्र है । पाणिनि ने इसे (७-१-३९) सूत्र में पढा है । "सुपां सुलुग" सूत्र के पश्चात् भोजदेव "इयाडियाजीकारा०" (८-१-७३) सूत्र पढते हैं जो भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर पढ़ा गया है [४] ।

"अतो भिस् ऐस्" (७-१-१०) सूत्र के आधार पर भोज ने "भिस् ऐस्" (८-१-७४) सूत्र का विधान किया है ।

भिस् को ऐसादेश के पश्चात् "श्रीग्रामणीभ्यामोनुट्" (८-१-७५) सूत्र द्वारा भोजदेव अमागम एवं नुट् प्रत्यय का विधान करते हैं पाणिनि ने इस हेतु "श्रीग्रामण्योश्छन्दसि" (७-१-५६) सूत्र का विधान किया है क्योंकि उनके सूत्र में आम् एवं नुट् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रों से अनुवृत्त होती है जबकि भोजदेव को सूत्र में आम् एवं नुट् विधान करना आवश्यक प्रतीत होता है । भोज का "गोः पादान्ते" (८-१-७६) सूत्र भी पाणिनीय सूत्र पर आधारित है । असुक् प्रत्यय विधायक "आज्जसेरसुक्" (८-१-७७) सूत्र भी पाणिनीय सूत्र पर आधारित हैं ।

पाणिनि ने "नेतराच्छन्दसि" (७-१-२६) सूत्र का विधान करके अद्ड आदेश विधान का निषेध किया है जब कि भोजदेव "नेतरात्तः" (८-१-७८) सूत्र का विधान करके 'त' का निषेध करते हैं । उक्तसभी वैदिक सूत्रों को पाणिनि ने तृतीयाध्याय के द्वितीय पाद, चतुर्थ पाद एवं सप्तमाध्याय के प्रथम पाद के विभिन्न सूत्रों में पढा है भोज उन्हें वैदिक प्रकरण में एक ही स्थल पर संयोजित करते हैं ।

"होः कर्मणि तृतीया वा" (८-१-७९) सूत्र द्वारा भोज का विभक्ति प्रकरण शुरु होता है जिसमें भोज ने तृतीया एवं द्वितीयाका विकल्प से विधान किया है । पाणिनि विभक्ति प्रकरण को द्वितीयाध्याय के तृतीय पाद में पढ़ते हैं । पाणिनि इस हेतु "तृतीया च होश्छन्दसि" (२-३-३) सूत्र का विधान करते हैं । भोज का "दिवः पण्यर्थस्य द्वितीया ब्राह्मणे" (८-१-८०) सूत्र पाणिनीय सूत्रत्रयके सारांश के आधार पर लिखा गया है । [५]

भोजदेव का "ब्रूहिप्रेष्ययोरप्रस्थिते हविषि षष्ठी देवता सम्प्रदाने" (८-१-८१) सूत्र पाणिनीय सूत्र प्रेष्यब्रूवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने (२-३-६१)

---

४ पा. अ. ७-१-३९ महा वा० "इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्" "आड्याजयाराणां चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ।"

५ पा. अ. व्यवहृपणोः समर्थयोः दिवस्तदर्थस्य, द्वितीयाब्राह्मणे (२-३-५७,५८,६०)

एवं वार्तिक सूत्र "हविषः प्रस्थितस्य प्रतिषेधो वक्तव्य" पर आधारित है ।

पाणिनीय "यजेश्च करणे" (२-३-६३) सूत्र के आधार पर भोजदेव ने "यजेः करणे" (८-१-८२) सूत्र का विधान किया है । इसी प्रकार से भोजदेव का "तोसुन्कसुनोः" (८-१-८३) सूत्र तोसुन् कसुन् प्रत्यय के परे षष्ठी का विधान करता है जब कि पाणिनि ने तोसुन् कसुन् प्रत्यय का विधान किया है ।[६] षष्ठीविभक्ति प्रकरण में भोजदेव "कर्तृकर्मणोः" (८-१-८४) सूत्र द्वारा षष्ठी विभक्तिका विधान करते हैं । आचार्य पाणिनि ने भी "कर्तृकर्मणोः कृति" (२-३-६५) सूत्र का विधान किया है किन्तु उन्होंने उक्त सूत्र द्वारा षष्ठी विभक्ति का प्रयोग लोक में किया है ।

पाणिनीय सूत्र "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" (२-३-६२) एवं उस सूत्र पर पठित "षष्ठयर्थे चतुर्थीवक्तव्या" वार्तिक सूत्र के आधार पर भोज ने अन्योन्य के अर्थ में षष्ठी-चतुर्थी विभक्ति का विधान किया है[७] ।

भोजदेव का "पूर्ववल्लिंगं हेमन्तशिशिराहोरात्रयोः" (८-१-८६) सूत्र पाणिनीय सूत्र "पूर्ववदश्ववडवौ" (२-४-२७) एवं "हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि" (२-४-२८) इन सूत्र द्वय के आधार पर रचा गया है । इस सूत्र के बाद भोजदेव पुनःवचनप्रकरण शुरु करते हैं "पुनर्वस्वोरेकवचनं वा" (८-१-८७) सूत्र द्वारा भोजदेव एकवचन का विधान करते हैं पाणिनि इस हेतु "छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्" (१-२-६१) सूत्र पढ़ते हैं । "विशाखयोश्च" (८-१-८८) सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज दोनों आचार्य एकवचन का विधान करते हैं । भोजदेव पूर्वपठित दो सूत्रों में वचन विधान के पश्चात् "समास प्रत्ययप्रकरण" का आरंभ करते हैं । वे "अनोबहुव्रीहेरुपधालोपिनो ङीप्" (८-१-८९) सूत्र द्वारा बहुव्रीहि समास में ङीप् का विधान करते हैं । भोज ने इस सूत्र को पा. सू. "बहुव्रीहेरुधसो ङीष्" "संख्याव्ययादे ङीप्" (४-१-२५-२६) तथा "अन उपधालोपिनो ऽन्यतरस्याम्" (४-१-२८) के आधार पर पढ़ाते हैं । भोजदेव (८-१-८९) सूत्र से लेकर (८-१-९२) तक के सूत्रों में ङीप् प्रत्यय का विधान करते हैं । ङीप् प्रत्यय के विधान के पश्चात् भोज "बह्वांहतिपद्धति०" (८-१-९३) सूत्र द्वारा ङीष् प्रत्यय का विधान करते हैं पाणिनि एतद्हेतु "बह्वादिभ्यश्च" (४-१-४५) सूत्र को पढते हैं । भोजदेव बह्वादिगपठित शब्दों को सूत्रों में पढते हैं । भोजदेव ने ङीष् विधायक

६ पा. अ. ३-४-१६, १७.

७ स. क. ८-१-८५ षष्ठी - चतुर्थ्यावन्योन्यार्थे वा ।

प्रत्ययों का प्रकरण (८-१-९३) से आरंभ करके (८-१-९८) तक के सूत्रों में अनुवृत्त करते हैं, जिसे पाणिनि ने चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में पढ़ा है। भोज के उक्त सूत्र पाणिनीय सूत्र, वार्तिक सूत्र एवं काशिका व्याख्यान पर आधारित हैं। "न सख्यशिश्व्योः" (८-१-९९) सूत्र द्वारा भोजदेव ङीष् प्रत्यय का निषेध करते हैं । पाणिनि ने भाषा में ही ङीष् प्रत्यय का विधान किया है यानी ङीष् निषेध ही उन्हें इष्ट है अत एव सूत्र में उन्होने "भाषायाम्" [८] शब्द का प्रयोग किया है । ङीष् विधान एवं निषेध के पश्चात् "कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि" (पा. अ. ४-१-७१) सूत्र एवं तत्पठित भा. वा. "गुग्गुलुमधुजतु०" के आधार पर भोजदेव ने "कद्रुकमण्डलुः" (८-१-१००) सूत्र द्वारा ऊङ् का विधान किया है । ऊङ् प्रत्यय के विधान के पश्चात् "वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानम्" (पा. अ. ४-१-८५) सूत्रस्थित भा. वा. के आधार पर भोजने (८-१-१०१) सूत्र का विधान किया है । ण्य प्रत्यय विधानान्तर भोज "बहिषः ईकञ्" सूत्र द्वारा ईकञ् प्रत्यय का विधान करते हैं उक्त सूत्र उन्होंने भाष्यवार्तिक [९] के आधार पर पढ़ा है । ईकञ् विधान के पश्चात् भोज (८-१-१०३) सूत्र द्वारा पिंञ् प्रत्यय का विधान करते हैं । पिंजश्छन्दसि डिच्च [१०] वा. सू. के आधार पर भोज ने इस सूत्र का विधान किया है । (८-१-१०४) सूत्र में भोजदेव त्यप् प्रत्यय का विधान करते हैं आचार्य कात्यायन ने "आविसश्छन्दसि" [११] वार्तिक पढा है उसके आधार पर भोजने इस सूत्र को रचा है । "वर्षाभ्यष्ठक्" (४-३-१८) वसन्ताच्च (४-३-२०) इन दो सूत्रों के आधार पर भोजने "वर्षावसन्ताभ्यां ठञ्" सूत्र रचा है ।

"प्रगस्य त्नो गलोपश्च" (८-१-१०६) सूत्र पा. सू. (४-३-२३) पर स्थित भाष्य वार्तिक के आधार पर भोज ने इस सूत्र का विधान किया है । मयट् प्रत्यय हेतु भोज रचित "विकारावयवे द्व्यचोमयट्" सूत्र पाणिनीय सूत्र त्रय के आधार पर रचा गया है । [१२] मयट् प्रत्यय के निषेध हेतु पाणिनि एवं भोजदेव एकसमान सूत्र रचते हैं । यत् प्रत्यय विधानार्थ पाणिनि ने "तत्र साधु" (४-४-९८) सूत्र पढा है । भोजदेव विषयसप्तमी में "साधौ" शब्द का ग्रहण

८ पा. अ. ४-१-६२ "सख्यशिश्वीति भाषायाम्"
९ पा. अ. ४-१-८५ भा. वा. ईकञ् छन्दसि ।
१० पा. अ. ४-२-३६ महा. वा०
११ पा. अ. ४-२-१०४ महा. वा०
१२ पा. अ. ४-३-१३४, १३५, १५०.

करते हैं । प्राक्परिमाणाद् यत् (८-१-११) भोज का मौलिक सूत्र है । आचार्य पाणिनि ने इस हेतु कोई विधान नहीं किया । "भवे पाथोनदीभ्यांडयण" (८-१-११२) सूत्र का विधान पा. सू. "पाथोनदीभ्यां डयण्" "भवे छन्दसि" (४-४-११०-१११) को आधार पर किया गया है ।

डय डयत् प्रत्यय विधान हेतु पाणिनि ने "स्रोतसो विभाषा डयडयौ" (४-४-११३) सूत्र का विधान किया है । उसीके आधार पर भोजने स्वसूत्र का विधान किया है । पाणिनि विकल्प हेतु विभाषा शब्द का ग्रहण करते है जब कि भोजदेव वा शब्द पढते हैं । भोज के (८-१-११४-११५) सूत्र पाणिनीय सूत्र (४-४-११४-११५) से समानता रखते हैं । "अग्राद्यत्" घच्छौ च (पा. अ. ४-४-११६-११७) सूत्रों को पाणिनि ने स्वतन्त्र पढा है जबकि भोजदेव दोनों सूत्रों को संयुक्त सूत्र पढते हैं । भोजने (८-१-११७ से ११९) तक के सूत्रों को पाणिनीय सूत्रों के आधार पर ही रचा है । मतुप् प्रत्यय के विधानार्थ पाणिनि "बयस्यासु मूर्ध्नोमतुप" (४-४-१२७) सूत्र पढते हैं । भोज उसीके आधार पर पढते हैं । पाणिनि ने, 'मूर्ध्नो' शब्द का ग्रहण किया है जब कि भोजदेव मूर्धन्वतो शब्द का ग्रहण करते है । दोनों आचार्यो ने "मत्वर्थे" मासतन्वोः" सूत्र द्वारा यत् प्रत्यय का विधान किया है। भोज का "लुगकारेकाररेफाश्च" (८-१-१२२) सूत्र भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर रचा गया है ।

"मधोर्ञच" सूत्र पाणिनि एवं भोज समानरूपेण पढते हैं, किन्तु "विभाषायां च" (८-१-१२४) सूत्र भोज ने पढा है पाणिनि उसे बिना पढे ही "मधोर्ञच" (४-४-१२८) सूत्र द्वारा काम चला लेते हैं जब कि भोज ने एतदर्थ उक्त विधान किया है ।

(८-१-१२५ से १३१) तक के सूत्रों में भोजदेव यत्, ख, यल्, इन, च, यत्, एवं घ आदि प्रत्ययों का विधान करते हैं जबकि पाणिनि ने इन सूत्रों का विधान (४-४-१३० से १३६) तक के सूत्रो में किया है । यूप, दर्भ आदि शब्दों का विधान करते हुअे भोजदेव य प्रत्यय का विधान करते हैं एवं सोम शब्द के ग्रहणार्थ स्वतन्त्र सूत्र (८-१-१३२ - १३३) रचते हैं जब की पाणिनि "सोममर्हति यः" (४-४-१३७) सूत्र रचते हैं ।

"मये च, मधोः, वसोः समूहे च" (८-१-१३४ से १३६) उक्त तीनों सूत्रों का भोजदेव ने अक्षरशः ग्रहण किया है ।

---

१३ पा. अ. ४-४-२८ महा. वा. लुगकारेकाररेफाश्च वक्तव्याः ।

कात्यायनने (४-४-१४०) सूत्र पर "अक्षर समूहे छन्दस स्वार्थ उपसंख्यानम्" वार्तिका पढा है उसी के आधार पर भोजने (८-१-१३७) सूत्र का विधान किया है ।

"नक्षत्राद् घः "सूत्र द्वारा दोनों आचार्य घ प्रत्यय का विधान करते हैं। " "शिवशमरिष्टस्य करे" (पा, आ. ४-४-१४३) तथा भावे च (४-४-१४४) इन दोनों सूत्रों को मिलाकर भोजने एक ही सूत्र का विधान किया है। यथाविहित यत् प्रत्यय के विधानार्थ पाणिनिएवं भोजदेव ने "तदस्य परिमाणम्" एक समान सूत्र रचा है ।"शन्शतच्छतिभ्यो डिनिर्वा" उक्त सूत्र प्रमादवश भोज से छूट गया है ऐसा लगता है अतः हमने इस सूत्र को पढने का सुझाव दिया है । उक्त सूत्र भाष्यवार्तिक के आधार पर ही हमने सुझाया है ।[१४] तत्पश्चात् "सप्तनो ऽञ् छन्दसि" (५-१-६१) सूत्र के आधार पर भोजदेव "सप्तनोऽञ्वर्गे सूत्र का विधान करते हैं ।

अञ् प्रत्यय के विधान के पश्चात् भोजने 'छ' प्रत्यय का विधान पा. सू. "वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि" (५-१-९१) तथा (५-१-८०-८१) सूत्रों के आधार पर किया है । पाणिनीय सूत्र का अनुकरण भोजदेव (८-१-१४५) "संपरिपूर्वात्खच सूत्र द्वारा करते हैं । भोज "ऋत्विय" शब्दका निपातन पा. सू. (५-१-१०४, १०५, १०६) इन सूत्रत्रयों के अर्थों के आधार पर (८-१-४६) सूत्र में करते हैं । भोज "उपसर्गात् धात्वर्थे वति" (८-१-१४७) सूत्र का विधान पा, सू. के आधार पर करते हैं ।

भोज का "युष्मदस्मद्भ्यां सादृश्ये वतुप्" (८-१-१४८) सूत्र पाणिनीय सूत्र (५-२-३९) तथा "वतुप्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम्" वा. सू. के आधार पर रचा गया है । पा. सू. "नान्तादसंख्यादेर्मट्" (५-२-४९) के आधार पर कुछ शब्द परिवर्तन के साथ भोज ने "नः संख्याया असंख्यादे (र्मट्) (८-१-१४९) सूत्र का विधान किया है । नकारान्तसंख्यावाचक शब्द से 'थट्' प्रत्यय विधान हेतु, "भोजने पूरणे थड् वा" (८-१-१५०) सूत्र द्वारा किया है तदर्थ पाणिनि थट् च च्छन्दसि (५-२-५०) सूत्र को रचते हैं ।

तत्पश्चात् परिपन्थिन् एवं परिपरिन् शब्दों का निपातन दोनों आचार्यो ने एक समानरूप से किया है । ई, वनिप् प्रत्यय के विधान हेतु कात्यायन ने "छन्दसीवनिपौ च वक्तव्यौ"[१५] वार्तिकसूत्र रचा है उसीके आधार पर भोज

---

१४ पा. अ. ५-१-५८ वा. सू. - शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि, विंशतेश्चेति वक्तव्यम् ।
१५ पा. सू. ४-२-१०९ वा. सू.

ने "ईवनिपौ च मत्वर्थे" सूत्र का विधान किया है । कात्यायन ने "बहुलं छन्दसि" (५-२-१२२) सूत्र पर "छन्दसि विनिप्रकरणे ऽष्ट्रामेखलाद्वयोभय-रुजाहृदयानां दीर्घत्वं चेति वक्तव्यम्" वा. सू. रचा है उसीके आधार पर भोज ने (८-१-१४३-१५४) सूत्रों का विधान किया है ।

तत्पश्चात् भोजदेव "सप्तम्यर्थे किमो ऽद्वा हः कुश्च" (८-१-१५५) सूत्र पा. सू. "सप्तम्यास्त्रल्" (५-३-१०), किमोऽत् (५-३-१२), "वाह चच्छन्दसि" (५-३-१३) तथा "कुति हो" (७-२-१०४) इन चार सूत्रों के आधार पर रचा है । पा. सू. (५-३-१५, १६, १९, २०) इन चार सूत्रों के आधार पर भोजने "इदंतद्भ्यां दाहिलौ काले" (८-१-१५६) सूत्र का विधान किया है । इसीप्रकार भोजने "किमो हेतुप्रकारवचनयोस्था" (८-१-१५७) सूत्र का विधान पा. सूत्रत्रय "प्रकारवचने थाल्" (५-३-२३), "किमश्च" (५-३-२५) तथा "था हेतौ चच्छन्दसि" (५-३-२६) के आधार पर किया है । इसके पश्चात् पा. सू. 'पश्चात्' तथा "पश्च पश्चा चच्छन्दसि' (५-३-३२-३३) इन दो सूत्रों के आधार पर भोज ने "पश्च पश्चा पश्चादर्थे" (८-१-१५८) सूत्र को रचा है ।

सरस्वतीकण्ठाभरणकार इष्ठन् ईयसुन् प्रत्यय का विधान (पा. सू. ५-३-५५ - ५७ - ५८) की अनुवृत्ति तथा "तुश्छन्दसि" (५-३-५९) इन चार सूत्रों के आधार पर "तुरिष्ठन्नीयसुनो" (८-१-१५९) सूत्र को रचकर करते हैं ।

भोजदेव "अमुचामो वा" (८-१-१६०) सूत्र पा. सू. (५-४-११-१२) इन दो सूत्रों के आधार पर रचते हैं । भोज का अगला सूत्र "स्वार्थे मित्राद् धेयः" (८-१-१६२) कात्यायन रचित भागरूपनामभ्यो धेयः प्रत्ययो वक्तव्यः मित्राच्छन्दसि इन दो वा. सूत्रों के आधार पर रचा गया है आचार्य भोज ने कुलालवरुडनिषाद (कर्मार) (चण्डाल मित्रामित्रेभ्यो ऽण् (८-१-१६३) सूत्र कात्यायन रचित वार्तिक सूत्र के आधार पर ही रचा है । अञ् प्रत्यय के विधानहेतु भोजने "अयवसमरुद्भ्यामञ्" (८-१-१६४) सूत्र कात्यायन वा. सूत्र [१७] के आधार पर ही रचा है ।

सरस्वतीकण्ठाभरणकार का वस्वयस्वर्चस्पूर्वकविनिष्केवलोक्थ जनौकेभ्यो

---

१६ पा. अ. ५-४-३६ वा० सू. कुलालवरुडनिषादकर्मारचण्डाल मित्रामित्रेभ्यश्छन्दस्युपसंख्यानम्

१७ पा. अ. ५-४-२५ वा० सू. अयवसमरुद्भ्यां छन्दस्यञ्वक्तव्यः ।

यद् वा (८-१-१६५) सूत्र काशिकाकार स्व वृत्ति में वसु, अयस् आदि शब्दों का परिगणन करते हुअे कहते हैं कि "इत्येतेभ्यः छन्दसि स्वार्थे यत् प्रत्ययो भवति" [१८] उसीके आधार पर भोजने स्वसूत्र का विधान किया है । इसीप्रकार "समशब्दादावतु प्रत्ययो वक्तव्यः" वार्तिकसूत्र के आधार पर भोजने "समादावतुः" सूत्र का विधान किया है ।

पाणिनीय सूत्र "वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौच च्छन्दसि (५-४-४१) सूत्र को आचार्य भोजने विभाजित करके वृक शब्द से तिल् प्रत्यय एवं अन्य सूत्र द्वारा ज्येष्ठ शब्द से तातिल् प्रत्यय का विधान किया है । पाणिनिने सर्व शब्दसे तातिल् विधान हेतु "सर्वदेवात्तातिल्" (४-४-१४२) सूत्र रचा है । जबकि भोजदेव (८-१-१६८) सूत्र से तातिल् प्रत्यय का विधान करते हैं अतः स्व सूत्र को सर्वदेवाभ्यांच (८-१-१६९) के रूप में ही पढते हैं ।

कात्यायन ने (पा. सू. ५-४-१०३) पर "अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसिवा वचनम्" वार्तिक पढा है उसीके आधार पर विकल्प से टच् विधायक सूत्र का भोजदेव (८-१-१७०) में विधान करते हैं । "अच्चशित्यभिभ्यो नस्नासिकायाः" (८-१-१७१) सूत्र का विधान भोजदेव (पा. सू. ५-४-११८-११९) के आधार पर करते हैं । भोजका "नेतुरप्" (८-१-१७२) सूत्र कात्यायन वार्तिक सूत्र के आधार पर रचा गया है । तत्पश्चात् असिच् प्रत्यय विधान हेतु पाणिनि का "बहुप्रजाश्छन्दसि" (५-४-१२३) सूत्र के आधार पर भोजदेव ने "बहोरसिज्प्रजाया" (८-१-१७३) सूत्र का विधान किया है। पाणिनि ने दतृ आदेश हेतु "बयसि दन्तस्य दतृ" (५-४-१४१) एवं "छन्दसि च" (५-४-१४२) सूत्र रचे हैं प्रथम सूत्र में पाणिनि लौकिक उदाहरण देते हैं एवं द्वितीय सूत्र में वैदिक उदाहरण । भोज का अष्टमाध्याय वैदिक प्रकरण से सम्बद्ध है अतः "दन्तस्यदतृ" (८-१-१७४) सूत्र से ही कार्य सम्पन्न हो जाता है । भोज का "नेतुरप्" (८-१-१७१) सूत्र वार्तिक सूत्र के आधार पर रचा गया है । [२०]

भोज का प्रथम पाद का अन्तिम सूत्र "नर्तः कप्" (८-१-१७५) जो पाणिनीय सूत्र द्वय के आधार पर रचा गया है, यथा - "ऋतश्छन्दसि" (५-४-१५८) "न संज्ञायाम्" (५-४-१५५) ।

१८ पा. अ. ५-४-२५ का वृत्ति

१९ पा. अ. भा. वा०-

२० पा. अ. ५-४-११६ वा. सू. "छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम्"

पाणिनि ने उक्त सभी प्रत्ययों एवं आदेशों का विधान प्रथमाध्यायका चतुर्थपाद, तृतीयाध्याय का प्रथम द्वितीय चतुर्थ पाद, द्वितीयाध्याय का चतुर्थ पाद, सप्तमाध्याय का प्रथम पाद, चतुर्थाध्याय का प्रथम पाद, द्वितीय पाद, चतुर्थ पाद, पंचमाध्याय का प्रथम - द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ पाद में किया है । बहुत से सूत्र वार्तिक सूत्रों के आधार पर रचे गये हैं । इसप्रकार से पाणिनि रचित वैदिक सूत्र सारी अष्टाध्ययी में बिखरे पड़े हैं भोज ने उन सूत्रों को एक ही पाद में एकत्र करके पढ़ा है ।

द्वितीय पाद -

"सरस्वतीकण्ठाभरण" अष्टमाध्याय द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र "द्विर्वा" है इस सूत्र द्वारा द्विर्वचन का विधान किया गया है । भोज उक्त सूत्र का विधान कात्यायन प्रणीत वार्तिक के आधार पर करते हैं । [२१]

पाणिनीय सूत्र के आधार पर भोज ने द्वितीय सूत्र का विधान किया है। सरस्वतीकण्ठाभरण के (८-२-३ से ५) तक के सूत्रों में सम्प्रसारण का विधान किया गया है । जिसमें चौथा तथा पाँचवा सूत्र वार्तिक सूत्रों के आधारपर रचा गया है । [२२]

भोज का (८-२-६ तथा ७) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है । "खिदेश्छन्दसि" (६-१-५२) सूत्र के आधार पर भोज ने "खिदेरादेचो वा" सूत्र का विधान किया है । (८-२-९) सूत्र द्वारा भोज शीर्ष शब्द का निपातन किया है । तत्पश्चात् "पद्दनोमास०" (पा. सू. ६-१-६३) एवं वा. सू. "पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम्" के आधार पर भोज ने (८-२-१०) सूत्र का विधान किया है । तत्पश्चात् शेश्छन्दसि बहुलम् (६-१-७०) के आधार पर भोज "शेर्लोपः" (८-२-११) सूत्र का विधान करते हैं । वा. सू. "विश्वजनादीनां छन्दसि वा तुगागमो भवती ति वक्तव्यम्" (पा. अ. ६-१-७६) सूत्र के आधार पर भोज ने "विश्वजनादीनां छे तुक्" (८-२-१२) सूत्र का विधान किया है।

भोजदेव के (८-२-१३-१४) दोनों सूत्र वार्तिक सूत्रों के आधार पर रचे गये हैं । "भय्य प्रवय्ये" (८-२-१५) सूत्र भय्यप्रवय्ये चछन्दसि (पा. सू. ६-१-८३) सूत्र के आधार पर रचा गया है । पाणिनि को इस हेतु सूत्र में "छन्दसि" शब्द का विधान करना पड़ता है जबकि भोज का समग्र प्रकरण

---

२१ पा. अ. ६-१-८ वा. सू. द्विर्वचनप्रकरणे छन्दसि वेति वक्तव्यम् ।
२२ पा. अ. १-१-३७ वा. सू. "रयेर्मतौ बहुलम्", ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्छन्दसि
२३ पा. अ. ६-१-९४.

छन्दसि का है अतः छन्दसि विधान की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पररूप एकादेश के लिये रचा गया भोजीय सूत्र "अचः पररूपमेमन्नादिषु" (८-२-१६) सूत्र "एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यम्" [२३] वा. सू. के आधार पर रचा गया है । भोजदेव का "दीर्घादौश्जसोः" (८-२-१७) सूत्र द्रष्टव्य है भोज ने इस सूत्र में पररूप एकादेश का विधान किया है जबकि पाणिनि "दीर्घाज्जसि च, वा छन्दसि" (६-१-१०५-१०६) सूत्र में पूर्वसवर्णदीर्घका निषेध करते हैं ।

पाणिनि ने "वा छन्दसि" (६-१-१०६) सूत्र का जो विधान किया है उसके आधार पर भोजदेव "पूर्वसवर्णो वा" सूत्र का विधान करते हैं । भोजदेव का (८-२-१९-२०) सूत्र पाणिनीय सूत्र की अनुकृति मात्र है । पाणिनीय सूत्र "यजुष्युरः" को भोजदेव विपर्यास करके "उरो यजुषि" (८-२-२१) सूत्र के रूप में पढ़ते हैं । पाणिनीय "आपो जुषाणो०" (६-१-११८) सूत्र को भोज सूत्र द्वय में विभाजित करके पढ़ते हैं । "अङ्ग इत्यादौ च, अनुदात्ते च कुधपरे, अवपथासि च (८-२-२४ से २६) पाणिनि का अनुकरणमात्र है, जिन्हें पाणिनि ने (६-१-११९ से १२१) में पढ़ा है ।

कात्यायन ने "ईषा अक्षादिषु प्रकृतिभाबमात्रं वक्तव्यम्" । वा. सूत्र (६-१-१२७) सूत्र पर पढा है । उसीके आधार पर भोजदेव ने इस सूत्र का विधान किया है । "आङो ऽनुनासिकश्च" (८-२-२८) सूत्र पाणिनि के आधार पर ही रचा गया है । "एतत्तदो सुलोपो ऽकोरनञ्समासे हलि" (६-१-१३२) तथा "स्यश्छन्दसि बहुलम्" (६-१-१३३) इन दो सूत्रों के आधार पर भोजदेव "त्यदस्सुलोपो हलि वा" (८-२-२९) सूत्र का विधान करते हैं।

"ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे" (६-१-१५१) सूत्र को भोजदेव किंचित् परिवर्तन के साथ पढ़ते हैं । "पितरामातरा चच्छन्दसि" (६-३-३३) सूत्र की जगह भोज "पितरामातरा द्वन्द्वे" (८-२-३१) सूत्र का विधान करते हैं । ह्रस्व विधान हेतु भोज ने "ङ्यापो ह्रस्वो वा" सूत्र का विधान किया है जब कि पाणिनि "ङ्यापो संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्" (६-३-६३) सूत्र का विधान करते हैं । कात्यायान ने "भक्षस्य छन्दसि कारे मुम् वक्तव्यः" वा. सूत्र [२४] पढ़ा है । इसी के आधार पर भोज "भक्षस्य कारे मुः" (८-२-३३) सूत्र का विधान करते हैं ।

---

२४ पा. अ. ६-३-७० वा. सू.

नीचायादुगुच्चादौ (८-२-३४) भोजका मौलिक सूत्र है । "समानस्यामूर्धप्रभृत्युदर्केषु सः" (८-२-३५) सूत्र पा० सूत्र (६-३-८४) का अनुकरण मात्र है । पाणिनीय सूत्र में सादेश की अनुवृत्ति होती है जब कि भोजदेव सूत्र में सादेश का विधान करते हैं ।

"पा. सूत्र "साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे" (६-३-११३) सूत्र के आधार पर भोजने "सहेः क्त्वात् साढ्यै साढ्वा तृज्साढा" सूत्र का विधान कुछ परिवर्तन के साथ किया है । "अष्टनो दीर्घः" (८-२-३७) सूत्र से (८-२-४६) तक के सूत्रों में दीर्घादेश का विधान भोजदेव करते हैं । जिसमें "तिसृ चतस्रोर्नामि. वा" (८-२-४५) तथा "षपूर्वनोधायाशिश सुटि" (८-२-४६) दोनों सूत्रों को भोजदेव पाणिनि के दो दो सूत्रों आधार पर रचते हैं ।

"विड्वनोरनुनासिकस्यात्" (८-२-४७) सूत्र से (८-२-४९) तक के सूत्रों में भोजदेव आकारादेश का विधान करते हैं । उक्त तीनों सूत्रों को भोजने पाणिनीय सूत्र के आधार पर रचा है । अयादेश विधान हेतु "णेरयिष्णुचि" (स. कं. ८-२-५०) सूत्र पा. सू. (६-४-५५) को कुछ परिवर्तन के साथ पढ़ा गया है । दीर्घविधान हेतु भोज ने "युप्लुवोर्ल्यपि दीर्घः" (८-२-५१) सूत्र का विधान किया है, पाणिनि एतद्हेतु "युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि" (६-४-५८) सूत्र का विधान करते हैं । पाणिनि को इस सूत्र में ल्यप् विधान की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि भोजदेव सूत्र में ल्यप् विधान करते हैं।

पाणिनि ने अट आट् आगम हेतु "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि" (६-४-७५) सूत्र को पढ़ा है उसी सूत्र को भोजने दो सूत्रों में (८-२-५२-५३) में विभाजित करके अट् आट् आगम का कुछ परिवर्तन के साथ विधान करते हैं । "इरयोरे" सूत्र द्वारा पाणिनि भोज रे आदेश का विधान करते हैं ।

(पा. सूत्र ६-४-७७) पर कात्यायन ने "इयङुवङ् प्रकरणे तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानं कर्तव्यम्" वार्तिक पढ़ा है । उसी वार्तिक सूत्र के आधार पर भोज ने "श्नुतन्वादीनामचीयुवौ वा" (८/२/५५) सूत्र को रचा है । पा. सूत्र "न भूसुधियोः" (६-४-८६) तथा छन्दस्युभयथा (६-४-८७) इन दोनों सूत्रों के आधार पर भोज ने "भूसुधियोर्यण्" (८-२-५६) सूत्रका विधान किया है । भोज ने उपधा के लोप विधान हेतु तनिपत्योर्लोप उपधायाः (८-२-५७) सूत्र को रचा है। भोज का उक्तसूत्र "ऊदुपधाया गोहः" (६-४-८९) तथा "तनिपत्योश्छन्दसि" (६-४-९९) इन सूत्र द्वय पर आधारित है ।

तत्पश्चात् (८-२-५८) सूत्र द्वारा भोज उपधा लोप का विधान करने के लिये "घसिभसोर्हलिच" सूत्र को रचते हैं जो पाणिनीय सूत्र (६-४-१००) का अनुकरण मात्र है ।

पा. सू. "हुझल्भ्यो हेर्धिः" (६-४-१०१) एवं "श्रुश्रृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि" (६-४-१०२) इन दो सूत्रों के आधार पर भोज ने एक ही सूत्र "श्रुश्रृणुपृकृवृभ्यो हे र्धिः" (८-२-५९) रचा है । "अङितश्च" सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज दोनों ही एकसमान 'धि' आदेश का विधान करते हैं । "उतो लुग्वा" (८-२-६१) सूत्र द्वारा भोजदेव विकल्प से हि का लोप करते हैं, उक्त सूत्र उन्होंने का, वा. सू. "उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्" (६-४-१०६) के आधार पर रचा है ।

भोज का "अमिपचियजि०" (८-२-६२) सूत्र पा. सू. (६-४-१२०) पर भाष्यकार ने श्लोकवार्तिक पढा है, यथा -

छन्दस्यमिपचोरपि । अनेशं मेनकेत्येतद् ।
व्येमानं लिङि पेचिरन् । यजायेजे वपावेपे ॥

काशिकाकार ने इस हेतु निम्न उपसंख्यान किया है - "छन्दस्यमिपचोरप्यलिटि एत्वं वक्तव्यम्' "यजिवप्योश्च" उसी के आधार पर भोज ने स्वसूत्र को रचा है ।

भोज का "वाहो वाड्यचि" (८-२-६३) सूत्र द्रष्टव्य है । पाणिनि के "छन्दसि सहः" "वहश्च" तथा वाह" ऊठ् (३-२-६४, ६५, ६-४-१३२) इन सूत्रत्रय के आधार पर भोज ने स्वसूत्र का विधान किया है ।

पाणिनीय सूत्र "तुरिष्ठेमेयस्सु" (६/४/१५४) सूत्र के आधार पर भोज ने "तुरिष्ठेयसोर्लोपः" (८/२/६४) सूत्र का विधान किया है । पाणिनि एवं भोजदेवने "मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" सूत्र का विधान एक समान किया है । भोजदेव का "र ऋतऋजोर्वा" (८/२/६६) सूत्र पाणिनि के (६/४/१६१-१६२) सूत्रद्वय के आधार पर रचा गया है । तत्पश्चात् "ऋत्व्यवास्त्व्य०" (८/२/६७) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है, दोनों आचार्य ऋत्व्य आदि शब्दों को निपातयुक्त पढते हैं । पा. सू.(७/१/३७-३८) के आधार पर भोज ने "समासे ऽनञ्पूर्वे ल्यपः क्त्वा वा" सूत्र का विधान किया है । क्त्वा आदेश के पश्चात् भोजदेव क्त्वा को यक् आगम का विधान "क्त्वो यक्"

२५ पा. अ. ७-१-७५-७६.
२६ पा. अ. ७-१-८०, ८१, ८२, ८३.

(८/२/६९) सूत्र द्वारा करते हैं । तत्पश्चात् इष्ट्वीनम्, पीत्वीनम्, उदाहरण के आधार पर भोजदेव "इष्ट्वीनं पीत्वीनमिति च" (८/२/७०) सूत्र का विधान करते हैं जब कि पाणिनि "इष्ट्वीनमितिच" (७/१/४८) सूत्र रचते हैं । पाणिनि एवं भोज दोनों आचार्य "स्नात्व्यादयश्च" सूत्र को समानरुपेण पढ़ते हैं । तत्पश्चात् अनङादेश हेतु भोज ने "अस्थ्यादीनामनङ्" (८/२/७२) सूत्र का विधान किया है । भोज का उक्त सूत्र पाणिनीय सूत्र द्वय [२५] के आधार पर रचा गया है। ई आदेश हेतु "ईच द्विक्वने" सूत्र दोनों आचार्य समानरुपेण पढते हैं । तदनन्तर दृक्, स्वबस् आदि द्वारा नुमागम हेतु भोजदेव "दृक्स्ववस्स्वतवसां नुं सौ" (८/२/७४) सूत्र का विधान करते हैं भोजदेव ने उक्त सूत्र को तीन सूत्रों के आधार पर रचा है । [२६] पाणिनि ने इकारादेश विधान हेतु "ऋत इद् धातोः" सूत्र को (७/१/१००) में विधान किया है जबकि भोजदेव उसे (८/२/७५) में रचते हैं । उकारादश हेतु पा. सू. "उदोष्ठयपूर्वस्य", "बहुलं छन्दसि" (७/१/१०२-१०३) के आधार पर भोजदेव "उच्च"(७/२/७६) सूत्र का विधान करते हैं ।

"युष्मदस्मदोरनादेशे" (७/२/८६) सूत्र के आधार पर भोज "युष्मदस्मदोरात्" (८/२/७७) सूत्र का विधान करते हैं । "प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्" (७/२/८८) सूत्र द्वारा पाणिनि भाषा में आकारदेश का विधान करते हैं यानी वेद में आकारादेश नहीं होता उसीको ध्यान में रखकर भोज ने वेद में आकारादेश निषेध हेतु "न प्रथमाद्विवचने"(८/२/७८) सूत्र रचा है ।

'ह्वर्' धातु को "हु" आदेश हेतु पाणिनि ने "हुह्वरेश्छन्दसि" (७/२/३१) सूत्र रचा है जबकि भोज "हुह्वरेर्निष्ठायाम्" (८/२/७९) सूत्र रचते हैं । भोज के (८/२/८० से ८/२/८४) तक के पाँच सूत्र पाणिनि रचित सूत्रों का अनुकरणमात्र है । तत्पश्चात् इकाारादेश निषेध विधायक सूत्र "नेत् पावकादीनाम्" पावकादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् [२७] का. वा० सूत्रके आधार पर रचा गया हैं । "दाधाघ्वपदाप्" (१/१/२०) सूत्र द्वारा पाणिनि ने घु संज्ञा की है उस घु संज्ञक धातुओं का लोप पाणिनि "घोर्लोपो लेटि वा" (७/३/७०) सूत्र द्वारा करते हैं भोज तदर्थ "दाधो लोपो लोटि वा"

२७ पा. अ. ७-३-४५ वा. सू.

२८. पा. सू. ७-३-८७ वा. सू. बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम् ।

२९ पा. अ. ७-३-८७, वा. सू. अभ्यस्तानामुपधाहस्वत्वमचि पस्पशाते चाकशीमि वावशतीरिति दर्शनात् ।

(८/२/८६) सूत्र रचते हैं । शिति एवं ह्रस्व शब्द की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रोंसे अनुवृत्त होती है अतः "मीनातेर्निगमे" (७/३/८१) सूत्र का पाणिनि विधान करते हैं, जबकि भोज स्व सूत्र में शिति एवं ह्रस्वः शब्द का विधान करते हुअे "मीनातेः शितिह्रस्वः" (८/२/८७) सूत्र रचते हैं ।

तत्पश्चात् ईडागम हेतु "तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके" (७/३/९५) पाणिनीय सूत्र के आधार पर भोज किंचित् परिवर्तन के साथ "तुरुस्तुशम्यमिभ्य ईट् सार्वधातुकस्य" (८/२/८८) सूत्र का विधान करते हैं । भोज का "अस्तिसिज्भ्याम्" (८/२/८९) सूत्र पा. सूत्र "अस्तिसिचो ऽपृक्ते" "बहुलं छन्दसि" (७/३/९६-९७) के आधार पर रचा गया है । भोज "अभ्यस्तस्यापिति गुणो वा" (८/२/९०) सूत्र पा. सू. एवं वार्तिक के आधार पर रचते हैं ।[२८] तत्पश्चात्भोज का ह्रस्वविधायक "ह्रस्वश्चोपधायाः" (८/२/९१) सूत्र भाष्यस्थ वार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[२९]

भोजने "सम्बुद्धौ नद्यम्बार्थानाम्" सूत्र, (पा. सू. ७/३/१०६-१०७) तथा वार्तिक सूत्र "छन्दसि वेति वक्तव्यम्" के आधार पर अपनाया है । (पा. सू. ७-३-१०७) स्थित वा. सूत्र तल् "ह्रस्वत्वं वा ङि सम्बुदध्योः के आधार पर भोज ने "तलोडौ च" (८-२-९३) सूत्र का विधान किया है । "सम्बुध्यादिषु गुणादयः" (८-२-९४) सूत्र भी वा. सू. "जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ् णौ चङ्युपधायाः ह्रस्व इत्येतस्मात्"[३०] के आधार पर ही पढा है । भोजदेव न क्वचि दीर्घादपुत्रादीनाम् (८-२-९६) सूत्र पा. सू. "न च्छन्दस्यपुत्रस्य" (७-४-३५) तथा वा. सूत्र अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम् के आधार पर रचते हैं। भोजदेव के (८-२-९७) से (८-२-१००) तक के सूत्र पाणिनि को अनुकरण मात्र है । भोज ने "हाकोर्हिर्वा" (८-२-१०१) सूत्र को (७-४-४२, ४३, ४४) सूत्रों के आधार पर रचा है । तदनन्तर "सुधितवसुधित"० (८-२-१०२) सूत्र द्वारा भोजने सुधित वसुधित आदि शब्दों को निपातन युक्त पढा है । पाणिनि भी इसे निपातन युक्त पढ़ते हैं । भोज का (८-२-१०३) सूत्र (पा. सू. ७-४-४८) एवं "भाष्य इष्टि" के आधार पर रचा गया है। आचार्य पाणिनि "कृषेश्छन्दसि" (७-४-६४) सूत्र रचते हैं भोजदेव उसी के आधार पर "न कृषे श्च्चुर्यङि" (८-२-१०४) सूत्र को रचते हैं ।

पाणिनीय सूत्र "दाधर्तिदर्धर्ति०" (७-४-६५) के आधार पर भोजदेव स्वसूत्र को विभाजित करके पढ़ते हैं ।[३१] दाधर्ति, दर्धर्ति आदि शब्दों के निपातन के पश्चात् भोज "ससूव" शब्द को निपातन युक्त पढ़ते हैं जो पा. सूत्र "ससूवेति निगमे" (७-४-७४) पर आधारित है ।

३० पा.अ० ७/३/१०९

३१ पा. अ० ८-२-१०५-१०६

इकारादेश विधान हेतु "श्लावभ्यासस्येत्" (८-२-१०८) सूत्र "बहुलं छन्दसि" (७-४-७८) सूत्र के आधार पर रचा गया है । पा. सू. "सर्वस्य द्वे" तथा प्रसमुपोदः पादपूरणे (८/२/१०९) के आधार पर भोजदेव एक ही सूत्र "प्रसमुपोद पादपूरणे द्वेः" (८-२-१०९) सूत्र का विधान करते हैं । भोज का अगला सूत्र "सिद्धः संयोगान्तलोपो रोरुत्वे" (८-२-११०) कात्यायन वार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[३२]

सरस्वती का अगला सूत्र "इक्र्भ्यां मतोर्वः" (८-२-१११) पा. सू. पर आधारित है । अनोनुट् "नाद्घस्य" (८-२-११२-११३) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है । (८-२-१७) सूत्र पर रचित वा. सू. "भूरिदाव्नस्तुद् वक्तव्यः" के आधार पर भोज ने (८/२/११४)सूत्र का विधान किया है । इसी प्रकार से हृग्रहोर्भश् छन्दसि वार्तिक सूत्र [३३] के आधार पर भोज ने (८/२/११५) सूत्र का विधान किया है । नसत, निषत्त, शब्दों को पाणिनि एवं भोजदेव दोनों आचार्य निपातनयुक्त पढ़ते हैं ।

पा. "अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च" (८/२/६७) सूत्र को भोजदेव विभाजित करके पढ़ते हैं । भोज स्वसूत्र में 'उक्थ' शब्द का भी ग्रहण करते हैं जबकि पाणिनि चकार से काम चला लेते हैं ।

भोजदेव रु तथा रेफादेश का विकल्प से विधान करने हेतु "अम्नसूधसवसां रो वा" (८/२/११९) सूत्र को रचते हैं । भोज का उक्त सूत्र (पा. सू. ८-२-७०) पर आधारित है । "भुवश्च महाव्याहृते" (८/२/१२०) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है । कात्यायन ने "यचि भम्" (१/४/१८) सूत्र पर "नभोंगिरोमतुवां वत्युपसंरव्यानम्" वार्तिक पढा है भोज ने उसी के आधार पर "नभस्वदंगिरस्वन" सूत्र का विधान किया है ।

भोज का "मनुष्वद्वसुवृषणश्वश्च" (८/२/१२२) सूत्र "वृषण्वस्वश्वयोः" वा.सू. के आधार पर रचा है । भोज का "अयस्मयसत्र्कक्वतादयः" (८/२/१२३) सूत्र पा.सू. (१/४/२०) तथा उसमें दिये गये "स सुष्टुभा सत्र्कक्वता गणेन" उदाहरणों के आधार पर रचा गया है । भोज का अगला सूत्र भी (८/२/१२४) पाणिनीय सूत्र (८/२/१०२) तथा उसपर काशिककार ने दिया हुआ उदाहरण "अधः स्विदासी३त् उपरि स्विदासी३त् ।" के आधार पर रचा गया है ।

---

३२ पा. अ० ८/२/३ वा. सू०संयोगान्तस्य लोपो रोरुत्वे सिद्धो वक्तव्यः ।

३३ पा. अ. ८-२-३२ एवं ८-२-३५ वा. सू.

प्लुतादेश विधान हेतु भोज द्वारा पठित (८/२/१२५ से १२७) तक से सूत्र पाणिनीय सूत्रों की अनुकृति ही है । भोज का "एचः प्रश्नान्तादिवत्" (८/२/१२८) सूत्र (पा. सू. ८/२/१०७) तथा तत्सूत्रपठित वा. सू. "प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादमाज्यान्तेष्वि तिवक्तव्यम्" के आधार पर रचा गया है । पा. सू. "प्रणवष्टेः" (८/२/८९) के आधार पर भोज ने स्वसूत्र का विधान किया है । भोज का "ये यजामहेब्रूहिप्रेष्य श्रौषङ्०" (८/२/१३०) सूत्र ये यज्ञकर्मणि (पा. सू. ८/२/९१) तत्सूत्रपठित भाष्यवार्तिक "सिद्धंतु ये यजामहे इति ब्रूह्यादिषु उपसंरव्यानम्" के आधार पर रचा गया है । भोज ने (८/२/१२४) से १३१) तक के सूत्रों में प्लुतादेश का विधान किया है । "ओश्रावयाश्रवये०" (८/२/१३१) सूत्र पा. सूत्र."अग्नीत्प्रेषणे परस्य च" (८/२/९२) एवं "सिद्धं त्वोश्रावये परस्य चेति वक्तव्यम्" वार्तिक के आधार पर रचा गया है । "रु" आदेश हेतु पाणिनि ने "मतुवसोः रु सम्बुद्धौ छन्दसि" (८-३-१) सूत्र का विधान किया है एवं उस सूत्र पर कात्यायन ने "वन उपसख्यानं कर्तव्यम्" वार्तिक विधान किया है उसी के आधार पर भोजने "मतुवसुवनानां रु संबुद्धौ" (८/२/१३२) सूत्र रचा है ।

"नश्छव्यप्रशान्" "उभयथर्क्षु" (८/३/७-८) इन दो सूत्रों के आधार पर भोज ने "ऋक्षनुश्छवि वा" (८/२/१३३) सूत्र रचा है । भोज का "दीर्घादटि समानपादे" "स्वतवान्पायौ (८/२/१३४-१३५) दोनों सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है । "छन्दसि वा ऽप्राम्रेडितयोः" (८/३/४९) सूत्र को भोजदेव कुछ परिवर्तन के साथ "रस्सो ऽप्रद्विरुक्तपरयोः" (८/२/१३६) पढ़ते हैं। भोजदेव के (८/२/१३७-१३८) दोनों सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है। तत्पश्चात् भोज ने "पातौ वा" (८/२/१३९) सूत्र का विधान किया है जब कि पाणिनि "पातौ च बहुलम्" (८/३/५२) सूत्र को रचते हैं ।

भोजदेव के (८/२/१४०-१४१) दोनों सूत्र पाणिनीय सूत्र पर आधारित हैं । भोजने (८/२/१३६ से १४१) तक के सूत्रों में सकरादेश का विधान किया है । "सहेः साडस्सषः" (८/२/१४२) सूत्र को भोज कुछ परिवर्तन के साथ पढ़ते हैं । तत्पश्चात् "तादियुष्मत्तत्क्षुष्वन्तः पादम्" (८/२/१४३) सूत्र को भोजदेव "ह्रस्वात्तादौ तद्धिते" (८/३/९१) एवं "युष्मत्तत्क्षुष्वन्तः पादम्" (८/३/१०१) इन दो सूत्रों के आधार पर रचते हैं । पाणिनि ने "यजुषि एकेषाम्" (८/३/१०४) सूत्र रचा है उसीके आधार पर भोज "यजुषि वा" सूत्र रचते हैं । "पूर्वपदात्" (८/२/१४५) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है । भोज

"स्तुतस्तोमादीनाम्" (८/२/१४६) सूत्र रचते हैं पाणिनि ने "स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि" (८/३/१०५) सूत्र रचा है । "सुञः" "सनोतेरनः" (८/२/१४७-१४८) दोनों सूत्र पाणिनि के अनुकरण के आधार पर रचे गये हैं । तदनन्तर "ऋतर्तिपृतनाभ्यः सहेः" (८/२/१४९) सूत्र "सहेः पृतनर्ताभ्यां च" "ऋतीषहमित्यत्रापि यथा स्यात्" उक्त विधान के आधार पर भोज ने इस सूत्र का विधान किय है ।

भोजदेव (८/२/१४२ से १४९) तक के सूत्रों में मूर्धन्यादेश का विधान करते हैं । (८/२/१५० से १५३) तक के सूत्रों में भोजने मूर्धन्यादेश का निषेध किया है । भोज "सवनसुतसामवनमुखानां द्विरुक्तौ" (८/२/१५१) सूत्र के पा. सू. "सवनादीनाम्" (८/३/१०८) एवं काशिकाव्यारव्यान के आधार पर अपनाते हैं । भोज का "किंसानुसवनयोश्च" (८/३/१५२) सूत्र पा. (८/३/१०८) सूत्र पर गणठित शब्दों के आधार पर रचा गया है । भोज का उक्त प्रकरण छन्दसि होने से उन्होने "निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा" (८/२/१५३) सूत्र का विधान किया है जबकि पाणिनि स्व सूत्र में 'छन्दसि' श्ब्द का का पठन करते हैं । पा. सू. "उदस्थास्तम्भोः पूर्वस्य" (८/४/६१) सूत्रस्थ वा. सू. "उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसंरव्यानम्" के आधार पर भोज ने स्वसूत्र का विधान किया है ।

णकारादेश हेतु भोज "ऋतो ऽवहग्रहान्नो णः" (८/२/१५५) सूत्र रचते हैं उक्त सूत्र "छन्दयृदवग्रहात्" (८/४/२६) एवं "नोणः" सूत्र के आधार पर रचा गया है । इस पाद का अन्तिम सूत्र "धातुस्थोरुषुभ्यो हनः" (८/२/१५६) पा. सू. (८/४/२२) एवं (८/४/२७) के आधार पर रचा गया है ।

इस प्रकार से अष्टमाध्याय के द्वितीय पाद के सूत्रों को पाणिनि ने षष्ठाध्याय प्रथम पाद, तृतीय पाद, चतुर्थ पाद, सप्तमाध्याय प्रथम पाद, द्वितीय पाद, तृतीय पाद, चतुर्थ पाद, अष्टमाध्याय द्वितीय पाद, तृतीय पाद चतुर्थ पाद के भिन्न भिन्न सूत्रों में पढा है । भोज उन्हें एक ही स्थल पर पढ़ते हैं यही उनकी विशेषता है ।

तृतीय पाद-

भोजदेव का अष्टमाध्याय का तृतीय पाद स्वरविधायक सूत्रों का है । इस पाद में भोज ने भिन्न भिन्न स्वरों की चर्चा की है । "स्वरः सतिशिष्टो बलीयानविकरणस्य" (८/२/१) स्वरविधायक प्रथम सूत्र है उक्त सूत्र

काशिकाव्यारव्यान "विकरणस्वरस्तु सतिशिष्टोऽपि सार्वधातुक स्वरं न बाधते" पा. अ. (६/१/१५८) के आधार पर रचा गया है । पाणिनि के (६/१/१५८) सूत्र पर जो वार्तिक कात्यायन ने रचे हैं उसी के आधार पर भोज ने विभक्तितन्निमित्तयोर्नञः" "कृतश्च" (८/३/२,३) सूत्र रचे हैं । (पा. अ. १/२/३०) में "हल्स्वरप्राप्तौ व्यंजनमविद्यमानवद् भवति" परिभाषा सूत्र का पठन किया गया है उसी के आधार पर "स्वर विधौ व्यंजनमविद्यमानवत्" सूत्र बनाते हैं । भोज का "अनुदातं" पदमेकवर्जम्" (८/३/५) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है । पा. सू. "इदमो ऽन्वादेशे ऽ शनुदात्तस्तृतीयादौ" "एतदस्त्रतसौ चानुदात्तौ" "द्वितीया टौस्वेन" (२/४/३२ से ३४) तक के सूत्रों के आधार पर भोज ने "अद्वितीयात्रतसावेनाशोऽन्वादेशे"(८/२/६) सूत्र का का विधान किया है । (पा. सू. ६/१/१५८) पर काशिकाकार ने विवरण दिया है कि "आगमस्वरः प्रकृतिस्वरं बाधते" उसी के आधार पर भोज ने "आगमश्च" (८/३/७) सूत्र का विधान किया है ।

"दिक्पूर्वान्ङीष्" (४/१/१६०) सूत्र के आधार पर भोज "दिशः स्वांगान् ङीष्" (८/३/८) सूत्र रचते हैं । भोज (८३/८) से (८/३/११) तक के सूत्रों में ङीष् प्रत्यय अनुदात्त एवं उदात्त का विधान करते हैं । पाणिनि ने "वोतो गुणवचनात्" (४/१/४४) सूत्र रचा है भोज उसकी जगह "ओर्गुणात्" सूत्र रचते हैं । पा. सू. "अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः" (६/१/१६१) सूत्र के आधार पर कुछ परिवर्तन के साथ भोजदेव "यत्रोदात्तलोपस्सउदात्तः" (८/३/१०) सूत्र का विधान करते हैं ।"हिमारण्यात्" (८/३/११) सूत्र को भोजदेव वार्तिक सूत्र के आधार पर रचते हैं ।"संख्याव्ययादेरुधसो ङीष्" (८/३/१२) सूत्र पाणिनीय सूत्र द्वय के आधार पर रचा गया है ।[३४]

पा. सूत्र "आद्युदात्तश्च" (३/१/३) सूत्र को उचित परिवर्तन के साथ भोजदेव "प्रत्ययस्यादिः" (८/३/१३) सूत्र के रुप में पढ़ते हैं । पूर्वसूत्र से अन्तोदात की अनुवृत्ति आती है अतः पाणिनि ने "धातोः" (६/१/१६२) सूत्र रचा है। भोजदेव "धातोरन्तः"सूत्र का विधान करते हैं । (८/३/१४) सूत्र से 'अन्तः' की अनुवृत्ति आती है अतः भोज "कर्षात्वतो घञः" (८/३/१५) सूत्र का विधान करते हैं जबकि पाणिनि सूत्र में अन्तः शब्द का पठन करते हैं ।

---

३४ पा. अ. ४-१-२५-२६

३५ पा. अ. ४-४-३१, ६-१-१९७, ६-१-१६३.

पाणिनि ने "उञ्छादीनां च" (६/१/१६०) सूत्र का विधान किया है इसमें पठित गणशब्दों के आधार पर भोज ने (८/३/१६ से ८/३/२३) तक के सूत्र रचे हें उक्त सूत्रों में अन्तोदात्तस्वर का विधान किया गया है । भोज का "तोदेयकौ च" सूत्र जिज्ञासुओं के लिये चुनौति समान है । "गह्यं दशैकादशिकात् (ष्ठनृष्ठचौ) (८/३/२५) सूत्र पा. सूत्र त्रय के आधार पर रचा गया है ।[३५]

पा. अ. (३/३/९४, ३/३/१८) के आधार पर भोज "स्त्रियां क्यपः" (८/३/२६) सूत्र का विधान करते हैं । भोज (८/३/२७) सूत्र में क्तिन् प्रत्यय को उदात्त विधान करते हैं । पाणिनि एवं भोज दोनों एक सा सूत्र पढ़ते हैं भोज सूत्र में क्तिन् प्रत्यय का निर्देश करते हैं । जबकि पाणिनि को इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । "ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च" (३/३/९७) सूत्र का पाणिनि ने विधान किया है उसी उत्यादिगगणपठित शब्दों के आधार पर भोज "उत्यादीनामज्ञप्ते" (८/३/२८) सूत्र का विधान करते हैं । सरस्वतीकण्ठाभरण के (८/३/२९ से ३१) तक के सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र हैं ।

पाणिनि ने "भवतष्ठक्छसौ" (४/२/११५) सूत्र रचा है । चान्द्रव्याकरणकार "भवतो दश्च" "ठञ्" (३/२/२९-३०) सूत्र रचते हैं । भोजका "भवतष्ठञः" (८/३/३२) सूत्र पाणिनि की अपेक्षा चा. व्याकरण से अधिक साम्य रखता है। "सरस्वतीकण्ठाभरण" के (८/२/३३,३४) सूत्र पाणिनीय सूत्रों पर आधारित न होकर मौलिक प्रतीत, होते हैं । पाणिनि का "तिसृभ्यो जसः" (६/१/१६६) तथा सूत्रस्थ वचन "उपसमस्तार्थमेके जसो ग्रहणमिच्छन्ति अतितिस्त्रौ अतितिस्त्रः" के आधार पर भोजने त्रयसस्तिस्त्रतितिसृभ्योजसः" (८/३/३५) सूत्र का विधान किया है ।

पाणिनि एवं भोजदेव दोनों आचार्य "चतुरः शसि" (८/२/३७, (६/१/१६७) समानरुपेण विधान करते हैं । पा.सू. (६/१/१६८) "सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः" के आधार पर भोजदेव "सुप्येकाचो ऽनाट्टादयः" (८/३/३८) सूत्र का विधान करते हैं । भोज के (८/३/३९-४०) सूत्र शाब्दिक परिवर्तन के साथ पाणिनि का अनुकरणमात्र है । भा. वा० "उठयुपधाग्रहणं कर्त्तव्यम्" के आधार पर भोज ने "ऊठ उपधायाः" (८/३/४२) सूत्र का विधान किया है । "अष्टनो दीर्घात्" (६/१/१७२) सूत्र के आधार पर भोज "आतो अष्टनः" (८/३/४३) सूत्र का विधान करते हैं । पा. सू. (६/१/१७१) तथा

३६ पा. अ. ६-१-१७३. भा. वा०- नद्यजाद्युदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम्

काशिका व्याख्यान के आधार पर भोज "शसादिश्चेदमः (८/३/४४) सूत्रको रचते हैं । दोनों आचार्य "शतुरनुमो नद्यजादी" (८/३/४५) सूत्र को समानरुपेण पढ़ते हैं । भोज का "बृहन्महत्यां च" (८/३/४६) सूत्र भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[३६] "सरस्वतीकण्ठाभरण" के (८/३/४७-४८) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है।

"ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्" (६/१/१७६) तथा "मतुबुदात्तत्वे रे ग्रहणम्" वार्तिक सूत्र के आधार पर भोजने "ह्रस्वरेनुड्भ्यो मतुप्" (८/३/४९) सूत्र पढा है । भोज का "नाववर्णात्" (८/३/५०) सूत्र भी पा. सू. (६/१/१७४) तथा वा. सू. "उदात्तयणि हल्ग्रहणं नकारान्तार्थम्" के आधार पर पढा गया है । भोज ने "नाम्विधौ ह्रस्वाद् वा" (८/३/५१) सूत्र का विधान "नामन्यतरस्याम्" (६/१/१७७) तथा पूर्वसूत्रों की अनुवृत्तियों के आधार पर किया है ।"ङ्याश्छन्दसि बहुलम्" (८/३/५२) सूत्र को दोनों आचार्य समानरुपेण पढ़ते हैं ।

'षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः" (६/१/१७१) के आधार पर उचित परिवर्तन के साथ भोज "त्रिचतुष्षणः संख्याया हलादिः" (८/३/५३) सूत्र को पढ़ते हैं सरस्वतीकण्ठाभरण के (८/३/५४-५५) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है । भोज (८/३/१० से ८/३/५५) तक के सूत्रों में उदात्तस्वर का निर्देश करते हैं ।

"न गोश्वराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः" (८/३/५६) सूत्र कुछ परिवर्तन एवं 'सावर्ण' शब्द को छोडकर भोजने पढ़ा है एतदर्थ पाणिनि का (६/१/१८२) सूत्र द्रष्टव्य है । भोज इस सूत्र द्वारा उदातस्वर का निषेध सूचित करते हैं।"नृ चान्यतरस्याम्" (६/१/१८४) सूत्र को पाणिनि ने पढ़ा है भोज उसके आधार पर "नुर्वा" (८/३/५८) सूत्र का विधान करते हैं ।

"तित्स्वरितम्" (८/३/५९) सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज समानरुपेण स्वरित का विधान करते हैं । पा. सू. (६/१/१८६) को उचित परिवर्तन के आधार पर भोज स्वसूत्र के रूप में (८/३/६०) सूत्र को पढ़ते हैं । आचार्य पाणिनि के (६/१/१६१) सूत्र पर "विन्दीन्धिखिदिभ्यश्चलसार्वधातुकानुदात्तप्रतिषेधाल्लिङि सिद्धम्" वार्तिक पढ़ा गया है । उसी के आधार पर भोज ने (८/३/६१) सूत्र का विधान किया है।

भोज ने "न शतृशानन्शानचः" सूत्र को किसी प्प्राचीन परंपरा के आधार पर पढा है । "आदिः सिचोऽन्यतरस्याम्" (६/१/१८७) सूत्र के आधार पर भोज "सिचः आदिरुदात्तो वा" (८/३/६३) सूत्र का विधान करते हैं ।"पिदनिटः" (८/३/६४) सूत्र भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[३७] भोजने "स्वपश्वसर्हिंस"

३७ पा. अ. ६-१-१८७ भा. वा. "सिच आद्युदात्तत्वे ऽनिटः पित उपसंख्यानम्" ।

आदि धातुओं का निर्देश करके (८/३/६५) सूत्र द्वारा उदात्त का विधान किया है जबकि पाणिनि 'स्वपादि' शब्द द्वारा सूत्र में काम चला लेते हैं । इसी प्रकार भोजने (८/३/६६) सूत्र में अभ्यस्तसंज्ञक दी,धी, वे वी आदि धातुओं का निर्देश किया है जब कि पाणिनि "अभ्यस्तानामादिः" (६/१/१८९) सूत्र द्वारा काम चला लेते हैं । भोज के (८/३/६७) से (८/३/७०) तक के चार सूत्र किंचित् परिवर्तन के साथ पाणिनीय सूत्र के आधार पर पढे गये हैं ।

"एतेतौ रथोः" (५/३/४) पाणिनीय सूत्र का अनुसरण करके भोज ने "रथौवा" (८/३/७१) सूत्र का विधान किया है । पा. सू. (६/१/१९४) "आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम्" को भोजदेव शब्दविपर्यास के साथ पढ़ते हैं । भोज का उपदेशे ऽचःकर्तृयकि (८/३/७३) पाणिनि का अनुकरणमात्र है । भोज ने "जनसनखनतनां च" (८/३/७४) सूत्र का विधान (६/१/१९५) सूत्रस्थ भा. वा. "उपदेशे जनादीनाम्" के आधार पर किया है । पा. सू. "थलि च सेटिडन्तो वा" (६/१/१९६) सूत्र के साथ "थलि च सेटिडन्तश्च वा" (८/३/७५) सूत्र तुलनीय है । सरस्वतीकण्ठाभरण के (८/३/७५-७६) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है । पा. सू. "पथिमथोः सर्वनामस्थाने" (६/१/१९९) सूत्रस्थ सर्वनामस्थाने शब्द की जगह 'सुटि' शब्द का विधान करके भोज स्वसूत्र को रचते हैं । भोज का "सर्वस्यानकः सुपि" (८/३/७९) सूत्र पा. सू. एवं भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है ।[३८] भोज के (८/३/८०) से (८/३/८२) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्र के आधार पर रचे गये हैं । भोज का (८/३/८३-८४) सूत्र पा. "वृषादीनां च" (६/१/२०३) सूत्रस्थ पठित गणशब्दों के आधार पर ही रचा गया है । "संज्ञायामुपमानम्" सूत्र को पाणिनि एवं भोजदेव समानरुप से पढ़ते हैं । "शमरणौ भावकर्मणोः" (८/३/८६) सूत्र "शमरणौ संज्ञायां संमतौ भावकर्मणोः [३९] वार्तिक सूत्र के आधार पर ही रचा गया है । पाणिनि ने "निष्ठा च द्वयजनात्" ६/१/२०५) सूत्र का विधान किया है । भोज निष्ठा शब्द की जगह क्तस्य शब्द का विधान करते हैं । तत्पश्चात् "शुष्कधृष्टौ" (८/३/८८) सूत्र "डयि च" (८/३/९४) तक के सूत्र भोज पाणिनीय सूत्रों के आधार पर ही पढ़ते हैं । पाणिनि ने "यतोऽनावः" (८/३/९५) सूत्र का विधान किया है क्योंकि द्वयच् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र से अनुवृत्त होती है । जब कि भोज को "द्वयचो यतोऽनावः (८/३/९५) सूत्र का विधान करना पडता है । भोज (८/३/९६) से (८/३/१००) तक के सूत्र किंचित परिवर्तन के साथ पाणिनीय सूत्र के आधार पर ही पढ़ते

---

३८ पा. अ. ६-१-१९१ भा. वा. सर्वस्वरो डनकच्कस्य ।

३९ पा. अ. ६-१-२०३

हैं । पाणिनि ने (४/४/१०८) में "समानोदरे शयित ओचोदात्तः", सूत्र का विधान किया है । भोज उसी के आधार पर "ओत्समानोदराद्यति" सूत्र का विधान करते हैं। पाणिनि सोदर शब्द से य प्रत्यय का विधान (४/४/१०९) सूत्र में करते हैं । जबकि भोज (८/३/१०२) सूत्र में यत् प्रत्यय विधान करते हैं । पाणिनि ने (४/१/३६) सूत्र में "पूतक्रतौरैच" सूत्र का विधान किया है । किंचित् परिवर्तन के साथ भोज "पूतक्रतोर्ड्यामैत् (८/३/१०३) सूत्र रचते हैं । पाणिनि ने "अस्थिदधि." (७/१/७५) सूत्र द्वारा अनङ् एवं उदात्त का विधान किया है । भोज का उक्त प्रकरण उदात्त प्रकरण है अतः सूत्र में उदात्त ग्रहण की आवश्यकता नहीं है एवं अस्थिदधि आदि शब्दों को भोज ने (६/४/३०) मे पढा है अतः 'अस्थ्यादीनाम्' शब्द ग्रहण से वे (८/३/१०४) सूत्र से काम चला लेते हैं ।

भोज ने "लुङ् लङ लृङक्ष्वऽमाङ्योगे" (६/३/८२) सूत्र में लकारों का निर्देश किया है अतः प्रस्तुत सूत्र में "लुङादिष्वडादौ" (८/३/१०५) सूत्र द्वारा ही काम चला लेते हैं । पाणिनि (६/१/२१९) सूत्र में "मतोः पूर्वामात् संज्ञायां स्त्रीयाम्" सूत्र को पढ़ते है भोज किंचित् परिवर्तन के साथ "मतोरात्स्त्रीसंज्ञायाम्" (८/३/१०६) सूत्र को रचते हैं । "अन्तोऽ-वत्याः" ईवत्याः (६/१/२२०-२२१) सूत्र द्वय को एकत्र करके भोज संयुक्तरुप से एक ही सूत्र में अन्त्यईवत्यवत्योः (८/३/१०७) सूत्र को रचते है । भोज ने (८/३/५ से ९) तक के सूत्रों में अनुदात्त का विधान किया है । (८/३/१० से ८ ३/१/१९५) तक से सूत्रों में उदात्त स्वर का विधान किया है । प्रातिपदिकस्य (८/३/१०९) सूत्र से "शेषं सर्वमनुदात्तम्" (८/३/१९६) से पूर्व के सभी सूत्र फिट् सूत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

पूर्वाचार्यों ने प्रातिपदिक की फिट् संज्ञा कही है । "फिडिति पूर्वाचार्य प्रसिद्ध्या प्रातिपदिकमुच्यते" अतः भोज ने "फिषो ऽन्त उदात्तः" सूत्र न पढ़के "प्रातिपदिकस्य" (८/३/१०९) सूत्र का विधान किया है । भोज ने उक्त सभी सूत्र शान्तवाचार्य प्रणीत फिट् सूत्रों के आधार पर ही रचे हैं । (८/३/१०९ से ११६) तक सूत्रों में अन्तोदात्त का विधान किया गया है । भोजरचित (८/३/११७-११८ दोनों सूत्र विकल्प से अन्तोदात्त एवं आद्युदात्त का विधान करते हैं । "वा नामधेयस्य" (८/३/१२०) सूत्र द्वारा भोज विकल्प से अन्तोदात्त का विधान करते है । "शुक्लगौरयोरादिः" (८/३/१२१) सूत्र द्वारा भोज आद्युदात्त का निर्देश करते हैं । फिट् सूत्र में इसे (१/१३) में पढ़ा गया है । "पृष्ठस्य च" (८/३/१२३) में पुनः अन्तोदात्त स्वर का विधान किया

गया है । "वा भाषायाम् (८-३-१२४) सूत्र द्वारा विकल्प से अन्तोदात्त का विधान किया गया है ।" "अर्जुनस्य तृणाख्या चेत्" (८/३/१२५) सूत्र द्वारा भोज अन्तोदात्त का विधान करते हैं । जिसे शान्तनवाचार्य ने (१/१७) सूत्र में पढ़ा है । "ज्येष्ठ कनिष्ठयोर्वयसि" (८/३/१३१) तक के सूत्रों में अन्तोदात्त स्वर का विधान किया गया है । "बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा" (८/३/१३२) सूत्र द्वारा भोज स्वरित का विधान करते हैं । एवं पक्ष में अन्तोदात्त स्वर का भोज उक्त सूत्र को शान्तवाचार्य प्रणीत (१/२४) सूत्र के आधार पर पढ़ते हैं।

सरस्वतीकण्ठाभरणकार "अथादिः प्राक्शकटेः" (८/३/१३३) सूत्र से लेकर "शकटिशकटयोरक्षरमक्षरं पर्यायेण" (८/३/१७८)से पूर्वतक के सभी सूत्रों में आद्युदात्त स्वर का विधान करते हैं । अपवादरुपेण "न वृक्षपर्वतविशेष व्याघ्रसिंहमहिषाणाम्" (८/३/१४९) सूत्र में भोज आद्युदात्त का निषेध करते हैं। भोज ने इस सूत्र को शान्तनवाचार्यप्रणीत (२/४१) सूत्र के आधार पर ही रचा है । इसी प्रकार से "नर्तुप्राण्याख्यायाम्" (८/१/१५४) सूत्र द्वारा भोजदेव ऋतुवाचक एवं प्राणीवाचक शब्दों में आद्युदात्त का निषेध विधान करते हैं, भोज का उक्त सूत्र फिट् सूत्र (२/४६) के आधार पर रचा गया है । तत्पश्चात् भोजदेव पुनः "धान्यानां वृद्धक्षान्तानाम्" (८/३/१५५) सूत्र द्वारा आद्युदात्त का विधान करते है, भोज ने इसे (२/४७) के आधार पर आत्मसात् किया हैं।

"अथ द्वितीयं प्रागीषात्" (८/३/१५९) सूत्र द्वारा भोज द्वितीय अक्षर को उदात्त का विधान करते है। इसका अधिकार "ईषान्तस्य हलादेः" (८/३/१७५) से पूर्व समझना चाहिये । इसी प्रकार से "त्र्यषां प्राङ्मकरात्" (८/३/१६०) सूत्र द्वारा त्र्यच् का अधिकार समझना चाहिये उक्त अधिकार "मकरवरुथ" (८/३/१६६) से पूर्व तक प्रवृत्त होता है । "मकरवरुथपारेवत" (८/३/१६६) सूत्र से भोज ने विकल्प से द्वितीय अक्षर के उदात्त का विधान किया है विकल्प की अनुवृत्ति (८/३/१७०) सूत्र तक प्रवृत होती है ।

"यान्तस्यान्त्यात् पूर्वम्" (८/३/१७१) सूत्र द्वारा भोज अन्त्य से पूर्व को उदात्त का विधान करते हैं । "सांकाश्यकाम्पिल्य"० (८/३/१७४) सूत्र द्वारा भोजदेव द्वितीय अक्षर को विकल्प से उदात्त का विधान करते हैं । "ईषान्तस्य हयादेः" (८/३/१७५) सूत्र द्वारा आदि अक्षर को विकल्प से उदात्त विधान किया हैं भोज इस सूत्र को फि. सू. (३/६७) के आधार पर रचते हैं ।

"उशीरदाशेर०" (८/३/१७६) एवं (८/३/१७७) सूत्र द्वारा भोज आद्यक्षर उदात्त का विधान करते हैं । "शकटिशकटयोरक्षरमक्षरं पर्यायेण" (८/३/१७८)

सूत्र द्वारा तीनों अक्षर पर्यायक्रम से उदात्त होते हैं इस प्रकार का विधान करते हैं । शान्तवाचार्य ने फि. सू. (४/७०) में इसे पढा है भोज उसे यहाँ अपनाते हैं । पर्याय से उदात्त की अनुवृत्ति (८/३/१८२) तक के सूत्रों में प्रवृत होती है । "न्यङ्स्वरौ स्वरितौ" (८/३/१८३) सूत्र द्वारा भोज स्वरित स्वर का विधानकरते हैं । भोज ने उक्त सूत्र का ग्रहण फि. सू. (४/७४) से किया है ।"न्यर्बुदव्यल्कशयोरादि:" (८/३/१८४) सूत्र द्वारा आद्यक्षर स्वरित का विधान किया गया है इस सूत्र को भोज फि. सू. (४/७५) के आधार पर पढते हैं ।

"तिल्यशिक्यकाश्मर्य०" (८/३/१८५) तथा (८/३/१८६) सूत्र द्वारा भोज अन्त: स्वरित का विधान करते हैं । त्वत्, त्व, सम आदि शब्दों को फिट् सूत्रकार ने (४/७९) में अनुदात्त के रुप में पढा है भोज उसी का यहाँ अनुसरण करते हैं । "सिमस्याथर्वणे ऽन्तः उदात्तः" (८/३/१८८) सूत्र द्वारा भोज अन्तोदात्त का विधान करते हैं, उक्त सूत्र को उन्होनें (फि.सू. ४/८०) के आधार पर आत्सात् किया है ।

"फिट् सूत्रकार" ने "निपाता आद्युदात्ताः" (४/८१) सूत्र द्वारा आद्युदात्त का विधान किया है भोज उसी सूत्र को यहाँ अपनाते हैं । शान्तनवाचार्य ने एवादीनामन्त:" (४/८३) सूत्र द्वारा अन्तोदात्त का विधान किया है । भोज का इस सूत्र से सूत्र साम्य द्रष्टव्य है । भोज ने "वावादीनामुभावुदात्तौ (८/३/१९२) सूत्र द्वारा दोनों अक्षरों को उदात्त दर्शाया है । च.वा. यथा आदि शब्द अनुदात्त होते हैं । (फि. सू. ४/८५-८६) के आधार पर भोज (८/३/१९३/१९४) सूत्र को रचते हैं ।

द्विर्भाववाचक प्रकारादि शब्द के अन्त्य अक्षर को उदात्त होता है इस हेतु फिट् सूत्रकार ने (४/८७) में सूत्र रचा है, भोज उसी के आधार पर स्वसूत्र रचते हैं । शेषं सर्वमनुदात्तम्" (८/३/१९६) सूत्र द्वारा प्रकारादि द्विर्भाव से शेष सभी पद अनुदात्त होते हैं । यहाँ फिट् सूत्र प्रकरण पूर्ण होता हैं । भोजदेव ने फिट्सूत्रों का ग्रहण यहाँ इसलिये किया है कि फिट्सूत्रों का परिगणन वैदिक सूत्रों के रुप में ही किया गया है ।

भोजदेव "वस्नादयः" (८/३/१९७) सूत्र द्वारा अनुदात्त का विधान करते हैं । पूर्वसूत्र से अनुदात्त की अनुवृत्ति आती है अतः यहाँ अनुदात्त विधान की आश्यकता प्रतीत नही होती । भोज ने उक्त सूत्र का विधान "बहुवचनस्य वस्नसौ" (पा.सू. ८/२/२१) सूत्र के आधार पर किया है । "आमन्त्रितस्य च" (८/१/१९) सूत्र के आधार पर "[illegible]नम्" (८/३/१९८) सूत्र का

का विधान किया है । सूत्रकार पाणिनि ने तिङो गोत्रादीनि कुत्सना०" (८/१/२७) सूत्र में गोत्र, ब्रुव, प्रवचन आदि गोत्रवाची शब्दों का पठन किया है भोज ने उन्हीं शब्दों के आधार पर (८/३/१९९) में स्वसूत्र का विधान किया है । उपर्युक्त (८/१/२७) सूत्र में काशिकाकार निम्न व्याख्यान पढते है "नामेत्यतद्वानिहन्यते पक्षे आद्युदात्तमेव भवति" । इसी वचन के आधार पर भोज "कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोर्नामवां (८/३/२००) सूत्र पढते हैं । भोज का "तिङ्ङतिङः" (८/३/२०१) सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है । भोज ने "न लुट्" (८/३/२०२) सूत्र से "याद्यवथाभ्याम्" (८/३/२१३) तक के सूत्रों में अनुदात्त स्वर का निषेध किया है उक्त सभी सूत्र पाणिनीय अष्टमाध्याय के प्रथम पाद पर आधारित हैं ।

"उपसर्गव्यपेतम्" (८/३/२१४) सूत्र द्वारा भोज पुनः अनुदात्त का विधान करते हैं एवं "शेषे वा" (८/३/२१५) सूत्र द्वारा विकल्प से अनुदात्तका विधान करते हैं, पाणिनि ने एतदर्थ "शेषे विभाषा" (८/१/४१) सूत्र का का विधान किया है । भोज पुनः "नन्वनुज्ञैषणायाम्" (८/३/२१६) से "एकान्याभ्यां तुल्यार्थाभ्याम्" (८/३/२३९) तक के सूत्रों में अनुदात्त का निषेध दर्शाते हैं। बीचमें अपवादरुपेण "लोपे वा" (८/३/२२१) सूत्र द्वारा विकल्प से अनुदात्त का विधान करते हैं । पाणिनि ने एतदर्थ "लोपे विभाषा" (८/१/४५) सूत्र रचा है । भोज का "यद्वृत्ताद्व्यवायेऽपि" (८/३/२२२) सूत्र "यद्वृत्तान्नित्यम्" (८/१/६६) सूत्र तथा काशिका व्याख्यान "पंचमीनिर्देशे ऽप्यववहिते कार्यमिष्यते" के आधार पर रचा गया है ।

कात्यायन ने (८/१/६६) सूत्र पर "यथाकाम्येवेतिवक्तव्यम्" वार्तिकसूत्र रचा है उसी के आधार पर भोज ने "कामाचारे वा" (८/३/२२३) सूत्र रचा है । पाणिनि ने "चनचिदिवगोत्रादितध्दितान्रेडितेष्वगतेः" (८/१/५७) सूत्र का विधान किया है । उसी पर काशिकाकार निम्नव्याख्यान पढते हैं – "अत्रागतिग्रहणे सगतिरपि तिङ् इत्यत्र उपसर्ग ग्रहणं द्रष्टव्यम्"। भोज पाणिनीय सूत्र एवं काशिकाव्याख्यान के आधार पर स्व सूत्र को (८/३/२२१) रचते हैं । भोज का "चवाहाहैवेषु च" (८/३/२३२) सूत्र पा. सू. "चादिषु च" (८/१/५८) तथा काशिकाव्याख्यान "चादयः न चवाहाहैवयुक्ते इत्यत्र ये निर्दिष्टाः त॰इह गृहयन्ते" के आधार पर रचा गया है । भोज ने "वैवाभ्यां छन्दसि" (८/३/२३८) सूत्र का ग्रहण किया है भोज का उक्त सूत्र पाणिनीय सूत्र "वैवावेतिच्छन्दसि" (८/१/६४) सूत्र पर आधारित है । पाणिनिने एकान्याभ्यां

समर्थाभ्याम् (८/१/६५) सूत्र रचा है । किंचित् परिवर्तन के साथ भोज "एकान्याभ्यां तुल्यार्थाभ्याम्" (८/३/२३९) सूत्र को रचते हैं ।

भोजदेव "पूजनेभ्यः काष्ठदारुणामाता०" (८/३/२४०) सूत्र से पुनः अनुदात्त स्वर का विधान करते हैं एतदर्थ पाणिनि ने "पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः" (८/१/६७) सूत्र का विधान किया है । एवं "काष्ठादिभ्यः" शब्द के अन्तर्गत काष्ठागिदणपठित शब्दों का पठन किया है । भोज स्व सूत्र में ही काष्ठादिगणपठित शब्दों, का निर्देश करते हैं । पाणिनीय सूत्र "सगतिरपितिङ्" (८/१/६८) एवं काशिका व्याख्यान "गतिग्रहणेन चात्रोपसर्गग्रहण मिष्यते "उक्त दोनों के आधार पर भोजस्वसूत्र" "सोपसर्गमपितिङ्" (८/३/२४१) का विधान करते हैं । इसी प्रकार से भोज का "क्रियायाः कुत्सने सुप्यगोत्रादौ" (८/३/४४) सूत्र पाणिनीय सूत्र "कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ (८/१/६९) एवं काशिका पठित वार्तिक "क्रियाकुत्सन इति वक्तव्यम्" तथा भाष्यवार्तिक "सुपि कुत्सने क्रियायाः" के आधार पर रचा गया है ।[४०]

भोज "बह्वर्थंवा" (८/३/२४५) सूत्र को पा. सू. (८/१/६९) स्थित भा. वा. "विभाषितं चापि बह्वर्थं" के आधार पर रचते हैं । भोजीय गतिर्गतौ, तिङ्युदात्तवति" (८/३/२४६-२४७) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरण मात्र है। भोज का "प्रत्ययान्ते च" सूत्र. पा. सू. (८/१/७१) एवं तत्सूत्रस्थित भा. वा० "यद्योगाद्गतिरिति चेत् प्रत्ययोदात्तत्वे ऽप्रसिद्धि के आधार पर रचा गया है। ऐसा प्रतीत होता है । भोज ने अनुदात्त प्रकरण का "प्रत्ययान्तेच" (८/३/२४८) सूत्र तक विस्तार किया है ।

भोज "सुबामन्त्रिते पराङ्ग्वत् तन्निमित्तम्" (८/३/२४९) सूत्र द्वारा पराङ्ग्दवद्भाव का निर्देश करते हैं, पदार्थ पाणिनि "सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे" (२/१/२) सूत्र का निर्देश करते है, भोज स्वरे शब्दकी जगह निमित्त शब्द का पठन करते हैं । भोज का (८/३/२५०) "समानाधिकरणे च" सूत्र. पा. सू. "सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे (२/१/२) सूत्रस्थ भा. वा. "सुबन्तस्य पराङ्ग्वद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानमनन्तरत्वास्वरे ऽ वधारणाच्च" के आधार पर रचा गया है ।

"सरस्वतीकण्ठाभरण" के तृतीय पाद के २५१-२५२ सूत्र भी भाष्यस्थ

---

४० पा. अ. २-१-२ भा. वा० परमपिच्छन्दसि, अनव्ययीभावस्य ।

४१ पा. अ. १-२-३७ भा. वा० असावित्यन्तः अमुश्येत्यन्तः स्यान्तस्योपोत्तमं च । वा नामधेयस्य ।

वार्तिक के आधार पर रचे गये हैं ।[४०] "एक श्रुतिदूरात्सम्बुद्धौ" (स. क. ८/३/२५३) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों की अनुकृति मात्र है जिसमें भोजने एकश्रुति, एवं अनुवाद का विधान किया है । आचार्य पाणिनि ने "न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्यूदात्तः" (१/२/३७) सूत्र का विधान किया है । उसी के आधार पर भोज सूत्रांश का ग्रहण करते हैं। पाणिनि ने "देवब्रह्मणोरनुदात्तः" (१/२/३८) सूत्र रचा है । भोज "देवब्रह्मणोः स्वरितस्त्वनुदात्तः" सूत्र का विधान करते हैं । भोज का "शेष उदात्तः"(८/३/२६१) सूत्र "स्वरितस्य तूदात्तः" (१/२/३७) सूत्रांश के आधार पर रचा गया है । भोज के अन्तिम दो सूत्र (८/३/२६२-२६३) पा. सू. (१/२/३७) सूत्रस्थित भाष्यवार्तिक के आधार पर रचे गये हैं ।[४१]

इस प्रकार से भोजीय अष्टमाध्याय के तृतीय पाद के सूत्र पाणिनीय षष्ठाध्याय के प्रथम पाद से, तृतीयाध्याय के तृतीय पाद से चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद से, शान्तनवाचार्य प्रणीत फिट् सूत्रों से, अष्टमाध्याय के प्रथम पाद से, द्वितीयाध्याय के प्रथम पाद से, प्रथमाध्याय के द्वितीयपाद के भिन्न भिन्न सूत्रों से लिये गये हैं । भोज ने इन स्वर विधायक सूत्रों का एक ही पाद में समावेश किया है ।

चतुर्थपाद : सरस्वतीकण्ठाभरण के अष्टमाध्याय के चतुर्थपाद का प्रथम सूत्र "समासस्यान्तः" (८/४/१) है। भोज ने इस सूत्र को "समासान्ताः" (५/४/६८) अथवा "समासस्य" (६/१/२२३) के आधार पर रचा है । इस सूत्र द्वारा भोज अन्तोदात्त का विधान करते हैं । भोज का (८/४/२) "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" सूत्र पाणिनि का अनुकरणमात्र है पाणिनि ने इसे (६/२/१) सूत्र में रचा है । इस सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज पूर्वपद के स्वर को प्रकृतिवत् अर्थात् (यथापूर्व) बना रहता है ऐसा विधान करते हैं । पा. सू. "तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीया सप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः" (६/२/२) के आधार पर भोज ने शाब्दिक परिवर्तन के साथ "द्वितीयातृतीयातुल्यार्थोपमानकृत्यानञ्" (८/४/३) सूत्र रचा है ।

कात्यायनवार्तिकसूत्र "अव्ययेनञ्कुनिपातानाम्"[४२] के आधार पर भोज ने "कु चादयस्तत्पुरुषे" (८/४/४) सूत्र को रचा है । भोज का शीलिकामि भक्ष्याचरिभ्यो णो वर्णो ऽ नेते (८/४/५) सूत्र भा. वा० "शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो

---

४२ पा. अ. ६-२-२ भा. वा०

णः पूर्वपद प्रकृति स्वरत्वं च वक्तव्यम् (३/२/१) तथा पाणिनीय सूत्र "वर्णोवर्णेष्वनेते" के आधार पर रचा गया है । "गाधलवणयोः प्रमाणे" (८/४/६) सूत्र से (८/४/२०) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरण मात्र है। भोज ने इन सूत्रों में पूर्वपदप्रकृतिस्वर का विधान किया है । पाणिनि ने "न भूवाक्चिद्दिधिषु" (८/४/२१) सूत्र द्वारा पूर्वपदप्रकृतिस्वर का निषेध किया है, भोजदेव भी पूर्वपदप्रकृति स्वर का निषेध करते हैं किन्तु पाणिनि निषेधार्थ "न" शब्द का प्रयोग करते है जब कि भोजदेव "अ" शब्द का प्रयोग करते हैं।

"वा भुवनम्" सूत्र द्वारा दोनों आचार्य विकल्प से पूर्वपद प्रकृतिस्वर का विधान करते हैं ।

"आशंकाबाधनेदीयस्सु संभावने" (८/४/२३) सूत्र से (८/४/२५) तक के सूत्रों में पूर्वपदप्रकृतिस्वर का ही विधान किया गया है एवं उक्त तीनों सूत्र पा. सूत्रों पर ही आधारित हैं । विस्पष्टादि गणपठित शब्दों के आधार पर भोज ने "विस्पष्टविचित्र०" (८/४/२६) सूत्र रचा है जबकि पाणिनि "विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु" (६/२/२४) सूत्र का ही विधान करते हैं शेष शब्दों को वे विस्पष्टादि गण में ही पढ़ते हैं ।

पा. सू. "बह्वन्यतरस्याम्" (६/२/३०) की जगह भोज "बहु वा" (८/४/२८) सूत्र का विधान करते हैं । "दिष्टिवितस्त्योश्च" (८/४/२९) सूत्र से लेकर (८/४/३२) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । पाणिनि ने "पूगेष्वन्यतरस्याम्" (६/२/२८) सूत्र पढा है जब कि भोज "पूगेषु वा" सूत्र को रचते हैं । "महान्व्रीह्यपराह्ण०" (८/४/३४) सूत्र से लेकर "क्ते नित्यार्थे" (८/४/४२) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों पर हीं आधारित सूत्र हैं। उक्त सभी सूत्रों में पूर्वपद प्रकृतिस्वर का विधान किया गया है । सूत्रकार पाणिनि ने "कर्मधारये ऽनिष्ठा" (६/२/४६) सूत्र का विधान किया है जब कि सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज "अनिष्ठा" शब्द का विधान करते हैं। क्योंकि 'कर्मधारय' शब्द की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से अनुवृत्त होती है, अतः भोज को यहाँ विधान करने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

भोज का "द्वितीया ऽनुपसर्गे" (८/४/४४) सूत्र "अहीने द्वितीया" सूत्रस्थ वार्तिक "द्वितीया" ऽनुपसर्ग इति वक्तव्यम्" के आधार पर रचा गया है । "तृतीया कर्मणि" (८/४/४५) सूत्र से लेकर "न्यधीच" (८/४/५०) तक के सूत्रों को भोज पाणिनीय सूत्रों के आधार पर रचते हैं । पा. सू.

"ईषदन्यतरस्याम्" (६/२/५४) के आधार पर भोज "ईषद् वा" (८/४/५१) सूत्र को पढ़ते हैं । "हिण्यपरिमाणं धने" (८/४/५२) सूत्र से लेकर "गौः सादसादिसारथिषु" (८/४/५५) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । पाणिनीय सूत्र "कुरुगार्हपतरिक्त०" (६/२/४२) के आधार पर भोज ने (८/४/५६) से (८/४/५९) तक के चार सूत्रों का विधान किया है । "चतुर्थी तदर्थे" (६/२/४३) सूत्र के आधार पर भोज "चतुर्थी प्रकृतौ" (८/४/६०) सूत्र का विधान करते हैं । पा. सू. "अर्थे" (६/२/४४) के आधार पर भोज ने "अर्थे" (८/४/६१) सूत्र का विधान किया है । "अर्थे" (८/४/६१) सूत्र से लेकर (८/४/६५) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों पर आधारित हैं । पाणिनि "कार्तकौजपादयश्च" (६/२/३७) सूत्र को पढ़ते हैं उसीके आधार पर भोज गणपठित शब्दों को लेकर स्व सूत्र का विधान करते हैं । भोज ने कार्तकौजपादि गण के आधार पर (८/४/७०) तक के सूत्रों का विधान किया है । "सप्तमीसिद्धशुष्कपक्वबन्धेष्वकालात्" (८/४/७१) एवं पाणिनीय सूत्र (६/२/३२) दोनों समान सूत्र हैं । पूर्वपदप्रकृतिस्वर का प्रकरण यहाँ पूर्ण होता है ।

पाणिनीय सूत्र "आदिरुदात्तः" (६/२/६४) के आधार पर भोज "आद्युदात्तम्" सूत्र को पढ़ते हैं, यहाँ से आद्युदात्त प्रकरण का आरंभ होता है । भोज रचित "धर्म्ये अहरणे," "हारियुक्ते च" (८/४/७३-७४) सूत्र पाणिनीय सूत्र "सप्मीहरिणौ धर्म्ये ऽहरणे" तथा "युक्ते च" (६/२/६५-६६) सूत्रद्वय के आधार पर रचे गये हैं । "विभाषा ऽध्यक्षे" (६/२/६७) सूत्र की जगह भोज "वाध्यक्षे" (८/४/७५) सूत्र का विधान करते हैं । भोज रचित "पापं शिल्पिनि (८/४/७६) सूत्र से लेकर "णिनि" (८/४/८७) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों पर आधारित हैं । पाणिनि ने "अके जीविकार्थे" (६/२/७३) सूत्र का विधान किया है है जब कि भोज "अके जीविकायाः" (८/४/८१) सूत्र का विधान करते हैं, पा. सू. "उपमानंशब्दार्थप्रकृतावेव" (६/२/८०) के आधार पर भोज "शब्दार्थप्रकृतावेवोपमानम्" (८/४/८८) सूत्र का विधान करते हैं । पाणिनि ने "युक्तारोह्यादयश्च" (६/२/८१) सूत्र का विधान किया है । जब कि भोज पाणिनि ने युक्तारोह्यादि गण के आधार पर (८/४/८९ से ८/४/९३) तक के सूत्र रचते हैं ।

"पात्रेसमितादीनां च" (८/४/९४) सूत्र पाणिनीय सूत्र "पात्रेसमितादयश्च" (२/१/४८) सूत्र के आधार पर रचा गया है । "दीर्घकाशतुषभ्राष्ट्रवटंजे," "अन्त्यात् पूर्वं बह्वचः" (८/४/९५-९६) सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । "ग्रामे

ऽनिवसन्तः'' (६/२/८४) सूत्र को भोज विपर्यास क्रम से अनिवासि ग्रामे (८/४/९७) सूत्र के रुप में पढ़ते हैं । पाणिनीय "घोषादिषु च" (८/४/९८) सूत्र के आधार पर भोज घोषादि गणपठित शब्दों के आधार पर निज सूत्र का विधान करते हैं । "छात्र्यादयः शालायाम्" (८/४/८६) सूत्रस्थ गणपठित शब्दों के आधार पर भोज (८/४/९९) सूत्र का विधान करते हैं । इसी प्रकार से "प्रस्थे ऽ वृद्धमकर्क्यादीनाम्" "मालादीनां च" (६/२/८७-८८) सूत्रस्थ गणशब्दों के आधार पर भोज ने (८/४/१००-१०१) सूत्रों का विधान किया है ।

"अमहन्नवन्नगरे ऽनुदीचाम्" सूत्र दोनों आचार्य समानरुपेण पढ़ते हैं । पा. सू. "अर्मे चावर्णं द्वयच्त्र्यच्" (६/२/९०) को विपर्यास से भोज "द्वयच् त्र्यज्वावर्णमर्मे" (८/४/१०३) सूत्र को रचते हैं । 'न भूताधिक-संजीवमद्राश्मकज्जलाः" (८/४/१०४) सूत्र द्वारा भोज एवं पाणिनि दोनों आचार्य आद्युदात्त का निषेध विधान करते हैं । स. कं. का "दिवोदासवाध्यश्वादीनां छन्दसि" (८/४/१०५) सूत्र पाणिनीय (६/२/९१) सूत्रस्थ वार्तिक सूत्र "आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां छन्दस्युसंख्यानम्" के आधार पर रचा गया है ।

"अन्तः" (पा.अ.) ६/२/९२) एवं स. कं. (८/४/१०६) सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज अन्तोदात्त का विधान करते हैं । पाणिनि ने उदके ऽकेवले" (६/२/९६) सूत्र का विधान किया है जब कि भोजदेव "उदके मिश्रे" (८/४/११०) सूत्र को रचते हैं । पाणिनि ने सभायां नपुंसके "सूत्र को रचा है जबकि भोज "षष्ठीसभे" (८/४/११२) सूत्र का विधान करते हैं। "अरिष्टगौडपूर्वे च" (६/२/१००) सूत्र की जगह भोज "गोडारिष्टतत्पूर्वाणि" सूत्र को रचते हैं । भोज ने (८/४/९२) सूत्र से (८/४/११४) तक के सूत्रों में अन्तोदात्तस्वर का विधान किया है । "न हास्तिनफलकमार्देयाः" (६/२/१०१) एवं स. कं. (८/४/११५) सूत्र द्वारा पाणिनि एवं भोज अन्तोदात्त स्वर का निषेध करते हैं। "कुसूलकूपकुम्भशालं बिले" (८/४/११६) सूत्र द्वारा भोज पुनः अन्तोदात्त स्वर का विधान करते हैं। (८/४/११६) सूत्र से (८/४/१२०) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है ।

पाणिनीय "उदराश्वेषुषु" "क्षेपे" (६/२/१०७-१०८) सूत्रों में शाब्दिक परिवर्तन के साथ भोज ने "इषूदराश्वेषु क्षेपे" (८/४/१२१) सूतत्र का विधान किया है । "उत्तरपदादिः" (८/४/१२५) सूत्र द्वारा भोज उत्तरपद के आदि स्वर को उदात्त का विधान करते हैं यह अधिकार सूत्र है । भोज का "क्रतुदृशीकप्रतीकप्रतूर्तिहव्यभगाश्च" (८/४/१३२) वा० सूत्र पा. सू.

"क्रत्व्यादयश्च" एवं तत्पठित गणशब्दों के आधार पर रचा गया है । पाणिनि ने "तत्पुरुषे शालायां नपुंसके" (६/२/१२३) सूत्र का विधान किया है भोज "तत्पुरुषे शालम्" (८/४/१३७) सूत्र का विधान करते हैं ।"आदिश्चिहणादीनाम्" पा. सू. (६/२/१२५) एवं तत्पठित गणशब्दों के आधार पर भोज "चिहण चिक्कण" (८/४/१३९) सूत्र का विधान करते हैं । "चेलचीरखे०" (८/४/१४०) सूत्र से लेकर (८/४/१४७) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । आचार्य पाणिनि ने "चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठयाः" (६/२/१३४) सूत्र रचा है उसीके आधार पर भोज "चूर्णचौलचमसीचक्वन०" (८/४/१४८) सूत्र को रचते हैं भोज का उक्तसूत्र चूर्णादिगणपठित शब्दों के आधार पर रचा गया है ।

इसी प्रकार से पा. आ. (६/२/१२७ से ६/२/१२९) सूत्रों के आधार पर भोज ने "काण्डचीर पललसूपशाकुलानि" (८/४/१४९) सूत्र रचा है, जिसमें वे आदिस्वर को उदात्तविधान करते हैं । भोजीय (८/४/१५० से १५२) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रो का अनुकरणमात्र है । "उत्तरपदादिः" (८/४१२५) से "कुण्डं वनम्" (८/४/१५०) तक के सूत्र उदात्त स्वर का विधान करते हैं ।"प्रकृत्या भागालम्" (८/४/१५१) से (८/४/१५६) तक के सूत्र प्रकृतिभाव का विधान करते हैं ।"उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्" (६/२/१४०) सूत्र के आधार पर भोज "वनस्पतिबृहस्पति०" (८/४/१५३) सूत्र को रचते हैं जिसमें उन्होंने वनस्पत्यादि गणपठित शब्दों का विधान किया है ।

भोज का (८/४/१५७) सूत्र (पा. अ. ६/२/१३९) भाष्यस्थ प्रदीप-उद्योत व्याख्यान के आधार पर रचा गया है ।"थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्" (८/४/१५८) सूत्र द्वारा भोज अन्तोदात्त का विधान करते हैं जिसकी अनुवृत्ति "उत्पुच्छे वा" (८/४/२२३) सूत्रों तक अनुवृत्त होती है । पा. सू. "सूपमानात् क्तः" (६/२/१४५) को भोज विपर्यासक्रम से पढ़ते हैं । आचार्य पाणिनि संज्ञायामनाचितादीनाम्" (६/२/१४६) सूत्र द्वारा अन्तोदात्त स्वर का विधान करते हैं भोज आचितादिगपठित शब्दों के आधार पर स्वसूत्र को रचते हैं । भोज का "गोस्संहितायाः" (८/४/१६१) सूत्र पा. सू. "संज्ञायामनाचितादीनाम्" (६/२/१४६) स्थित "संहिता ऽ गवि" वार्तिक सूत्र के आधार पर रचा गया है।

सरस्वतीकण्ठाभरणकार का (८/४/१६२) सूत्र पाणिनीय सूत्र का अनुकरणमात्र है । पा. सू. "प्रवृध्दादीनां च" (६/२/१४७) एवं उस सूत्र पर दिये उदाहरणों के आधार पर भोज ने "प्रवृध्दस्य यानवृषलयोः प्रयुक्तस्य सक्तुषु" (८/४/१६३) सूत्र को रचा है । भोज के अन्य दो सूत्र भी (८/४/१६४-१६५)

प्रवृध्दादि गणपठित शब्दों के आधार पर ही रचे गये हैं ।

भोज का "इत्थंभूतेन कृते" (८/४/१६६) सूत्र पा. सू. (६/२/१४९) का अनुकरणमात्र है । भोज के (८/४/१६७ से ८/४/१७१) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों की अनुकृतिमात्र है ।

"नञोगुणप्रतिषेधेसम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः" (६/२/१५५) सूत्र को भोज किंचित् परिवर्तन के साथ (८/४/१७२) सूत्र में पढ़ते हैं । पाणिनि ने "कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च" (६/२/१६०) सूत्र पढ़ा है । उसी चार्वादि गण के आधार पर भोज (८/४/१७३) से ८/४/१७९) तक के सात सूत्रों को पढ़ते हैं। पाणिनि "विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु" (६/२/१६१) सूत्र को रचते हैं भोज स्व सूत्र में शब्द एवं विभिक्ति परिवर्तन करके "तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिनि वा" (८/४/१८०) सूत्र को पढ़ते हैं । भोज के (८/४/१८१ से १८३) तक के सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है ।

पाणिनि ने "संज्ञायांमित्राजिनयोः" (६/२/१६५) सूत्र पढा है भोज पाणिनीय सूत्रांश के आधार पर स्वसूत्र को रचते हैं । भोज का अगला सूत्र "मित्रा ऽ नृषौ" (८/४/१८५) (६/२/१६५) सूत्र पर पठित कात्यायन वार्तिक सूत्र "ऋक्प्रतिषेधो ऽ मित्रे" के आधार पर रचा गया है । भोज (८/४/१८६) से (८/४/१९१) तक के षट् सूत्रों को पाणिनीय सूत्रों के आधार पर ही पढ़ते हैं । पाणिनि ने "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्द्धसु बहुव्रीहौ" (६/२/१९७) सूत्र को पढा है भोज के सूत्र में बहुव्रीहौ शब्द की अनुवृत्ति (८/४/१८१) सूत्र से अनुवृत्त होती है अतः यहाँ वे "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धानः" (८/४/१९२) सूत्र को ही पढ़ते हैं ।

पा. सू. "परादिश्छन्दसि बहुलम्" (६/२/१९९) सूत्र को भोज विपर्यास करके "छन्दस्यादिश्च" (८/४/१९४) सूत्र का विधान करते हैं । भोज का अगला सूत्र "त्रिचक्रत्रिबन्धुत्रिवृतादीनाम्" (८/४/१९५) सूत्र पा. सू. (६/२/१९९) स्थित भाष्यवार्तिक के आधार पर रचा गया है । स. कण्ठा. कार के (८/४/१९६ से १९८) तक के तीन सूत्र पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है। भोज ने "कण्वेकाचिबहोर्नञ् समानाधिकरणे" (८/४/१९९) सूत्र का विधान पा. सू. "बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि" (६/२/१०५) सूत्र में कुछ परिवर्तन करके पढ़ा है । उसके बाद भोजने अगला सूत्र "न गुणाक्षरच्छंदोमान०" (८/४/२००) पा. सू. (६/२/१७६) सूत्र पठित आकृतिगण के आधार पर रचा है । इस सूत्र

४३ पा. अ. (६-२-१८०, १८१) "अन्तः" "न निविभ्याम्" ।

में भोज ने अन्तोदात्त स्वर का निषेध किया है । भोज के "उपसर्गात्स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु" (८/४/२०१) तथा वनं समासे (८/४/२०२) दोनों सूत्र पाणिनि के सूत्रों पर आधारित हैं । भोज का "अन्तरश्च" सूत्र पा. सू. "अन्तः" के आधार पर रचा गया है । भोज का "अनिविभ्यामन्तः" (८/४/२०४) सूत्र पाणिनीय सूत्र द्वय के आधार पर रचा गया है । उसके बाद के दोनों सूत्र (८/४/२०५-२०६) पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । भोजने "उदकोपलोलपमशक" (८/४/२०७) सूत्र को "निरुदकादीनि च" (६/२/१८४) सूत्रस्थ गणपठित शब्दों के आधार पर पढ़ा है ।

भोजदेव का "उदुपाभ्यां चा ऽ जिनम्" (८/४/२०८) सूत्र काशिकावृत्ति में उदाहृत उदाहरणों के आधार पर रचा गया है । [४४] इसी प्रकार से भोज के (८/४/२०९-२१०) दोनों सूत्र पा. सू. "निरुदकादीनि च" सूत्रस्थ वार्तिक सूत्र एवं उदाहरण के आधार पर रचे गये हैं । [४५] भोज के "अभेर्मुखम्" (८/४/२११) से "नेरनिधाने" (८/४/२१८) तक के पाणिनीय सूत्रों का अनुकरणमात्र है । पा. सू. "प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे" (६/२/१९३) सूत्रस्थ गणपठित शब्दों के आधार पर भोज ने "प्रतेरंशुजनराजन्" (८/४/२१९) सूत्र का विधान किया है । इसी प्रकार से भोज का (८/४/२२०) सूत्र भी गणपठित शब्दों के आधार पर रचा गया है । [४६] इस सूत्र हेतु जहाँ पाणिनि एक ही सूत्र का विधान करते हैं तथा शेष शब्दों को गण के अनतर्गत पढ़ते हैं वहीं भोज दो सूत्रों का विधान करते हैं ।

पा. सू. "उपाद्द्व्यजजिनमगौरादयः" (६/२/१९४) एवं तत् सूत्रस्थ अगौरादिगणपठित शब्दों के आधार पर भोज ने (८/४/२२१) सूत्र को रचा है । भोज "उत्पुच्छेवा" (८/४/२२३) सूत्र द्वारा विकल्प से अन्तोदात्तत्व विधान करते हैं । पाणिनि ने इस हेतु "विभाषोत्पुच्छे" (६/२/१९६) सूत्र रचा है। यहाँ भोज का अन्तोदात्त प्रकरण समाप्त होता है ।

भोज का नलोपः (सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति) पूर्वत्रासिद्धः (८/४/२२४) सूत्र पाणिनीय सूत्र त्रय के आधार पर रचा गया है । [४७] इस सूत्र में भोज

---

४४ पा. अ. (६-२-१८४ निरुदकादीनिच का. वृत्ति०

४५ पा. अ. ६-२-१८४ वा. सू. परेर्हस्तपादकेशकर्षाः ।

४६ पा. अ. ६-२-१९३

४७ पा. अ. ८-२-१, ८-२-२, ८२-७.

न लोप असिद्ध होता है इसका प्रावधान करते हैं ।

"वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः" (८/४/२२५) सूत्र द्वारा भोज प्लुत एवं उदात्त का विधान करते हैं । पाणिनि इसे (८/२/८२) में पढ़ते हैं ।

तत्पश्चात् पाणिनि "अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः" (८/२/१००) सूत्र को रचते हैं भोज कुछ परिवर्तन के साथ "प्रश्नान्ताभिपूजविदास्वनुदात्तः" (८/४/२२६) सूत्र को पढ़ते हैं । इस सूत्र द्वारा उन्होंने अनुदात्त प्लुत का विधान किया है । भोज का अगला सूत्र "असूयासंमतिकोपकुत्सनेषु" (८/४/२२७) कात्यायनरचित वार्तिकसूत्र के आधार पर रचा है ।[४८] स्वरितविधान हेतु पाणिनि ने "क्षियाशीःप्रैषेषु तिडकाङ्क्षम्" (८/२/१०४) सूत्र रचा है भोज किंचित् परिवर्तन के साथ इस सूत्र को पढ़ते हैं, भोज के सूत्र में स्वरित शब्द की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रों से अनुवृत्त नहीं होती अतः वे स्वरित शब्द का इस सूत्र में पठन करते हैं ।[४९]

पा. सू. 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः" (८/२/५) सूत्र में परिवर्तन करके भोज ने "उदात्तादनुदात्त (स्य उदात्तः) सूत्र को पढ़ा है । भोज का "उदात्तस्वरितपरयोश्च यणः" (८/४/२३०) सूत्र पाणिनीय सूत्र उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितो ऽनुदात्तस्य" (८/२/६) के आधार रचा गया है । स्वरितो वा ऽनुदात्ते पदादौ (८/२/६) के आधार पर भोज परिवर्तन के साथ "एकादेशः पदादौ वोदात्तेन वाक्ये" (८/४/२३१) सूत्र को रचते हैं । इस सूत्र द्वारा भोज स्वरित एकादेश का विधान करते हैं। भोज का अन्तिम सूत्र "स्वरितस्य एकश्रुतौ सिदधिः" (८/४/२३२) मौलिक सूत्र है इस सूत्र हेतु पाणिनीय अष्टाध्यायी में कुछ भी विधान किया हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता ।

---

४८ पा. अ. ८-२-१०३ वा सू. असूयादिषु वा वचनं कर्तव्यम् ।

४९ स. कं. ८-४-२२८ क्षियाशीः प्रैषेत्याख्यानेषु तिडकाङ्क्षस्य स्वरितः ।

प्रकरण - ७

भोजदेव एवं पाणिनि के वैदिक सूत्रों में उदाहृत वैदिक प्रयोग

पा०.सू० अभ्युत्सादयां प्रजनयाञ्चिकयांरमयामक.....छन्दसि (३/१/४२)
भो.सू० अभ्युत्सादयां प्रजनयाञ्चिकयांरमयामकः (८/१/१२)
पावयां क्रियाद्विदामकः (८/१/१३)
उदा० अभ्युत्सादयामकः प्रजनयामकः । चिकयामकः । रमयामकः
पावयांक्रियात् । विदामकः ।
पा०.सू० नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः (३/१/५१)
भो.सू० नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः (८/१/१६)
उदा० काममूनयी : । मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् । काममैलयीः । मैनमर्द्दयीत् ।
पा०.सू० छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्य.....पृडानि (३/१/१२३)
भो.सू० निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्य..... पृडानि (८/१/२४)
उदा० निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः । प्रणीयः । उन्नीयः । मर्यः ।
स्तर्या । ध्वर्यः । खन्यः । खान्यः । देवयज्या । आपृच्छयः ।
प्रतिषीव्यः । ब्रह्मवाद्यः। भाव्यः । स्ताव्यः । उपचाय्यपृडम् ।
पा०.सू० दृशे विख्ये च (३/४/११)
भो.सू० दृशे विख्ये (८/१/५३)
उदा० दृशे विश्वाय सूर्यम् । विख्ये त्वा हरामि ।
पा०.सू० प्रयै रोहिष्यै अवथिष्यै । (३/४/१०)
भो.सू० प्रयै रोहिष्यै अवथिष्यै (८/१/५४)
उदा० प्रयैः देवेभ्यः अपामोषधीनां रोहिष्यै । अवथिष्यै ।
पा०.सू० सृपितृदोः कसुन् (३/४/१७)
भो.सू० सृपितृदोः कसुन् (८/१/५८)
उदा० पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जर्तृभ्य आतृदः ।
पा०.सू० यजध्वैनमिति च (७/१/४३)
भो.सू० यजध्वैनम् (८/१/६८)
उदा० यजध्वैनं प्रियमेधाः ।
पा०.सू० प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने (२/३/६१)
भो.सू० ब्रूहि प्रेष्ययोरप्रस्थिते हविषि षष्ठी देवता सम्प्रदाने (८/१/८१)
उदा० अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसो ऽ नुब्रूहि ।

अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेउष्य ।

पा०.सू० छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् (१/२/६१)

भो.सू० पुनर्वस्वोरेकवचनं वा (८/१/८७)

उदा० पुनर्वसुर्नक्षत्रमदितिर्देवता । पुनर्वसूनक्षत्रमदितिर्देवता ।

पा०.सू० विशाखयोश्च (१/२/६२)

भो.सू० विशाखयोश्च (८/१/८८)

उदा० विशाखा नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता । विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता ।

पा०.सू० दीर्घजिह्वी चच्छन्दसी (४/१/५९)

भो.सू० दीर्घजिह्वी (८/१/९७)

उदा० दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट् ।

पा०.सू० कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि (४/१/७१)

भो.सू० कद्रुकमण्डलुगुल्गुलुमधुजतुपतयालुभ्य ऊङ् (८/१/१००)

उदा० कद्रूश्च वै सुपर्णीच । मास्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् ।
गुल्गुलूः । मधूः । जतुः । पतयालूः ।

पा०.सू० समयस्तदस्य प्राप्तम् । छन्दसि घस् (५/१/१०४,१०६)

भो.सू० तदस्य प्राप्तमृत्वियः । (८/१/१४६)

उदा० अयं ते योनिर्ऋत्वियः । होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ।

पा०.सू० छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि (५/२/८९)

भो.सू० परिपन्थिपरिणौ पर्यवस्थातरि (८/१/१५१)

उदा० मा त्वा परिपरिणो विदन् । मा त्वा परिपन्थिनो विदन् ।

पा०.सू० पश्च पश्चा चच्छन्दसि (५/३/३३)

भो.सू० पश्च पश्चा पश्चादर्थे (८/१/१५८)

उदा० परो व्यासो जायते पश्च सिंहः पश्चा सिंहः ।

पा०.सू० अपस्पृधेथामानृचुरानृहु.....शीर्ताः (६/१/३६)

भो.सू० अपस्पृधेथामानृचुरानृहुश्चिच्युषे....शीर्ताः (८/२/७)

उदा० इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम् । यज्ञा अर्कमानृचुः न वसून्यानृहुः ।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे । यस्तित्याज रुचिविद सरवायम् ।
श्रातास्त इन्द्रसोमाः । सोमो गौरी अधिश्चिश्रतः । श्रिता नो गृहाः ।
तामाशीरा दुहन्ति । आशीर्त्त ऊर्ज्जम् । क्षीरैर्मध्यत आशीर्त्तः

पा०.सू० शीर्षंश्छन्दसि (६/१/६०)

भो.सू० शिरसः शीर्षे (८/२/९)

उदा० शीर्ष्णा हि तत्र सोमं क्रीतं हरन्ति । यत्ते शीर्ष्णो दौ र्भाग्यम् ।

पा०.सू० भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि (६/१/८३)
भो.सू० ह्रदय्या आपः । (८/२/१४)
उदा० हृदय्याः आपः । नमो ह्रदय्याय ।
पा०.सू० भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि (६/१/८३)
भो.सू० भय्यप्रवय्ये (८/२/१५)
उदा० भय्यं किलासीत् । वत्सरी प्रवय्या ।
पा०.सू० अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रताय० (६/१/११६)
भो.सू० अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रताय० (८/२/२०)
उदा० अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् । मित्रमहो अवद्यात् ।
मा शिवासो अवक्रमुः । ते नो अव्रताः । शतधारो अयं मणिः ।
तेनो अवन्तु पितरः । कुशिकासो अवस्यवः ।
पा०.सू० यजुष्युरः (६/१/११७)
भो.सू० उरो यजुषि (८/२/२१)
उदा० उरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन
पा०.सू० आपो जुषाणो वृष्णोवर्षिष्ठे ऽ म्बे ऽम्बाले ऽम्बिलकेपूर्वे (६/१/११८)
भो.सू० आपो जुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठे ॥ (८/२/२२)
अम्बे अम्बाले अम्बिके पूर्वे (८/२/२३)
उदा० आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु । जुषाणो अप्तुराज्यस्य ।
वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिभिः । वर्षिष्ठे अधिनाके ।
अम्बे । अम्बाले । अम्बिके ।
पा०.सू० अङ्ग इत्यादौ च (६/१/११९)
भो.सू० अङ्गइत्यादौ च (८/२/२४)
उदा० ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत् । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत्।
पा०.सू० अवपथासि च (६/१/१२१)
भो.सू० अवपथासि च (८/२/२६)
उदा० त्रीरुद्रेभ्यो अवपथाः । यद्रुद्रेभ्यो ऽवपथाः ।
पा०.सू० इको सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (६/१/१२७) वा. सू०
भो.सू० ईषा अक्षादयः (८/२/२७)
उदा० ईषा अक्षः । का ईमरे पिशङ्गिला ।
पा०.सू० पितरामातरा च च्छन्दसि (६/३/३३)
भो.सू० पितरामातरा द्वन्द्वे (८/२/३१)

उदा० आ मा गन्तां पितरामातरा चा मा सोमो अमृतत्वाय गम्यात् ।

पा०.सू० जनिता मन्त्रे (६/४/५३)

भो.सू० जनिता मन्त्रे (८/२/४८)

उदा० यो नः पिता जनिता ।

पा०.सू० शमिता यज्ञे

भो.सू० शमिता यज्ञे

उदा० शतं हविः शमिता

पा०.सू० ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानिच्छन्दसि (६/४/१७५)

भो.सू० ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि (८/२/६७)

उदा० ऋतौ भवं ऋत्व्यम् । वास्तौ भवं वास्त्व्यम् । वस्तुनि भवो वास्त्वः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । हिरण्ययम् ।

पा०.सू० इष्टीनमिति च (७/१/४८)

भो.सू० इष्टीनं पीत्वीनमिति च (८/२/७०)

उदा० इष्टीनं देवान् । पीत्वीनम्।

पा०.सू० स्नात्व्यादयश्च (७/१/४९)

भो.सू० स्नात्व्यादयश्च (८/२/७१)

उदा० स्नात्वी मलादिव ।

पा०.सू० अपरिह्वृताश्च (७/२/३२)

भो.सू० अपरिह्वृताश्च (८/२/८०)

उदा० अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।

पा०.सू० सोमे ह्वरितः (७/२/३३)

भो.सू० सोमे ह्वरितः (८/२/८९)

उदा० मानः सोमो ह्वरितः । विह्वरितस्त्वम् ।

पा०.सू० ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभित..........(७/२/३४)

भो.सू० ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभित चत्त..........(८/२/८२)

उदा० ग्रसितं वा एतत्सोमस्य । विष्कभिते अजरे ।
ये स्वः स्तभितम् । सत्येनोत्तभिता भूमिः ।
चत्ता वर्षेण विद्युत् । उत्तानाया वृद्यं यद् विकस्तम् ।
एकस्त्वष्टुश्वस्याविशस्ता । उत शंस्ता सुविप्रः ।
प्रशास्ता । तरुतारं रथानाम् । तरूतारम् ।
वरुतारम् । वरूतारम् रथानाम् अग्निरुज्जवलिति ।

स्तोकं क्षरिति । स्तोकं क्षमिति । यः सोमं वमिति । अभ्यमिति वरुणः ।

पा०.सू० बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे (६/२/६४)

भो.सू० बभूथाततन्थजगृम्भववर्थाः (८/२/८३)

उदा० त्वं हि होता प्रथमो बभूथ । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ ।
जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्रहस्तम् । ववर्थ त्वं हि ज्योतिषा ।

पा०.सू० सनिंससनिवांसम् (७/२/६९)

भो.सू० सनिंस सनिवांसम् (८/२/८४)

उदा० आजिं त्वाग्नेससृजवाँसं सनिंससनिवांसम् ।

पा०.सू० सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च (७/४/४५)

भो.सू० सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयाः (८/२/१०२)

उदा० गर्भं माता सुधितम् । वसुधितमग्नौ जुहोति ।
नेमधिता बाधन्ते । धिष्व सोमम् । धिषीय ।

पा०.सू० दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षि......गनीगन्तीतिच (७/४/६५)

भो.सू० दाधर्तिदर्धर्तिबोभूतुतेतिक्ते ऽलर्ष्यापनीफणत् (८/२/१०५)
संसनिष्यदत्करीक्रत्कनिक्रद्०.......गनीगन्तीति . (८/२/१०६)

उदा० दाधर्ति । दर्धर्ति । बोभूतु । तेतिक्ते । अलर्षि ।
आपनीफणत् । संसनिष्यदत् करिक्रदत् । कनिक्रदत् ।
भरिभ्रद् । दविध्वतः । दविद्युतत् । तरित्रत । सरीसृपतम् ।
वरिवृजत् । मर्मृज्या । आगनीगन्ति ।

पा०.सू० ससूवेति निगमे (७/४/७४)

भो.सू० ससूव (८/२/१०७)

उदा० ससूव स्थविरं विपश्चिताम् ।

पा०.सू० नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि (८/२/६१)

भो.सू० नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूसूर्त्तगूर्तानि (८/२/११६)

उदा० नसत्तमञ्जसा । निषत्तः। अनुत्तमा ते मघवन् । प्रतूर्तं वाजिनम् ।
सूर्ता
गावः गूर्ताः अमृतस्य

पा०.सू० अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च (८/२/६७)

भो.सू० अवयाश्वेतवा ॥ (८/२/११७)
पुरोडाः उक्थशाश्च (८/२/११८)

उदा० हे अवयाः । हे श्वेतवाः । हे पुरोडाः । हे उक्थशाः ।

पा०.सू० यचि भम् (१/४/१८) वा. सू०
अयस्मयादिनिच्छन्दसि (१/४/२०)
भो.सू० नभस्वदंगिरस्वन (८/२/१२१)
भो.सू० मनुष्वद्वृषणवसुवृषणश्वश्व (८/२/१२२)
अयस्मयसत्रक्क्वतादयः (८/२/१२३)
उदा० नभ इव नभस्वत् । अङ्गिर इव अङ्गिरस्वत् ।
मनुरिव मनुष्वत् । वषण्वसुः । वृषणश्वस्य मेने ।
अयस्मयानि पात्राणि । अयस्मयं वर्णः । स सुष्टुभा सत्रक्क्वता गणेन।
पा०.सू० उञ्छादीनां च (८/१/१६०) (गणपठितशब्द)
भो.सू० उञ्छम्लेच्छजञ्जल्पभक्षमन्थ........भागयुगानां च (८/३/१६)
उदा० उञ्छः । म्लेच्छः । जञ्जः । जल्पः । भक्षः । मन्थः । लेहः ।
देहः । खेलः । खरः । भाजः । युगः ।
पा०.सू० उञ्छादीनां च (६/१/१६०) वार्तिक सूत्र
भो.सू० वेदवेगवेष्टबन्धानां करणे (८/३/१७)
उदा० वेदः । वेगः । वेष्टः । बन्धः ।
पा०.सू० साम्ब तापौ भावगर्हायाम् (वा. सू० ६/१/१६०)
भो.सू० साम्बतापयो र्भावगर्हायाम् (८/३/१८)
उदा० साम्बः । तापः ।
पा०.सू० उञ्छादीनां च (६/१/१६०)(गणपठितशब्द)
भो.सू० वधव्यधजपाः (८/३/१९)
उदा० वधः । व्यधः । जपः ।
पा०.सू० गरो दूष्येऽबन्तः । श्वभ्रे दरः (६/१/१६०)
भो.सू० गरदरौ दूष्यश्वभ्रयोः (८/३/२०)
उदा० गराः । दरः ।
पा०.सू० क्षयो निवासे (६/१/२०१)
भो.सू० क्षयो निवासे (८/३/८१)
उदा० क्षयः ।
पा०.सू० जयः करणम् (६/१/१०२)
भो.सू० जयः करणे (८/३/८२)
उदा० जयन्ति तेनेति जयः । जयो ऽश्वः ।
पा०.सू० वृषादीनां च (६/१/२०३) गणपठित शब्द

भो.सू०	वृषजनज्वरग्रहहयगय०........सूदानाम् (८/३/८३)
उदा०	वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । नयः । तयः । अंशः । दवः । वेदः । सूदः ।
पा०.सू०	वृषादीनां च (६/१/२०३) गणपठित शब्द
भो.सू०	गुहाराधाराकाराधा.......पात्रियादीनाम् (८/३/८४)
उदा०	गुहाः । आरा । धारा । कारा । धातिः । मन्त्रः । कामः । यामः। कल्पः। पादः । वहः । महाराजिकः । दाण्डाजिनिः । काण्डीरः । पात्रियः।
पा०.सू०	कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजर........दासीभाराणां च (६/२/४२)
भो.सू०	रिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लील०........दासीभाराणां च (८/४/५८)
उदा०	रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः । असूता जरती असूतजरती । अश्लीला दृढरुपा अश्लीलदृढरुपा पारे वडवा एव पारेवडवा । तैतिलानां कद्रूः तैतिलकद्रूः । दास्या भारो दासीभारः ।
पा०.सू०	पण्यकम्बलः संज्ञायाम् (६/२/४२)
भो.सू०	पण्यकम्बलः संज्ञायाम् (८/४/५९)
उदा०	यो हि पणितव्यः कम्बलः पण्यकम्बलः ।
पा०.सू०	उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् (६/२/१४०)
भो.सू०	वनस्पतिबृहस्पतिशचीपति.......युगपत् (८/४/१५३)शचिपतिः ।
उदा०	वनस्पतिः । बृहतां पतिः बृहस्पतिः । शचिपतिः । तन्वानपात् तनूनपात्। नराशंसः । शुन इव शेपो ऽस्येति शुनः शेपः । शण्डामर्कौ । तुष्णावरुत्री। बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः ।
पा०.सू०	प्रवृध्दादीनां च (६/२/१४७)
भो.सू०	खट्वारुढकविशस्त........निष्कृतानां च (८/४/१६५)
उदा०	खट्वारुढः । कविशस्तः . पुनरुत्स्यूतं वासो देयम् । पुनर्निष्कृतो रथः।
पा०.सू०	निरुदकादीनि च (६/२/१८४)
भो.सू०	दुस्तरिपादयश्च (८/४/२१०)
उदा०	दुस्तरीपः । निस्तरीपः ।

प्रकरण-८

भोजदेव के वैदिक व्याकरण में प्रयुक्त वैदिक उदाहरणों की सूचि

अगन्म तमसस्पारं	8.2.140
अग्नय एवैनां जुष्टं निर्वपति तै ब्रा. ३.२.४.६	8.3.91
अग्नये छागस्य हविषे वपाया मेदासो ऽनुब्रूहि	8.1.81
अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रे३ष्य	8.1.81
अग्नाविष्णु सजोषसा तै.सं. ४.७.१.१	8.3.257
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः	8.1.46
अग्निमीळे पुरो हितम्	8.3.256
अग्निर्मूर्ध्दा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतां सि जिन्वतों ३म् ।	8.3.254
अग्निरथोषधीरन्तगता दहति (तै. सं. १.५.९.१)	8.4.44
अग्निवत्युपदधाति (तै. ब्रा. ३.२.७.१)	8.3.49
अग्निवानसानि (तै. सं. ५.५.२.१२)	8.3.49
अग्निः शान्तिः (तै. आ. ४.४२.५)	8.3.84
अग्ने त्वं नो अन्तमः (तै. सं. १.५.५.२)	8.3.77
अग्नेस्तूषाधानं वायोर्वातपानम् (तै. सं. ६.१.१.३)	8.4.167
अग्ने पुरो रुरोजिथ (तै. सं. २.६.११.४)	8.3.75
अग्ने विश्वान्यर्य आ (तै. सं. २.६.११.४)	8.3.126
अर्जुनाय स्वाहा (तै. ब्रा. ३.१०.७.१)	8.3.141
अथ ब्राह्मणो ऽनाशीर्केण (तै. सं. १.६.१०.४)	8.4.197
अथो यद्वदेश्च वेदिश्च भवतः (तै. ब्रा. ३.३.९.१०)	8.3.60
अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः	8.1.1
अधि पतिः (तै. सं. ७/४/१६.१)	8.4.4
अधीलोधकर्णाः (तै. सं. ५.६.१६.१)	8.4.127
अध्यस्यां मामकी तनू	8.1.3
अध्वर्तव्या वै (तै. सं. ३.२.२.३)	8.4.173
अनुख्यात्यै (तै. सं. २.५.११.३)	8.4.47

अनुकाशमेवैतानि (तै. सं. ५.४.१.३)	.8.4.215
अनूराधाः (तै. सं. ४.४.१०.२)	8.3.128
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः	8.1.72
अन्तर्हृदा मनसा (तै. स. ४/२ १.६)	8.3.41
अन्यश्चनाभिगच्छति (तै. ब्रा. २.५.५.७)	8.3.203
अन्वेतवा उ (तै. सं. १.४.४५.१)	8.4.48
अपथात् पन्थामपिनयति (तै. सं. २.२.२.१)	8.4.4
अपो अश्नाति (तै. सं. १.६.७.४)	8.3.41
अपां रेतांसि जिन्वतो ३ म्	8.2.129
अप्राणाय स्वाहा (तै. सं. ७.५.१२.१)	8.4.196
अब्राह्मणश्च प्रश्नमेयाताम् (तै. सं. २.५.११.१.)	8.4.4
अभिजित्यै (तै. सं. २.६.१.४)	8.4.47
अभिभवितुम् (तै. सं. ६.४.१०.१)	8.4.47
अभि भ्रातृव्यान् (तै. ब्रा. २.२.७.३)	8.3.190
अभीषुणः सखीनाम्	8.2.42 8.2.107
अमित्र मर्दय (तै. सं. २.६.११..३)	8.4.130
अमुखाय स्वाहा (तै. सं. ७.५.१२.१)	8.4.196
अम्रियस्येव घोषाः (ऋ. सं. १०.६९.१)	8.1.117
अमृतं हिरण्यममृत एव (तै. सं. ५.२.७.२)	8.4.130
अयस्मयानि पात्राणि	8.2.123
अयुतं च नियुतं च (तै. सं. ४.४.१३.३)	8.3.165
अयं सो अग्निः (तै. सं. ४/२/४/२, ५/२/३/८)	8.2.25
अयं सो अध्वरः	8.2.25
अरुण बभ्रुः (तै. सं. ५.३.११.१)	8.4.4
अवभृथः (तै. सं. १/७/५/३)	8.3.115
अव सभाँ रुन्धे प्रसहस्त्रं पशूनाप्नोति (तै. सं. १.७.६.७)	8.3.237
अब स्थिरा तनुहि यातुजूनान् (ऋ. सं. ४/४/५)	8.2.61
अर्वाञ्चौ त उभौ बाहू (तै. ब्रा. २.४.२.२)	8.4.49
अशीत्यै स्वाहा (तै. सं. ७.२.११.१)	8.3.115
अश्याम द्युम्नमजराजरन्ते (तै. सं. १.३.१४.३)	8.4.130

यद वस्ते तद्दक्षिणा (तै.. सं. १.८.७.२)	8.3.60
यन्नासहन्त तदषाधा (तै. ब्रा. १,५,२,८)	8.3.177
यन्न्यञ्चं चिनुयात् (तै. सं. ५.५.३.२)	8.4.50
यशस्युः (अ. सं. ४.११.६)	8.1.40
यस्ता विश्वानि चिच्युषे (ऋ. सं. ४.३.२२)	8.2.7
यस्तित्याज रुचिविद् सखायम् (ऋ सं. १०.७१.६)	8.2.7
यस्य छायाममृतम्	8.3.113
यस्य वै द्वौपुण्यौ गृहे वसतः	8.3.111
यस्य क्षयाय जिन्वथ (तै. सं. ४.१.५.१)	8.3.81
यत्र यत्र कामयत (तै. सं. ४.६.६.२)	8.3.203
यज्ञं वै देवा अदुह्रन् (तै. सं. १.७.१.१)	8.3.238
या दतो धावति (तै. सं. २.५.१.७)	8.3.41
यात्र निर्वपति यदनुपदिशति (तै. सं. ६.३.१.६)	8.3.247
या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति	8.1.25
याभिर्ददासि (तै.सं. ३.३.११.५)	8.3.66
रयामरण्ये (तै.सं. २.५.१.६)	8.3.176
यामो हि सः (तै.सं. ६.३.१.६)	8.3.84
यावच्च सप तसिन्धवो वितस्थुः (तै.सं. ३.२.६.१)	8.3.213
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणायाः	8.1.1
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः (तै.सं. ३.४.१०.१)	8.3.201
ये ते पन्थानः (तै.सं. ७.५.२४.१)	8.3.78
ये देवा मनोजाताः (तै.सं. १.२.३.१)	8.4.191
येन स्वः स्तभितं येन नाकः	8.2.82
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ	8.2.83
ये पूर्वासो य उ परास (ऋ.सं. १०.१५.२)	8.1.77
यो ऽ ग्निहोत्रं जुहोति (तै.ब्रा. २.१.८.३)	8.3.68
यो वै देवान् देवयशसेर्नापयाति मनुष्यान् (तै.सं. ३.१.९.१)	8.3.236
यो ऽ स्य स्वोऽग्निः (तै. सं. ५.७.९.१)	8.3.258
यः सप्तसिन्धून् (तै.ब्रा. २.८.३.८)	8.3.170

प्रकरण - ९

भोजदेव के वैदिक व्याकरण की विशेषता

इस अन्तिम प्रकरण में हमारा शोधग्रन्थ पूर्ण करने से पूर्व भोजदेव के वैदिक व्याकरण की विशेषताओं के प्रति दृष्टिपात करना ही हमारा उद्देश्य है। जैसा कि हम पूर्व प्रकरणों में कह चुके हैं कि पाणिनि से पूर्व जितने भी व्याकरण रचे गये थे उनमें से अधिकांश व्याकरण वैदिक साहित्य से सम्बंध रखते थे । प्राचीन काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, अतः वैदिक एवं लौकिक इस प्रकार का भेद बहुत ही कम था । अधिकांश शब्द वेद में एवं लोक में समानरुपेण प्रयुक्त होते थे। कालक्रम से इसमें अन्तर बढने लगा । भोज के समय तक संस्कृत बोलचाल की भाषा रही होगी यह बात भोज के साथ जुड़ी हुई कठियारे की किंवदन्ती "भारं न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते" से सिद्ध होती है । पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में लौकिक एवं वैदिक शब्दानुशासन का पठन किया है ।

जैसा कि पूर्वप्रकरणों में हम देख चूके हैं कि वैदिक व्याकरण का मूल वेदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में, प्रातिशाख्यों में, कात्यायन तथा आपिशलि के व्याकरणों में, यास्काचार्य के निघण्टु एवं निरुक्त में देखा जा सकता है । पाणिनि एवं उनके उत्तरवर्ती आचार्य भी इसमें अपवादरुप नहीं हैं ।

पाणिनि ने वैदिक व्याकरण हेतु अष्टाध्यायी में कोई स्वतन्त्र प्रावधान नहीं किया प्रत्युत सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में जहाँ जहाँ जिस जिस प्रकरण में उन्हें वैदिक सूत्रों के पठन की आवश्यकता प्रतीत हुई वहाँ उन्होंने छन्दसि मन्त्रे, ऋचि, यजुषि आदि पदों का प्रयोग करके उसका निर्देश किया है । पाणिनि ने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में वैदिक सूत्रों का निर्देश 270 के करीब सूत्रों द्वारा किया है । जिनमें से 225 के करीब सूत्र सीधे उल्लेख द्वारा या अनुवृत्ति द्वारा वैदिक कार्यो का विधान करते हैं शेष सूत्रों का परोक्षरुपेण वैदिक कार्यों से एवं स्वर से सम्बन्ध है ।

यहाँ हम वैदिक व्याकरण से सम्बद्ध पाणिनि सूत्रों का निर्देश करना उचित समझते हैं सो द्रष्टव्य है-

१/२/२९, १-२-३०, १-२-३१, १-२-३३, १-२-३४, १-२-३५, १-२-३६, १-२-३७, १-२-३८, १-२-३९, १-२-४०, १-२-६१, १-२-६२, १-४-९, १-४-२० १-४-८१, १-४-८२, १-४-१०९,

२-३-३, २-३-६०, २-३-६१, २-३-६२, २-३-६३, २-४-२८, २-४-३९, २-४-७३, २-४-७६, २-४-८०,

३-१-३४, ३-१-३५, ३-१-४२, ३-१-५०, ३-१-५१, ३-१-५९, ३-१-८४, ३-१-८५, ३-१-८६, ३-१-११८, ३-१-१२३, ३-२-२७, ३-२-६३,

३-२-६४, ३-२-६५, ३-२-६६, ३-२-६७, ३-२-७१, ३-२-७२, ३-२-७३, ३-२-७४, ३-२-७६, ३-२-८८, ३-२-१०५, ३-२-१०६, ३-२-१०७, ३-२-१३७, ३-२-१३८, ३-२-१७०, ३-२-१७१, ३-३-३१, ३-३-३२, ३-३-३४, ३-३-९६, ३-३-१२९, ३-३-१३०, ३-४-६, ३-४-७, ३-४-८, ३-४-९, ३-४-१०, ३ ४-११, ३-४-१२, ३-४-१३, ३-४-१४, ३-४-१५, ३-४-१६, ३-४-१७, ३-४-८८, ३-४-९४, ३-४-११७,

४-१-९, ४-१-२९, ४-१-३०, ४-१-३१, ४-१-४६, ४-१-४७, ४-१-५९, ४-१-७१, ४-२-६६, ४-३-१९, ४-३-२०, ४-३-२१, ४-३-७१, ४-३-१०६, ४-३-१५०, ४-३-१०६, ४-४-११०,

५-१-६१, ५-१-६७, ५-१-९१, ५-१-९२, ५-१-१०६, ५-१-११८, ५-१-१३५, ५-२-५०, ५-२-८४, ५-२-८९, ५-२-१२२, ५-३-१३, ५-३-२०, ५-३-२६, ५-३-३३, ५-३-४९, ५-३-५०, ५-३-५९, ५-३-१११, ५-४-१२, ५-४-४१, ५-४-१०३, ५-४-१२३, ५-४-१४२, ५-४-१५८,

६-१-१२, ६-१-३४, ६-१-३५, ६-१-५२, ६-१-६०, ६-१-७०, ६-१-८३, ६-१-१०६, ६-१-११७, ६-१-११८, ६-१-११९, ६-१-१२०, ६-१-१२१, ६-१-१२२, ६-१-१२६, ६-१-१३३, ६-१-१७७, ६-१-१७८, ६-१-१९८, ६-१-२०९, ६-१-२१०, ६-२-११९, ६-२-१२०, ६-२-१६४, ६-२-१९९, ६-३-३३, ६-३-६३, ६-३-८४, ६-३-९६, ६-३-१०८, ६-३-११३, ६-३-११४, ६-३-१२६, ६-३-१३३, ६-३-१३४, ६-३-१३५, ६-३-१३६, ६-४-५, ६-४-५८, ६-४-७३, ६-४-७५, ६-४-७६, ६-४-८६, ६-४-९९, ६-४-१०२, ६-४-१०३, ६-४-१४१, ६-४-१६३, ६-४-१७५,

७-१-८, ७-१-१०, ७-१-२६, ७-१-३८, ७-१-४०, ७-१-४१, ७-१-४२, ७-१-४५, ७-१-४६, ७-१-४७, ७-१-४८, ७-१-४९, ७-१-५०, ७-१-५६, ७-१-७६, ७-१-१०३, ७-२-३१, ७-२-३२,

७-२-३३, ७-२-३४, ७-३-९७, ७-४-८, ७-४-३५, ७-४-३६, ७-४-३७, ७-४-३८, ७-४-३९, ७-४-४४, ७-४-४५, ७-४-६४, ७-४-६५, ७-४-७८

८-१-३५, ८-१-५६, ८-१-६४, ८-२-१५, ८-२-१६, ८-२-१७, ८-२-६१, ८-२-७०, ८-२-७१, ८-२-१०८, ८-३-१, ८-३-८, ८-३-४९, ८-३-५२, ८-३-५३, ८-३-५४, ८-३-९४, ८-३-१०४, ८-३-१०५, ८-३-१०६, ८-३-१०७, ८-३-११९, ८-४-२६,

इसके विपरीत भोजदेव ने अष्ट अध्यायों में सुग्रथित सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रथम सात अध्यायों में लौकिक व्याकरण की ही रचना की है एवं अष्टमाध्याय में वैदिक व्याकरण विषयक सूत्रों का ही समावेश किया है । सरस्वतीकण्ठाभरण में कुछ विशेषताएँ निम्नप्रकार से पायी जाती है-

(१) भोज ने "सरस्वतीकण्ठाभरण" नामक व्याकरण विषयक एक ही ग्रन्थ में धातुपाठ, गणपाठ, उणादिकोश, फिट् सूत्र आदि पंचाङ्ग अवयवों का समावेश किया है ।

(२) वैदिक व्याकरण विषयक सूत्रों का अष्टमाध्याय के प्रथम दो पादों में एवं स्वरप्रकरण का सन्निवेश तृतीय चतुर्थ पाद में किया है ।

हमारी दृष्टि से भोज ही ऐसे सर्वप्रथम क्रान्तिकारी वैयाकरणी हैं जिन्हों ने इस प्रकार का कदम उठाया इतना करने के बावजूद भी भोज पाणिनि की कहीं भी अवहेलना करते दिखाई नहीं पड़ते, भोज ने पाणिनि को ही अपना आधार माना है ।

(३) भोज की इस विषय में सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने पाणिनि अष्टाध्यायी के सूत्रों के क्रमांक को यथाक्रम में ही लिया है जहाँ जहाँ भी भोजने पाणिनि सूत्रों को "सरस्वतीकण्ठाभरण" में स्थान दिया है वहाँ पाणिनीय सूत्रों के क्रम की कहीं भी अवज्ञा नहीं की है ।

(४) भोज ने पाणिनीय सूत्रों के साथ साथ "चान्द्रव्याकरण के सूत्रों से भी पर्याप्त सहायता ली है ।

(५) "सिद्धान्तकौमुदी" के रचयिता भट्टोजिदीक्षित ने एवं अन्य आचार्यो ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के आधार पर प्रकरणानुसार प्रक्रियाग्रन्थों का प्रणयन किया है, भट्टोजिदीक्षित ने उसमें पाणिनीय सूत्रों को मूलरुप में ही स्वीकार किया कै किन्तु उन सूत्रों का क्रम प्रकरणानुसार बदल डाला है, फलस्वरुप जहाँ प्रकरणों की सुविधा हो गई है वहाँ अर्थ आदि को समझने

में काफी कठिनाई होती है एवं च प्रकरणों में भी पाणिनीय अष्टाध्यायी के क्रम में वे एकसूत्रता नहीं रख पाये फलस्वरुप कौमुदी आदि ग्रन्थों के अध्ययन में छात्रों को काफी असुविधा का सामना करना पड़ता है, भोज के व्याकरण में इस प्रकार की दुरुहता दिख नहीं पड़ती ।

(६) भट्टोजि दीक्षित ने भले ही कौमुदी में वैदिक प्रकरणोंका अलग निदर्शन किया है तथापि छात्रों में वैदिक प्रकरण उपेक्षित से ही रहे हैं । क्योंकि वैदिक प्रकरणों का सम्बन्ध सूत्र एवं स्वरों से रहा है ।

(७) जिसप्रकार से सिद्धान्त कौमुदी आदि प्रक्रियाग्रन्थों में स्वर एवं वैदिक प्रक्रिया का अन्त में संकलन होने से उन ग्रन्थों के अध्येता स्वरप्रक्रिया को अनावश्यक समझकर छोड़ देते हैं इसीप्रकार से चान्द्रव्याकरण के सप्तम एवं अष्टम अध्याय वैदिक प्रक्रियात्मकहोने से अध्येताओं द्वारा उपेक्षित रहे होंगे फलस्वरुप शनैः शनैः नष्ट हो गये होंगे अतएव चान्द्रव्याकरण आज छः अध्यायों में असम्पूर्ण प्राप्त होता है ।[1]

(८) भोज ने "सरस्वतीकण्ठाभरण" के अष्टमाध्याय के प्रथम दो पादों में वैदिक सूत्रों का निर्देश किया है एवं तृतीय एवं चतुर्थ पाद में स्वर विधायक सूत्रों का विधान किया है । जब तक अध्येता अष्टाध्यायी की तरह इन आठों अध्यायों का अध्ययन नहीं करता तब वह इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण ज्ञाता नहीं हो सकता यह इसकी विशेषता है । फलस्वरुप अष्टाध्यायी की तरह भले ही अध्ययन में यह ग्रन्थ लोकप्रिय नहीं रहा तथापि इसके आठों अध्याय अक्षुण्णरुपेण प्राप्त होते हैं यह सद्भाग्य की बात है ।

वैदिक प्रकरण विषयक भोज की कुछ विशेषताएँ इसप्रकार से हैं –

(अ) भोज अष्टमाध्याय के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र में "बहुलं छन्दसि" सूत्र का विधान करके उसकी अनुवृत्ति सम्पूर्ण प्रकरण में अनुवृत्त करते हैं, क्योंकि भोज का वैदिक प्रकरण एक ही जगह संकलित किया गया है जब कि पाणिनि के वैदिक सूत्र आठों अध्यायों में बिखरे हुअे हैं अतः जहाँ जहाँ पाणिनि वैदिक सूत्रों का निर्देश करते हैं वहाँ वहाँ उन्हें स्पष्ट निर्देश करना पड़ता हैं ।

(आ) भोज ने वैदिक प्रकरण में "अभ्युत्सादयां" (८/१/१२), "निष्टर्क्य देवहूय" (८/१/२४) "ग्रसितस्कभित" (८/२/८०), "दाधर्तिदर्धति" (८/२/

1. द्रष्टव्य – युधि. मीमांसक सं. व्या. शा. इति. भा.१ पृ. ५७५

१०२), "नसत्तनिषत्ता" (८/२/११२) आदि निपातनात्मक सूत्रों का विधान अनेक स्थलों पर किया है ।

(इ) भोज के वैदिक प्रकरण की एक अन्य विशेषता यह है कि उनके बहुत से सूत्र वार्तिक सूत्रों के आधार पर रचे गये हैं जिनमें वैदिक कार्यों का ही निदर्शन किया गया है-

(१) भोज-"पुनश्चनसौ गती" (८/१/७)
पा. अ. (१/४/६०) वा. सू०- पुनश्चनसौ छन्दसि गतिसंज्ञौ भवत इति वक्तव्यम् ।

(२) भो० - "क्यच् परेच्छायाम्" (८/१/९)
पा० अ०- (३/१/८) वा. सू.- "छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम्"

(३) भो०- "दंशेस्तुः" (८/१/३१)
पा० अ०- (३/२/१३९) वा. सू.- "दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम् ।"

(४) भो०- "छन्दसो ऽ क्षराणाम्" (८/१/१३७)
पा० अ०- (४/४/१४०) वा. सू. "अक्षर समूहे छन्दसः स्वार्थ उपसंख्या नम्"

(५) भो०- "विश्वजनादीनां छे तुक्" (८/२/१२)
पा० अ०- (६/१/७६) वा. सू. "विश्वजनादीनां छन्दसि वा तुगागमो भवतीति वक्तव्यम्"

(६) भो०- "उतो लुग्वा" (८/२/६०)
पा० अ०- (६/४/१०६) वा. सू. "उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्"

(७) भो०- "हृ ग्रहोर्हस्य भः" (८/२/१९१)
पा० अ०- (८/२/३५) वा. सू. "हृ ग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम्" ।

(८) भो०- "द्वितीया ऽ नुपसर्गे" (८/४/४४)
पा० अ०- (६/२/४७) वा. सू. "द्वितीयाऽनुपसर्गइति वक्तव्यम्।"

(९) भो०- "दिवोदासवाध्यश्वादीनां छन्दसि" (८/४/१०५)
पा० अ०- ६/२/९१ वा. सू.- आद्युदात्तप्रकरणे दिवोदासादीनां

छन्दस्युपसंख्यानम् ।"

(१०) भो०- "त्रिचक्रत्रिबन्धुत्रिवृतादीनाम्" (८/४/१९५)

पा० अ०- (६/२/१९९) वा. सू. "अन्तोदात्तप्रकरणे त्रिचक्रादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्"।

(ई) भोज ने वैदिक प्रकरण के बहुत से सूत्रों में गणपठित शब्दों का परिगणन किया है जबकि पाणिनि सूत्रों में उल्लेख मात्र करके शेष शब्दों को गणमें ही पढ़ते हैं यथा-

(१) भो०- "बह्वाहतिपद्धत्यंचत्यङ्कतिशकटिशक्तिशास्त्रिशारितारिकपिमुनियष्ट्यादिभ्यो ङीष्" (८/१/९४)

पा०- "बह्वादिभ्यश्च" (४/१/४५) तथा सूत्रान्तर्गत गणशब्द ।

(२) भो०- "उञ्छम्लेच्छजञ्जल्पभक्षमन्थलेहदेहखेलेरवरभागयुगानां च" उञ्छादिगणपठित सूत्र (८/३/१६ से ८/३/२३) तक

पा०- "उञ्छादीनां च" (६/१/१६०) सूत्रस्थ गणपठित शब्द ।

(३) भो०- तिङ्गेगोत्रब्रुवप्रवचनप्रकथप्रहसनप्रायन्यायप्रचक्षणविचक्षणस्वाध्याय भूयिष्ठानि (८/३/९९)

पा०- "तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः" (८/१/२७) सूत्रस्थगणपठितशब्द

(५) भो०- "पूजनेभ्यः" (८/३/२४०)

"काष्ठदारुणामातापुत्रवेशानाज्ञातायुताद्भुतभृशघोपरमस्वतिभ्यः" (८/३/२४१)

पा०- "पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः" (८/१/६७) सूत्रस्थ गणपठित शब्द ।

(६) भो०- "विस्पष्टविचित्रविविक्तव्यक्तसम्पन्न पटुपण्डित कुशलचपलनिपुणा गुणवचनेषु" (८/४/२६)

पा०- "विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु" (६/२/२४) गणपठित शब्द ।

(७) भो०- प्रतेरंशुजनराजन्नुष्ट्रखेटकाजिरार्द्राश्रवणाः (८/४/२१९)

"कृत्तिकार्धपुराणिं तत्पुरुषे" (८/४/२२०)

पा०- "प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे" (६/२/१९३) सूत्रस्थगण शब्द ।

(उ) भोज ने इस वैदिक प्रकरण में अधिकांश सूत्रों को मूलरुप में ही स्वीकारा

है । यथा-

(१) भो०- कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् (८/१/२९)
पा०- (३/२/६५)

(२) भो०- जनसनखनक्रमगमो विट् (८/१/३१)
पा०- (३/२/६७)

(३) भो०- नक्षत्राद् घः (८/१/१३८)
पा०- (४/४/१४१)

(४) भो०- ई च द्विवचने (८/२/७२)
पा०- (७/१/७७)

(५) भो०- उदात्तयणो हल्पूर्वात् (८/३/४७)
पा०- (६/१/७४)

(६) भो०- उपासर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु (८/४/२०१)
पा०- (६/२/१७७)

(ऊ) कहीं कहीं भोज पाणिनि के दो या अधिक सूत्रों को एक ही सूत्र के रुप में पढते हैं-

(१) पा०- "ईदूदेद् द्विर्वचनं प्रगृहयम्" "शे" (१/१/११-१३)
भो०-"शे प्रगृहयम्" (८/१/२)

(२) पा०- "हलः श्नः शानज्झौ" "छन्दसि शायजपि" (३/१/८३-८४)
भो०- हलश्नाशानचोरायज्वा (८/१/२२)

(३) पा०-"कर्मणि हनः", "भूते", ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् (३/२/८४-८६-८७)
भो०- भूतेहनः क्विप् (८/१/३५)

(४) पा०- "तस्य तात्" "तप्तनप्तनथनाश्च" (७/१/४४-४५)
भो०- "तस्यतात्तप्तनप्तनथनाः" (८/१/६९)

(५) पा०- "थट् चच्छन्दसि" "छन्दसिपरिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि (५/२/५०-८९)
भो०- पूरणे थड्वा परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि (८/१/१४८)

(६) "इरयोरे" "अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ "(६/४/७६-७७)
वा. सू. इयङुवङ्प्रकरणे तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानम् कर्तव्यम्"।
भो०-"इरयोरे त्रितन्वादीनामचीयुवौ वा" (८/२/५४)

(७) पा०- "नश्छव्यप्रशान्" "उभयथर्क्षु" (८/३/७-८)
भो०- "ऋक्षनच्छवि वा" (८/२/१२७)
(८) पा० - अन्तो ऽ वत्याः "ईवत्याः"(६/१/२२०-२२१)
भो०- अन्त्यईवत्यवत्योः (८/३/१०७)
(९) पा०- "अन्तश्च" न निविभ्याम्" (६/२/१८०-१८१)
भो०- अनिविभ्यामन्तः (८/४/२०४)
(ए) कहीं कहीं पाणिनि के एक ही सूत्र को भोज विभाजित करके दो सूत्रों में पढ़ते हैं-
(१) पा०-"अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद्विदा मक्रन्निति च्छदसि" (३/१/४२)
भो०- "अभ्युत्सादयांप्रजनयां चिकयांरमयामकः" (८/१/१२)
"पावयांक्रिया विदामकः" (८/१/१३)
(२) पा०- "आपोजुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठे" (६/१/११८)
भो०- "आपो जुषाणोवृष्णोवर्षिष्ठे" (८/२/२२)
अम्बे अम्बाले अम्बिके पूर्वे (८/२/२३)
(३) पा०-"दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्ते....गन्तीति च" (७/४/६५)
भो०-"दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेलर्ष्यापनीफणत् (८/२/१०२)
संसनिष्यदत्करीक्रत्कनिक्रदत्भरि गनीगन्तीतिच" (८/२/१०३)
(४) पा०- "कुरुगार्हपतरिक्तगुर्व.....भाराणां च" । (६/२/४२
वा०-"कुरुवृज्योर्गार्हपत इति वक्तव्यम्"
भो०- "कुरुवृजीगार्हपत्ये देवसूतिजूतिषु" (८/४/५६)
"नितो वसुश्च" (८/४/५७)
"रिक्तगूर्वसुतजरत्यश्लीलदृढरुपापारेवडवातैतिलकद्रूदासीभारादीनां च" (८/४/५८)
"पण्यकम्बलः संज्ञायाम्" (८/४/५९)
(५) पा०- "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्ध्दसु बहुव्रीहौ" (६/२/१९७)
भो०- "द्वित्रिभ्यां पाद्दत्" (८/४/१९१)
"मूर्धानः" (८/४/१९२)
(ए) भोजने (८/३/११०) सूत्र से लेकर (८/३/१९६) तक के सूत्र

शान्तनवाचार्य प्रणीत फिट् सूत्रों के आधार पर रचे हैं ।

(ओ) भोज के कुछ सूत्र पाणिनीय सूत्र एवं वार्तिक सूत्रों को मिलाकर रचे गये हैं । यथा-

(१) पा०- "सुपः आत्मनः क्यच्" (३/१/८)
वा.सू.- "छन्दसि परेच्छायामिति वक्तव्यम्" ।
भो०-"क्यच् परेच्छायाम्" (८/१/९)

(२) पा०- उदि ग्रहः (३/३/३५)
वा.सू.- "छन्दसि निपूर्वादपीष्यते स्रुगुद्यमननिपातनयोः"।
भो०-"उद्यमननिपातनयोरुभ्यो ग्रहे घञ्" (८/१/४३)

(३) पा०- "इष्ट्वीनमिति च" (७/१/४८)
वा० सू. "पीत्वीनमपि इष्यते" ।
भो०- इष्ट्वीनं पीत्वीनमिति च (८/२/६९)

(४) पा०- "ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्" (६/१/१७६)
वा० सू०- "रे शब्दाच्च मतुप् उदात्तत्वं वक्तव्यम्"
भो०- ह्रस्वरेनुड्भ्यो मतुप् (८/३/४९)

(५) पा०-"कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ" (८/९/६९)
वा.सू.- "क्रियाकुत्सन इति वक्तव्यम्"।
भो०-क्रियायाः कुत्सने सुप्यगोत्रादौ (८/३/२४४)

(औ) भोज के कुछ वैदिक सूत्र ऐसे है तदर्थ पाणिनि में या अन्यत्र कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता यथा-

(१) मातृदध्नद्व्यचानाम् (८/३/३३)

(२) तयस अयोऽनुभात् (८/३/३४)

(अ) भोजने अष्टमाध्याय के तृतीय एवं चतुर्थ पाद में स्वरविधायक सूत्रों का जिसमें उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, आद्युदात्त, मध्योदात्त अन्तःस्वरित, सन्नतर, एकश्रुति विधायक स्वरों का एवं कुछ बलाबल विधायक सूत्रों का विधान किया है ।

इस प्रकार से भोज ने इस वैदिक प्रकरण में अनेक विशेषताओं का कौशल्य के साथ निदर्शन किया है । भोज के इस वैदिक प्रकरण एवं स्वरप्रकरण में ८१८ सूत्रों का विधान किया गया है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

(1) अथर्वप्रातिशाख्य (सं. डॉ. सूर्यकांत शास्त्री, लाहौर.

(2) अष्टाध्यायी प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी (१९६५)

(3) अष्टाध्यायी - वार्तिक्, गणपाठ, धातुपांठ शिक्षा परिभाषा पाठ सहित श्री मनोरमा प्रेस मद्रास (1939)

(4) अष्टाध्यायी सूत्रपाठ वार्तिक समलङ्कृतः निर्णयसागर प्रेस मुंबई (1954)

(5) उणादि सूत्रवृत्तिः उज्ज्वलदत्तकृत कलकत्ता (1873)

(6) ऋक्प्रातिशाख्य सं. मंगलदेवशास्त्री लाहौर (1937)

(7) कातन्त्रपरिशिष्ट श्रीपतिदत्तकृत्

(8) कातन्त्रव्याकरण (बंगला लिपि में) सं. त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य कलकत्ता (१३२० बंगाब्द)

(9) काशिका सं. पं. शोभितमिश्र चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस (1952)

(10) काशिका सं. पं. नारायण मिश्र चौखम्बा संस्कृत सीरिज (1969)

(11) काशिका विवरण पंजिका (न्यास) (भा1.2) जिनेन्द्रबुद्धि सं. श्रीश्चन्द्र चक्रवर्ती, राजशाही (1913-1925)

(12) चान्द्रव्याकरण (भा.1-2 सं. क्षितीशचन्द्र चटर्जी (1953-1961)

(13) जैनेन्द्र व्याकरण भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (1956)

(14) तैतिरीय ब्राह्मण सायणभाष्य भा.1-2 सं. नारायणशास्त्री गोडबोले आनन्दाश्रम पूना (1934-1938)

(15) तैतिरीय संहिता सं. अनन्तशास्त्री तथा अन्य. स्वध्याय मंडल किल्ला पारडी- सूरत (1957)

(16) निरुक्तम् दुर्गाचार्यभाष्योपेतम् सं. शिवदत्त शर्मा श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालयम् बम्बई (सं. 1969)

(17) पदमंजरी हरदत्त तारा पब्लिकेशन, वाराणसी (1965)

(18) परिभाषावृत्ति पुरुषोत्तमदेव सं. दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य, राजाशाही. (1946)

(19) परिभाषेन्दुशेखर नागेश सं. के.वी. अभ्यंकर. भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटयुट, पूना (1960)

(20) प्रक्रियासर्वस्व नारायण भट्ट. मद्रास युनिवर्सिटी (1941)

(21) भाषावृत्ति पुरुषोत्तमदेव तारा पब्लिकेशन वाराणसी

(22) महाभाष्य डॉ. किलहर्न संस्करण भा. 1-3 (1887)

(23) सं. व्या. शा. इतिहास भा. 1-2-3 पं. युधिष्ठिर मीमांसक
